



हिन्दी सगुन काव्य

Edited By
Dr. Hardeep Kaur

Printed by
LAXMI PUBLICATIONS (P) LTD.
113, Golden House, Daryaganj,
New Delhi-110002
for
Lovely Professional University
Phagwara

पाठ्यक्रम
(SYLLABUS)
हिन्दी सगुन काव्य

उद्देश्य

- छात्रों में काव्य के प्रति रुचि पैदा करना।
- छात्रों को प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य की प्रवृत्तियों से अवगत कराना।
- छात्रों को विभिन्न प्राचीन एवं मध्यकालीन कवियों की काव्य-शैली से परिचित कराना।

Sr. No.	Content
1	सूरदास: साहित्यिक परिचय, भक्ति-भावना और काव्यगत विशेषताएँ सूरसागर का सार (गोकुल लीला भ्रमरगीत)
2	सूरसागर के (गोकुल लीला, भ्रमरगीत-30 पद) पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या सूरसागर (गोकुल लीला और भ्रमरगीत) की तात्विक समीक्षा, शिल्प-विधान-भाषा-अलंकार आदि
3	तुलसीदास की लेखन कुशलता एवं काव्यात्मक योगदान तुलसीदास की भक्तिभावना, रामचरितमानस (उत्तरकाण्ड) की सप्रसंग व्याख्या, तुलसी काव्य-समीक्षा
4	मीरा मुक्तावली: पद संख्या 21 से 70 तक सप्रसंग व्याख्या और भक्ति-भावना
5	मीरा मुक्तावली का भाव, भाषा और शिल्प-कला पक्ष

विषय-सूची

इकाई (Units)	(CONTENTS)	पृष्ठ संख्या (Page No.)
1. सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ <i>Reeta Singh, Lovely Professional University</i>		1
2. सूरदास की भक्ति-भावना <i>Hardeep Kaur, Lovely Professional University</i>		8
3. सूरसागर का सार (गोकुल लीला) <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>		12
4. सूरसागर के प्रमुख पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या (गोकुल लीला) <i>Reeta Singh, Lovely Professional University</i>		29
5. सूरसागर की तात्विक समीक्षा एवं शिल्प विधान <i>Hardeep Kaur, Lovely Professional University</i>		47
6. तुलसीदास का काव्यात्मक योगदान <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>		54
7. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड दोहा-सप्रसंग व्याख्या <i>Reeta Singh, Lovely Professional University</i>		58
8. तुलसीदास की भक्ति-भावना <i>Hardeep Kaur, Lovely Professional University</i>		99
9. मीरा मुक्तावली (व्याख्या भाग) <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>		104
10. मीरा की भक्ति-भावना <i>Reeta Singh, Lovely Professional University</i>		137
11. मीरा मुक्तावली का शिल्प विधान <i>Hardeep Kaur, Lovely Professional University</i>		140
12. मीरा मुक्तावली : भाव पक्ष एवं कला पक्ष <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>		145
13. मीरा मुक्तावली : भाषा-शैली <i>Reeta Singh, Lovely Professional University</i>		150

नोट

इकाई 1

सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

1.1 सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

1.1.1 भाव-पक्ष

1.1.2 कला-पक्ष

1.2 सारांश (Summary)

1.3 शब्दकोश (Keywords)

1.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे

- सूरदास की काव्यगत विशेषताओं को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

कृष्ण भक्त कवि सूरदास का जन्म 1478 ई. में दिल्ली-मथुरा रोड पर स्थित 'सीही' नामक गांव में हुआ था। इन्हें जन्मांध बताया जाता है, परन्तु कृष्ण-लीलाओं और प्रकृति-वर्णन की सजीवता उनके जन्मांध होने पर प्रश्नचिह्न लगाती है। 'सूरसागर' नामक रचना इनकी कीर्ति का आधार है। इनके द्वारा रची गई अन्य रचनाओं में 'सूरसारावली' और 'साहित्य लहरी' प्रमुख हैं। 'सूरसागर' का भ्रमरगीत प्रसंग उल्लेखनीय है।

1.1 सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

सूरदास शृंगार, वात्सल्य एवं शांत रस के अद्वितीय कवि हैं। इनकी रचनाएं सजीवता का परिचय देती हैं। सूरदास अष्टछाप के कवि कहलाते हैं। समीक्षा की दृष्टि से सूरदास के काव्य में कई विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं—

1.1 भाव-पाव-पक्ष

भाव-पक्ष का सम्बन्ध अनुभूति पक्ष से है। कवि जो कुछ अनुभव करता है, संवेदनशील हृदय में जैसा धारण करता है, उसकी भावमयी अभिव्यक्ति भाव-पक्ष के अन्तर्गत की जाती है। भावुकता साहित्यकार का सबसे बड़ा गुण है। सूर का भाव-पक्ष अत्यन्त सरस और सबल है। सूर काव्य के भाव-पक्ष की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

- शृंगार-वर्णन**—सूरदास ने 'सूरसागर' में राधा, कृष्ण और गोपियों के अनेक संयोगकालीन चित्र प्रस्तुत किए हैं। सूर ने राधा-कृष्ण के प्रारम्भिक परिचय का आकर्षक वर्णन किया है। कृष्ण, राधा से पूछते हैं—

बूझत स्याम कौन तू गोरी?

कहाँ रहति काकी है बेटी? देखी नहीं कबहूँ ब्रज-खोरी ॥

नोट

इसके पश्चात् दोनों का सम्बन्ध घनिष्ठ हो जाता है। फिर तो किसी की परवाह न करके दोनों एक साथ घूमते हैं। गोपियाँ भी उनकी विविध-लीलाओं और क्रीड़ाओं में हिस्सा लेती हैं।

संयोग के साथ वियोग के भी अनेक चित्र मिलते हैं। कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। गोपियाँ, राधा, यशोदा, गोप एवं ब्रज के सभी जड़-चेतन, पशु-पक्षी उनके विरह में व्याकुल हो उठते हैं। यहाँ तक कि संयोगकालीन सभी सुखप्रद वस्तुएँ गोपियों को कष्ट देने वाली हो जाती हैं। वे कहती हैं—

“बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजै ।”

तब वे लता लागति अति सीतल,

अब भई बिषम ज्वाला का पुंजै॥

- (ii) **वात्सल्य-चित्रण**—सूर ने कृष्ण की बाल-लीलाओं और क्रीड़ाओं का व्यापक एवं विस्तृत चित्रण किया है। माता यशोदा द्वारा कृष्ण को पालने में झुलाने, कृष्ण के घुटनों के बल चलने, किलकारी मारने, नाचने, गाएँ चराने जाने, माखन चुराने आदि के मनोहारी दृश्य ‘सूरसागर’ में प्रस्तुत किए गए हैं। हाथ में माखन लिए कृष्ण का यह चित्र देखिए—

सोभित कर नवनीत लिए ।

घुदुरुवनि चलत रेनु तन मण्डित, मुख दधि लेप किए ॥

माखन चोरी करने पर कृष्ण पकड़े जाते हैं; किन्तु वे बड़ी चतुराई से अपनी सफाई देते हैं—

मैया मैं नहिं माखन खायौ ।

ख्याल परै, ये सखा सबै मिली, मेरे मुख लपटायौ ॥

- (iii) **भक्ति-भावना**—सूर की भक्ति-भावना पुष्टिमार्ग से प्रभावित है, जिसमें भगवद्कृपा को सर्वोपरि माना गया है। इसके अतिरिक्त सूर में दास्य-भाव, सख्य-भाव, माधुर्य-भाव, प्रेम-भाव और नवधा भक्ति के दर्शन भी होते हैं। सूर की भक्ति मुख्य रूप से सखा-भाव की है। सूर ने बड़ी चतुराई से काम लिया है। वे कृष्ण से अपने उद्धार की याचना करते हुए कहते हैं—

कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज ।

महा पतित, कबहूँ नहिं आयौ, नैकु तिहारे काज ॥

- (iv) **दार्शनिकता**—सूर के दार्शनिक विचार वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से प्रभावित हैं। निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन न करते हुए उन्होंने सगुण भक्ति का प्रतिपादन किया है; क्योंकि निर्गुण ब्रह्म का कोई रूप, गुण और जाति नहीं है, अतः चंचल मन बिना किसी आधार के इधर-उधर भटकता रहता है—

रूप-रेख गुन जाति जुगती बिनु, निरालम्ब मन चक्रित धावै ।

सब विधि अगम विचारहिं तातै, सूर सगुन लीला पद गावै ॥

ब्रह्म के अतिरिक्त सूर ने जीव, जगत् और माया आदि पर भी विचार किया है। सूर ने ब्रह्म और जीवन को एक माना है तथा जीव को गोपाल का अंश भी बताया है; परन्तु जीव माया के कारण अपने स्वरूप को भूल जाता है। वे कहते हैं—

आपुनपौ आपुन ही बिसरयौ ।

जैसे स्वान काँच मन्दिर में, भ्रमि-भ्रमि भूँकि मर्यौ ॥

सूर ने माया का वर्णन गाय के रूप में किया है और प्रभु से प्रार्थना की है कि मायारूपी गाय से उसकी रक्षा करें—

माधौ नेकु हटकौ गाई ।

भ्रमत निसि-बासर अपथ-पथ, अगह गहिं नहिं जाइ ॥

वे जानते हैं कि जिस पर दीनानाथ श्रीकृष्ण कृपा कर दें, उसके समान कुलीन और सुन्दर कोई नहीं हो सकता—

जापर दीनानाथ ढरै ।

सोई कुलीन, बड़ी सुन्दर सोइ, जिहिं पर कृपा करै ॥

नोट

इसीलिए वे अपने मन के इधर-उधर भटकने पर उसे फटकारते हैं कि हे मेरे धूर्त मन, गोविन्द के बिना इस संसार में तुझे सुख नहीं मिल सकता—

रे सठ, बिन गोबिंद सुख नाहीं ।

तेरी दुःख दूर करिबे कौं रिधि-सिधि फिरि-फिरि जाँहीं ॥

संसार को क्षणभंगुर और मिथ्या मानते हुए सूर ने प्रभु से प्रार्थना की है—

“सूरदास की सबै अविद्या, दूर करो नन्दलाल ।”

- (v) **प्रकृति-चित्रण**—कृष्ण की लीलाओं का चित्रण करते समय सूर ने प्रकृति के विविध रूप प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने प्रकृति का उद्दीपन रूप में सर्वाधिक चित्रण किया है। वियोग काल में प्रकृति उद्दीपन का कार्य करती है। श्रीकृष्ण के विरह में प्रकृति गोपियों के विरह को और अधिक उद्दीप्त करती प्रतीत होती है—

कोऊ माई बरजो री या चंदहि ।

अति ही क्रोध करत है हम पर,

कुमुदिनी कुल अनन्दहि ॥

प्रकृति का रोमांचक, आलम्बन, अलंकार और पृष्ठभूमि रूप भी सूर-काव्य में मिलता है।

- (vi) **भावुकता एवं वाग्वैदग्ध्यता**—सूर में उच्चकोटि की भावुकता एवं वाग्वैदग्ध्यता के दर्शन होते हैं। ‘भ्रमरगीत’ प्रसंग इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। उद्धव द्वारा योग, ज्ञान और निर्गुण का सन्देश दिए जाने पर गोपियाँ कभी खीझ, कभी उपालम्ब, कभी व्यंग्य और कभी उपहास का आश्रय लेकर श्रीकृष्ण के प्रति अपने अनन्य-प्रेम का परिचय देती हैं और अपने वाग्वैदग्ध्य से उद्धव को परास्त कर देती हैं। उद्धव पर व्यंग्य करती हुई वे कहती हैं—

बिलग जनि मानौ ऊधौ कारे ।

वह मथुरा काजर की ओबरि, जे आवैं ते कारे ॥

- (vii) **अलौकिकता एवं मौलिकता**—राधा-कृष्ण व गोपी-कृष्ण के प्रेम में सूर ने प्रेम की अलौकिकता के दर्शन कराए हैं। विषय-वस्तु में यद्यपि सूर ने ‘श्रीमद्भागवत्’ के दशम स्कन्ध को ही आधार बनाया है; परन्तु विषय-वस्तु में सर्वत्र मौलिकता विद्यमान है। उन्होंने कृष्ण को बहुत कम स्थलों पर अलौकिक प्रदर्शित किया है, अन्यथा वे सर्वत्र मानवीय रूप में ही चित्रित किए गए हैं। राधा की कल्पना और गोपियों के प्रेम की अनन्यता में भी कवि की मौलिकता दृष्टिगत होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. सूरदास ने में राधा-कृष्ण और गोपियों के अनेक संयोगकालीन चित्र प्रस्तुत किये हैं।
2. सूरदास ने संसार को और मिथ्या माना है।
3. राधा-कृष्ण व गोपी-कृष्ण के प्रेम में सूर ने प्रेम की के दर्शन कराए हैं।

1.1.2 कला-पक्ष

कला-पक्ष का अभिप्राय अभिव्यक्ति पक्ष से होता है। कवि ने जो कुछ अनुभव किया; उसे उसने कितने सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया, यह कला-पक्ष का विषय है। साधारणतः कला-पक्ष में निम्नलिखित बातों पर विचार किया जा सकता है—

- (i) भाषा (ii) चित्रमयता, (iii) अलंकार-योजना, (iv) छन्द, (v) शब्द-शक्तियाँ, (vi) गुण, (vii) मुहावरे और लोकोक्तियाँ।

नोट

- (i) **भाषा**—काव्य में भाषा का स्थान महत्वपूर्ण है। सूर ने अपने इष्टदेव कृष्ण की विहार-भूमि ब्रज की भाषा को ही अपने काव्य की भाषा बनाया है। सूर की भाषा में कोमलकान्त पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, धाराप्रवाह, सजीवता, सप्राणता आदि मुख्य विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। सूर ने अपनी भाषा को विविध प्रकार के शब्दों द्वारा समृद्ध किया है। सूर की विशेषता यह है कि उन्होंने विदेशी शब्दों को भी देशी भाषा के रस में सिक्त कर, उन्हें काव्य-सौष्ठव बढ़ाने की क्षमता देकर प्रयुक्त किया है। नीचे विविध प्रकार के शब्दों के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं—

तत्सम शब्द—खगपति, अभिराम, पन्नग, मुकुलित, सायक, सत्वर, त्राहि-त्राहि, वसुधा, पिनाक, करम, दम्पती, निरालम्ब, भगिनी, नारिकेल, प्रतीत, कलेवर, कलत्र, चिबुक, जलज, परिवेश आदि।

तद्भव शब्द—अनुभवत, कोखि, काठ, आखर, औसर, मोक्त, लिलार, तिप, जदपि, कोरा, जीभ, जलज, धरनी, खम्ब, भौन, बीता, मसान, मूसे आदि।

ग्रामीण शब्द—टकटोरत, डहकावै, डाटे, ढोरत, धुकधुकी, मूड़, करतूति, दूकि आदि।

अनुकरणात्मक शब्द—अनुकरणात्मक शब्दों की विशेषता यह है कि उनकी ध्वनि ही अर्थ को बहुत-कुछ व्यक्त कर देती हैं। उदाहरणतः,

किलकिलात, टनटनात, अरूरात, घहरानि, भहरात आदि।

विदेशी शब्द—सूर के काल में फारसी राजभाषा थी। अतः सूर ने फारसी शब्द अपनाने में हिचक नहीं की। सूरकाव्य में प्रयुक्त अरबी, फारसी के कुछ शब्द इस प्रकार हैं—

फारसी—आवाज, आब, चुगली, दरबार, दाग।

अरबी—अगल, आखिर, आदमी, अरज, गरीब।

- (ii) **चित्रमयता**—सूर की भाषा की एक विशेषता उसकी चित्रात्मकता है। वे जिस बात या घटना का वर्णन करते हैं, उसका एक चित्र-सा खड़ा कर देते हैं। सूर के काव्य में विविध प्रकार के चित्र मिलते हैं, जैसे रूप-चित्र, भाव-चित्र, स्वभाव-चित्र, संश्लिष्ट चित्र; यथा—

खेलत मैं को काकौ गुसैयौं।

हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस हीं कत करत रिसैयौं ॥

जाति-पाँति हमतें बड़ नाही, नाही बसत तुम्हारी छैयौं ।।



नोट्स

सूर की भाषा में कोमलकान्त पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, धाराप्रवाह, सजीवता, सप्राणता आदि मुख्य विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

- (iii) **अलंकार-योजना**—सूरसागर में सभी अलंकारों के उदाहरण मिल जाते हैं। जहाँ एक ओर सूर सरल भाषा में भाव व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं, वहीं दूसरी ओर भाषागत चमत्कार लाने के लिए अप्रस्तुत योजना का भी सफलतापूर्वक निर्वाह कर लेते हैं। सूर ने सांगरूपक का सबसे अधिक प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त सूरदास ने निम्नलिखित अलंकारों का भी प्रयोग किया है—

विरोधाभास, यथासंख्य, विभावना, अन्योक्ति, समासोक्ति, प्रतीप, सन्देह, प्रतिवस्तूपमा, वक्रोक्ति, भ्रान्तिमान्, श्लेष, अनुप्रास, व्यतिरेक, परिकर, पर्यायोक्ति, परिसंख्या, उत्प्रेक्षा और उपमा आदि।

कुछ अलंकारों के उदाहरण देखे जा सकते हैं—

रूपक—

हमारे हरि हरिल की लकड़ी।

उपमा एवं उत्प्रेक्षा—

कदली दल सी पीठि मनोहर, सो जनु उलटि दई

नोट

रूपकातिशयोक्ति—

अद्भुत एक अनुपम बाग ।

जुगल कमल पर गजबर क्रीडति, तापर सिंह करत अनुराग ॥

अतिशयोक्ति—

सीतलचन्द अगिनि सम लागत, कहिए धीर कौन विधि धरिबौ ।

अन्योक्ति

मधुकर पीतवदन केहि हेंत ।

जनु अन्तर मुख पांडु रोग भयौ, जुबतिन जो दुःख देत ॥

- (iv) **छन्द**—सूर के काव्य में छन्द-वैविध्य है। सूर के काव्य में पिंगलशास्त्रीय छन्दों की अपेक्षा संगीतशास्त्रीय राग-रागनियाँ ही अधिक हैं। उन्होंने जितनी राग-रागनियों का प्रयोग किया है उनमें से बहुत-सी राग-रागनियों का तो अभी तक नामकरण भी नहीं हो पाया है। सूर ने 'पद' का अधिक प्रयोग किया है।
- (v) **शब्द-शक्तियाँ**—सूर ने तीनों प्रकार की शब्द-शक्तियों—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना का सफल प्रयोग किया है। सूर का काव्य लक्षणा शक्ति के लिए बहुत प्रसिद्ध है। कहावतों के प्रयोग में लक्षणा शक्ति का सौन्दर्य सबसे अधिक निखरता है। लक्षणा शक्ति के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—
- (1) दाख छाड़ि के कटुक निबौरी को अपने मुख खैहै ।
 - (2) **मधुबन तुम क्यों रहत हरे**
सूर के काव्य में व्यंजना शक्ति के भी पर्याप्त स्थल हैं; जैसे—
 - (1) **बिलगि जनि मानौ ऊधौ कारे ।**
वह मथुरा काजर की ओबरि, जे आवैं ते कारे ।।
 - (2) **प्रकृति जोइ जोके अंग परी ।**
स्वान-पूँछ कोटिक जा लागै सूधि न काहु करी ।।
 - (3) **नन्द ब्रज लीजै ठोकि बजाइ ।**



क्या आप जानते हैं कहावतों के प्रयोग से लक्षणा शक्ति का सौन्दर्य सबसे अधिक निखरता है।

- (vi) **गुण**—काव्य के प्रमुख गुण तीन माने गए हैं—माधुर्य, ओज और प्रसाद। 'साहित्य-लहरी' और 'सूरसागर' के दृष्टकूट पदों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र सूर-काव्य में माधुर्य गुण का बाहुल्य है। ओजगुण अपेक्षाकृत कम ही है; यथा—
- (1) किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत ।
मनिमय कनक नन्द के आँगन, मुख प्रतिबिम्ब पकरिबे धावत ।।
 - (2) साँवरेहि बरजति क्यौ जु नहीं ।
कहा करौं दिन प्रति की बातें, नाहिंन परतिं सही ।।
- (vii) **मुहावरे और लोकोक्तियाँ**—सूरकाव्य में प्रयुक्त लोकोक्तियाँ व मुहावरे भाषा की रूढ़ता के माध्यम न होकर सशक्त अभिव्यंजना के प्रसाधन हैं। उनसे सूर के भाषा-समृद्धि, उनके सामाजिक अनुभव व सामाजिक पर्यवेक्षण का ज्ञान होता है। सूर ने लोकोक्तियों और मुहावरों का बड़ा सफल प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—
- मुहावरे—(1)..... बकती कहा बाँसुरी कहि-कहि ।
- (2) आँख धूरि की दीन्हीं ।

नोट

(3) जिय उमगत ।

(4) तारे गिनत ।

लोकोक्ति—(1) जाहि लगे सोई पै जाने ।

(2) अपने स्वारथ के सब कोऊ ।

(3) कथा कहत मासी के आगे, जानत नानी नानन ।

(4) जाके हाथ पेड़ फल ताको ।

इस प्रकार भाव और कला पक्ष दोनों दृष्टियों से सूर का काव्य समृद्ध है। शृंगार और वात्सल्य के तो वे सम्राट हैं। भक्ति, दर्शन, वाग्वैदग्ध्य और प्रकृति-चित्रण में भी वे अनूठे हैं। भाषा के सैद्धान्तिक (शब्द-भण्डार व मुहावरे) और व्यावहारिक (गुण, शब्द-शक्ति) पक्षों की दृष्टि से भी उनका काव्य सफल है।

उनकी प्रशंसा करते हुए आलोचकों ने यहाँ तक कह दिया है—

तत्त्व-तत्त्व सूर कही, तुलसी कही अनूठी ।

बची खुची कबिरा कही, और कही सो जूठी ॥

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

4. किन रसों के प्रयोग के लिए सूरदास को सम्राट माना जाता है?

(अ) शृंगार और वात्सल्य (ब) शांत और शृंगार (स) करुण और वात्सल्य (द) इनमें से कोई नहीं

5. सूर ने अपने काव्यों में लोकोक्तियों और का सफल प्रयोग किया है?

(अ) मुहावरे (ब) अलंकार (स) छन्द (द) इनमें से कोई नहीं

6. सूरदास के काल में किस भाषा को 'राजभाषा' का दर्जा प्राप्त था?

(अ) अंग्रेजी (ब) उर्दू (स) फारसी (द) हिन्दी

1.2 सारांश (Summary)

सूर ने कृष्ण की बाल-लीलाओं और क्रीड़ाओं का व्यापक एवं विस्तृत चित्रण किया है। सूर की भक्ति-भावना पुष्टिमार्ग से प्रभावित है, जिसमें भगवद् कृपा को सर्वोपरि माना गया है। सूर में उच्चकोटि की भावुकता एवं वाग्वैदग्ध्यता के दर्शन होते हैं। 'भ्रमरगीत' प्रसंग इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। सूर के काल में फारसी राजभाषा थी। सूर के काव्य में तत्सम, तद्भव ग्रामीण व विदेशी शब्दों की प्रचुरता है।

1.3 शब्दकोश (Keywords)

1. लोकोक्ति— कम शब्दों में व्यापक अर्थ देने वाली तथा आम जनता में लोकप्रिय उक्ति।

2. उर— हृदय

1.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सूरदास के काव्य में मौजूद कला पक्ष का वर्णन कीजिए।

नोट

2. 'सूरदास के काव्य में भाव-पक्ष और कला-पक्ष का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है।' उदाहरण देकर समझाइए।

उत्तर-स्वमूल्यांकन (Answer-Self Assessment)

- | | | | |
|------------|--------------|-------------|--------|
| 1. सूरसागर | 2. क्षणभंगुर | 3. अलौकिकता | 4. (अ) |
| 5. (अ) | 6. (स) | | |

1.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. सूरसागर-सूरदास कृत।
2. सूर की काव्य कला-गौतम मनमोहन, भारतीय मन्दिर।
3. सूरदास के पद-गुप्ता संजय, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली।

इकाई 2

नोट

सूरदास की भक्ति-भावना**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

2.1 सूरदास की भक्ति-भावना

2.2 सारांश (Summary)

2.3 शब्दकोश (Keywords)

2.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

2.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- सूरदास की कृष्ण भक्ति को जानने में।
- सूरदास द्वारा किए गए कृष्ण एवं राधा के प्रेम के वर्णन को समझने में।
- सूरदास द्वारा किए गए कृष्ण एवं गोपियों के प्रेम भाव के चित्रण को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भक्त प्रवर सूरदास भक्तिकाल की सगुणधारा के कृष्ण भक्त कवि हैं। वे वल्लभाचार्य के शिष्य थे तथा अष्टछाप के कवियों में सर्वप्रमुख थे। भक्ति के क्षेत्र में वल्लभाचार्य का साधना मार्ग 'पुष्टि मार्ग' के नाम से जाना जाता है। वल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने से पहले सूरदास एक 'सन्त' थे जो सभी उपासना पद्धतियों, भक्ति प्रणालियों को समान भाव से देखते थे। उनके प्रारम्भिक पद विनय, आन्तरिक साधना, गुरु का महत्त्व, आदि से सम्बन्धित हैं, किन्तु पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने के उपरान्त जो पद उन्होंने रचे वे प्रेमलक्षणा भक्ति से सम्बन्धित हैं।

श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध में दशम अध्याय के अन्तर्गत 'पुष्टि' को परिभाषित करते हुए कहा गया है—'पोषणं तदनुग्रह' अर्थात् ईश्वर का अनुग्रह (कृपा) ही पोषण है। भगवत्कृपा से ही भक्त के हृदय में भगवान के प्रति प्रेमलक्षणा भक्ति जाग्रत होती है। पुष्टि मार्ग में तीन प्रकार के जीव माने गए हैं—

1. पुष्टि जीव—जो भगवान के अनुग्रह पर विश्वास करते हैं और उनकी 'नित्यलीला' में प्रवेश पाते हैं।
2. मर्यादा जीव—जो वेद विहित मार्ग का अनुसरण कर स्वर्ग प्राप्त करते हैं।
3. प्रवाह जीव—जो संसार के प्रवाह में पड़कर सांसारिक सुखों में लीन रहते हैं। इन तीनों में पुष्टि जीव ही सर्वोपरि है। ईश्वर पर पूर्णतः निर्भर जीव ही उसके अनुग्रह का अधिकारी बनता है और अन्त में 'नित्यलीला' में सम्मिलित होता है। गोपियों की प्रेम भक्ति को पुष्टिमार्गी भक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण माना गया है।

2.1 सूरदास की भक्ति-भावना

महात्मा सूरदास ने अपना सर्वस्व कृष्ण के चरणों में अर्पित कर पुष्टि मार्ग को अपनाया था। भगवान श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं और दिव्य गुण सम्पन्न पुरुषोत्तम हैं। वे कृष्ण स्वयं प्रेममय हैं। उन्होंने प्रेम के वशीभूत होकर ही ब्रह्म में

नोट

अवतार लिया है। सूर ने प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए भक्त की विकलता, अभिलाषा एवं विवशता का सुन्दर चित्रण किया है।

सूरदास की भक्ति 'सख्य भाव' की है जिसमें भगवान के साथ भक्त का 'सखा भाव' रहता है। सूरदास ने पुष्टिमार्गीय सेवा भाव को अपनाते हुए भक्ति के तीनों रूप-गुरु सेवा, सन्त सेवा तथा प्रभु सेवा—को अपनी भक्ति भावना में स्थान दिया है। पुष्टिमार्ग में नित्य सेवा विधि एवं वार्षिकोत्सव सेवा विधि का विशेष महत्त्व है। सूर ने प्रातःकाल से लेकर शयनपर्यन्त भगवान की सेवा विधि का वर्णन अपने काव्य में किया तथा वार्षिकोत्सव सेवा विधि के अन्तर्गत उन्होंने विभिन्न अवतारों का पूरा-पूरा वर्णन किया है।

पुष्टिमार्ग में तीन आसक्तियां बताई गई हैं—1. स्वरूपासक्ति, 2. लीलासक्ति, 3. भावासक्ति। सूरदास ने लीलासक्ति को अपनाते हुए भगवान कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का गान अपने पदों में किया है। सूरदास के गुरु वल्लभाचार्य जी ने उन्हें कृष्ण के लीला पदों का गान करने का ही निर्देश दिया था इसीलिए सूर ने भक्ति विभोर होकर गोकुल से लेकर मथुरा तक की समस्त कृष्णलीलाओं को अपने पदों का विषय बनाया है।

सूरदास ने सख्य भाव की भक्ति को अपनाते हुए भी कृष्ण के प्रति नन्द-यशोदा के वात्सल्य भाव का तथा राधा एवं गोपियों के दाम्पत्य एवं माधुर्य भाव की सुन्दर व्यंजना की है। गोपी लीला के अन्तर्गत कृष्ण एवं गोपियों के जिस प्रेम का चित्रण सूरदास ने किया है उसमें उनकी भक्ति-भावना पराकाष्ठा पर पहुंची दिखाई पड़ती है।

सूर की भक्ति पद्धति का मेरुदण्ड पुष्टिमार्ग ही है। भगवान का अनुग्रह ही भक्त का कल्याण करके उसे इस लोक से मुक्त करने में सफल होता है:

जापर दीनानाथ ढरै ।

सोइ कुलीन बड़ौ सुन्दर सोइ जा पर कृपा करै ।

सूर पतित तरि जाय तनक में जो प्रभु नेक ढरै ॥

नारद भक्ति सूत्र में आसक्तियों के एकादश रूप बताए गए हैं जिनमें से सूर का मन सख्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति, रूपासक्ति, कान्तासक्ति और तन्मयासक्ति में अधिक रमा है। कृष्ण गोपियों के हृदय में ऐसे गड़ गए हैं कि अब वे किसी तरह निकलते ही नहीं, गोपियों की इसी 'तन्मयासक्ति' का वर्णन इस पद में है:

उर में माखन चोर गड़े ।

अब कैसेहूँ निकसत नहिँ ऊधौ तिरछै हैजु अड़े ॥



नोट्स

भक्ति के दार्शनिक स्वरूप को ध्यान में रखते हुए सूरदास ने वल्लभाचार्य के 'शुद्धाद्वैतवाद' की मान्यताओं को ग्रहण किया है।

'विरहासक्ति' को भ्रमरगीत के पदों में देखा जा सकता है। भक्ति के दार्शनिक स्वरूप को ध्यान रखते हुए सूरदास ने वल्लभाचार्य के 'शुद्धाद्वैतवाद' की मान्यताओं को ग्रहण किया है। जीव को ब्रह्म का अंश मानते हुए वे उन दोनों का अद्वैत सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। जीव की दुरावस्था माया के कारण होती है। यदि माया का प्रपंच न हो तो जीव शुद्ध एवं अविकारी है। माया के कारण ही जीव जगत के प्रपंच में फंसता है, इसीलिए सूर कृष्ण से जो मायापति हैं, इस माया का निवारण करने का अनुरोध करते हैं:

माधवजी नेकु हटकौ गाय ।

वल्लभाचार्य ने जगत और संसार दोनों को पृथक्-पृथक् स्वीकार करते हुए जगत को सत्य और संसार को असत्य माना है। जगत ईश्वर की इच्छा से निर्मित ईश्वर के सत् अंश का विस्तार है जबकि संसार अविद्या के कारण

नोट

उत्पन्न होता है और नश्वर है। कामिनी, कंचन, शरीर, भौतिक पदार्थ, वैभव ये सभी संसार है जबकि सृष्टि का अनादि प्रवाह जगत है। जगत ब्रह्म की शक्ति है जबकि संसार जीव की अविद्या का परिणाम है।



क्या आप जानते हैं कामिनी, कंचन, शरीर, भौतिक पदार्थ, वैभव आदि सब संसार है जबकि सृष्टि का अनादि प्रवाह जगत है।

सूर ने 'सायुज्य मुक्ति' को महत्त्व दिया है जिसमें जीव ईश्वर के साथ एकीभाव को प्राप्त हो जाता है। सूरदास वस्तुतः भक्त कवि हैं अतः उनके पदों में दार्शनिक नीरसता के स्थान पर माधुर्य भाव से परिपूर्ण भक्ति की सरसता ही अधिक दिखाई पड़ती है। सूरदास की भक्ति रागानुगा भक्ति है जिसमें 'कर्मकाण्ड' का स्थान नहीं है। उनकी भक्ति भावना में सिद्धान्त पक्ष की अपेक्षा माधुर्य भाव की प्रबलता है इसीलिए वह भक्तों को अधिक प्रिय है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. सूरदास की भक्ति की है।
2. सूरदास के गुरु ने उन्हें कृष्ण के लीला पदों का गान करने का निर्देश दिया था।
3. पुष्टि मार्ग में तीन बताई गई हैं।

2.2 सारांश (Summary)

वल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने से पहले सूरदास एक 'सन्त' थे जो सभी उपासना पद्धतियों, भक्ति प्रणालियों को समान भाव से देखते थे।

सूरदास की भक्ति 'सख्य भाव' की है जिसमें भगवान के साथ भक्त का 'सखा भाव' रहता है। सूरदास ने पुष्टिमार्गीय सेवा भाव को अपनाते हुए भक्ति के तीनों रूप-गुरु सेवा, सन्त सेवा तथा प्रभु सेवा—को अपनी भक्ति भावना में स्थान दिया है।

सूरदास ने सख्य भाव की भक्ति को अपनाते हुए भी कृष्ण के प्रति नन्द-यशोदा के वात्सल्य भाव का तथा राधा एवं गोपियों के दाम्पत्य एवं माधुर्य भाव की सुन्दर व्यंजना की है।

2.3 शब्दकोश (Keywords)

1. वल्लभाचार्य—महाकवि सूरदास के गुरु।
2. पुष्टिमार्ग—जिसे ईश्वर के अनुग्रह का पोषण प्राप्त हो, ईश्वर प्राप्ति का मार्ग।

2.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सूरदास भक्ति की किस धारा के कवि थे?
2. पुष्टिमार्ग में कितने प्रकार के जीव माने गए हैं? उल्लेख कीजिए।
3. पुष्टिमार्ग की आसक्तियों का वर्णन कीजिए।

नोट

उत्तर-स्वमूल्यांकन (Answer-Self Assessment)

1. सख्य भाव
2. वल्लभाचार्य
3. आसक्तियाँ

2.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. सूरसागर-सूरदास कृत।
2. सूर की काव्य कला-गौतम मनमोहन, भारतीय मन्दिर।
3. सूरदास के पद-गुप्ता संजय, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली।

इकाई 3

नोट

सूरसागर का सार (गोकुल लीला)**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

3.1 सूरसागर का सार (गोकुल लीला)

3.1.1 शृंगार-पद: संयोग शृंगार

3.2 सारांश (Summary)

3.3 शब्दकोश (Keywords)

3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

3.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' की व्याख्या समझने में।
- कृष्ण-यशोदा के वात्सल्य भाव को समझने में।
- श्रीकृष्ण की बाल-छवि को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सूरदास का वात्सल्य वर्णन हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है। श्रीकृष्ण के बाल सौंदर्य की झांकी के साथ-साथ बाल मनोविज्ञान का जैसा चित्रण सूरकाव्य में उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। बालक की चेष्टाएं, माता के हृदय की आशंकाएं, पुत्र के प्रति वात्सल्य भाव, बाल-वृत्तियों का निरूपण आदि का मनोहारी चित्रण सूरदास ने किया है। सूरदास ने 'गोकुल लीला' में बाल कृष्ण की लीलाओं का चित्ताकर्षक एवं मनोहारी चित्र अंकित करने में जैसी सफलता प्राप्त की है, वैसी किसी को नहीं मिल सकी है। कृष्ण कहीं घुटनों के बल चल रहे हैं, तो कहीं मुख पर दधि का लेप किए दौड़ रहे हैं। कहीं अपने प्रतिबिंब को पकड़ने की चेष्टा कर रहे हैं, तो कहीं किलकारी भर रहे हैं। एक चित्र देखिए:

सोभित कर नवनीत लिए।

घुदुरून चलत रेनु तन मण्डित मुख दधि लेप किए।

3.1 सूरसागर का सार (गोकुल लीला)**गोकुल लीला**

सोभा-सिंधु न अंत रही री।

नंद-भवन भरि पूरि उमंगि चलि, ब्रज की बीथिनि फिरति बही री ॥

देखी जाइ आजु गोकुल में, घर-घर बेचति फिरति रही री।

कहँ लगि कहीं बनाइ बहुत बिधि, कहत न मुख सहसहु निबही री ॥

जसुमति-उदर-अगाध उदधि तैं, उपजनि ऐसी सबनि कही री ।

सूरस्याम प्रभु इन्द्र-नीलमनि, ब्रज-बनिता उर लाइ गही री ॥

शब्दार्थ—सिंधु = सागर। पूरि = पूरी तरह से। बीथिनि = गलियों। विधि = प्रकार। उदर = कोख। उदधि = सागर। बनिता = स्त्रियों ने। लाइ = लगाकर। गही = ग्रहण करना।

प्रसंग—कंस कारावास में देवकी की कोख से उत्पन्न होने के तुरन्त बाद ही नवजात कृष्ण वृन्दावन में यशोदा के यहाँ आ गये थे। वृन्दावन में कृष्ण को यशोदा के गर्भ से उत्पन्न कहा-बताया गया। इसी नवजात कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का बखान करते हुए कोई ब्रज-गोपी अपनी सखी से कहती है—

व्याख्या—अरी सखी! उस (नवजात कृष्ण के रूप में सौन्दर्य की) शोभा रूपी समुद्र का कोई अन्त नहीं है (वह तो अथाह और असीम है)। वह तो (एक अगाध-असीम नदी की भाँति नन्द के भवन से पूरी तरह से भरे, उमड़ते हुए ब्रज की गलियों में प्रवाहित होने लगा है (अर्थात् नन्द के भवन में ही नहीं वरन् सारे ब्रज की गली-गली में बाल-कृष्ण के रूप-सौन्दर्य की चर्चाएँ होने लगी हैं)। (यह बात मैं कल्पना से या केवल सुनकर ही नहीं बता रही हूँ वरन्) मैंने स्वयं गोकुल जाकर इसको देखा है जबकि मैं घर-घर दही बेचती घूम रही थी (अतएव किसी एक स्थान पर ही नहीं वरन् घर-घर में ही इसकी चर्चा स्वयं सुनी-देखी है)। बहुत प्रकार से प्रयत्न करने पर भी मैं इस (रूप-सागर) का वर्णन कहाँ तक करूँ? इसका पूरा वर्णन तो हजार मुख वाले शेषनाग से भी नहीं हो सकता। सबने यही बताया है कि यशोदा के गर्भ रूपी अगाध सागर से इसका जन्म हुआ है और सूर के प्रभु नवजात कृष्ण नीलवर्णीय इन्द्रमणि के समान हैं जिसको ब्रज की स्त्रियों ने हृदय से लगाकर (सावधानीपूर्वक) रखा हुआ है।

विशेष—1. यहाँ पर कवि ने नवजात शिशु (कृष्ण) के सौन्दर्य का अतिशयोक्तिपरक किन्तु मनोरम अंकन किया है। 2. अलंकार—(क) रूपक—सोभा....बही री। जसुमति.....उदधि, पभु.....नीलमनि। (ख) अतिशयोक्ति—सोभ. रही, कहँ.....निबहि री। (ग) अनुप्रास—ब्रज की बीथिनी, ब्रज-बनिता। (घ) पुनरुक्ति—घर-घर। 3. 'री' लोकप्रचलित सम्बोधन से पद में स्वाभाविकता आ गयी है। 4. भावसाम्य—

- (क) वेग चलौं तो चलौं उत को, कवि तोष कहै, ब्रजराज दुलारे।
वे नद चाहत सिंधु भए पुनि सिंधु तो हुए जलाहल सारे।। —तोष
- (ख) गोपिनु के असुवनु भरी सदा असीस अपार।
डगर डगर नै है रही, बगर बगर कै बार।। —बिहारी: सतसई
- (ग) गोरिन के असुवान के नीर, पनारे बहे बहिके भए नारे।
नारेहु हू सो भइ नदियाँ, नदिया नद है गए काटि कगारे।। —तोष
- (घ) अश्रु सलिल बूड़त सब गोकुल सूर सुनकर गहि लीजै। —सूरदास

लाल हौ वारी तेरे मुख पर।

कुटिल अलक, मोहनि-मन बिहँसनि, भृकुटि विकट ललित नैननि पर ॥

दमकति दूध-दंतुलिया बिहंसत मनु सीपज घर कियौ बारिज पर।

लघु लघु लट सिर घूंघरवारी, लटकन लटकि रह्यौ माथे पर ॥

यह उपमा कापै कहि आवै, कछुक कहाँ सकुचित हैं जिय पर।

नव तन-चन्द्र रेख-मधि राजत, सुरगुरु-सुक-उदोत परस्पर ॥

लोचन लोल कपोल ललित अति, नासा कौ मुक्ता रदछद पर।

सूर कहा न्यौछावर करियै अपने लाल ललित लरखर पर ॥

शब्दार्थ—हैं = मैं। वारी = न्यौछावर। कुटिल = टेढ़ी, घुंघराली। अलक = केश। मोहनि = मन-मोहक। बिहँसनि = मुस्कान। भृकुटि = भौं। विकट = घनी, टेढ़ी। ललित = सुन्दर। सीपज = मोती। बारिज = जल से उत्पन्न होने वाला, कमल। कापै = किस पर। मधि = चन्द्रमा। सुरगुरु = देवताओं के गुरु, बृहस्पति। उदोत = प्रकाशित। लोल = सुन्दर। कपोल = गाल। ललित = सुन्दर। नासा = नासिका। रदछद = होंठ। लरखर = लटें।

नोट

प्रसंग—बालकृष्ण के रूप सौन्दर्य को देख और उससे (वात्सल्य भाव में भरकर) प्रभावित होते हुए माता यशोदा कहती हैं—

व्याख्या—हे पुत्र (कृष्ण)! मैं तेरे मुख (की सुन्दरता) पर बलिहारी जाती हूँ। तेरी घुँघराली केश-लटों, मनमोहक मुस्कान और सुन्दर नेत्रों पर स्थित बंकिम भौहें अत्यधिक मनमोहक हैं। हँसते हुए दूध के दो दाँत इस प्रकार दमकते हैं मानों कमल (रूपी मुख-होठों) पर मोतियों (रूपी दाँतों) ने घर कर लिया हो। तुम्हारी घुँघराली केश-लटें, मुस्कान तथा सुन्दर नेत्रों पर स्थित बंकिम भौहें मन को मोहित करने वाली हैं। हँसते समय दूध के छोटे-छोटे दाँत इस प्रकार चमकते हैं मानो (जल में उत्पन्न होने वाले) कमल पर (सीपी से उत्पन्न होने वाले) मोतियों ने निवास किया हुआ हो। सिर पर स्थित घुँघराले केशों की छोटी-छोटी लटें तुम्हारे माथे पर लटकी हैं। इनकी उपमा किसके कहने में आ सकती है (क्योंकि यह तो अनुपम है) फिर भी कुछ सकुचाते हुए कहती हूँ कि (ऐसा प्रतीत होता है) मानो नये द्वितीया के चन्द्र के मध्य देवगुरु बृहस्पति और शुक्र परस्पर मिलकर प्रकाश कर रहे हों। तुम्हारे नेत्र और गाल सुन्दर हैं तथा नाक में पहना गया मोती होठों पर (प्रतिबिम्बित होकर) दमक रहा है। अपने पुत्र कृष्ण पर क्या-क्या न्यौछावर करूँ?

विशेष—1. यहाँ पर माता यशोदा के वात्सल्यमय हृदय की झाँकी एकदम स्वाभाविक और मनोविज्ञानसम्मत रूप में प्रस्तुत की गई है। 2. बालकृष्ण के सौन्दर्य का काव्यात्मक अंकन सूर की काव्य-प्रतिभा का परिचायक बन पड़ा है। 3. अलंकार—(क) अनुप्रास—दमकति.....दंतुलिया, लघु.....लट, लोचन लाल, लाल.....लरखर। (ख) उत्प्रेक्षा—मनु सीपज.....बारिज पर। (ग) पुनरुक्ति—लघु-लघु। (घ) उपमा—नव.....परस्पर। (ङ) अतिशयोक्ति—यह जिय पर। 4. भावसाम्य—

- (क) वर दंत की पंगति कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच जगै छवि मोतिन माल अमोलन की ॥
घुघरारि लटैं, लटकैं मुख ऊपर, कुंडल लाल कपोलन की।
नेवछावरि प्रान करै तुलसी बलि जाऊँ लला, इन बोलन की ॥—तुलसी : कवितावली
- (ख) ललन हों या छवि ऊपर वारी।
सुन्दरता को पार न पावति, रूप देखि महतारी ॥ —सूरदास
- (ग) लालन वारि या मुख ऊपर।
सरबस मैं पहिलै ही वार्यौ, नान्हीं नान्हीं दंतुली दू पर।
अब कहा करौ निछावरि, सूरज, सोचति अपने लालन जू पर।—सूरदास

5. वात्सल्य से ओतप्रोत इस प्रकार के पद कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-क्षमता के परिचायक तो हैं ही, कवि के जन्मान्ध होने पर भी प्रश्नवाचक चिन्ह लगा देते हैं।

सोभित कर नवनीत लिये।

घुटुरुनि चलत रेनु-तन मंडित, मुख दधि लेप किए ॥

चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए।

लट लटकनि मनु मत्त मधुपगन मादक मधुहिं पिए ॥

कठुला कंठ बज्र केहरि-नख; राजत रुचिर हिए।

धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख, का सतकाल्य जिए ॥

शब्दार्थ—नवनीत = माखन। कर = हाथ। घुटुरुनि = घुटनों के बल। रेनु = धूल। मंडित = युक्त, सजा हुआ। दधि = दही। चारु = सुन्दर। लोचन = नेत्र। गोरोचन = गोबर। मधुपगन = भ्रमर समूह। कठुला = ताबीज। बज्र = मणि। केहरि-नख = शेर का नाखून। रुचिर = सुन्दर। हिए = हृदय। का = क्या। सत = शत।

प्रसंग—घुटनों के सहारे चलने वाले बालकृष्ण के मनोहर रूप-सौन्दर्य का चित्रण करते हुए सूर ने कहा है—

व्याख्या—अपने हाथ में माखन लिये हुए बालकृष्ण सुशोभित (प्रतीत हो रहे) हैं। घुटनों के सहारे चलने से उनका शरीर (हाथ-पैर आदि) मिट्टी से युक्त हैं तथा मुख पर (असावधानीवश मक्खन वाला हाथ फेरने के कारण मानो) दही का लेप किया हुआ है। उनके गाल सुन्दर एवं नेत्र चंचल हैं तथा माथे पर गोबर का टीका लगा हुआ है।

(घुटनों के बल चलने और उल्टे पृथ्वी की ओर झुके होने के कारण) उनके माथे पर पड़ी केश-लटें ऐसी लगती हैं। मानों (मुख-कमल से सौन्दर्य रूपी) मादक मधु पीने के लिए मस्त बना भ्रमर-समुदाय (भंडरा रहा) है। उनके गले में कठुला पड़ा है जिसमें मोती और शेर के नाखून जड़े हुए हैं। यह कठुला उनके हृदय पर सुशोभित हो रहा है। कृष्ण के इस रूप-सौन्दर्य को क्षण भर देखने का सुख भी धन्य है (और बिना इसके) सैकड़ों कल्पों तक जीवित रहने से क्या लाभ?

विशेष—1. बालकृष्ण के बाह्य सौन्दर्य और मुद्रा-चित्रण का यह वर्णन कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-क्षमता का परिचायक है। 2. कवि (या कृष्ण) का समकालीन ग्राम्य समाज-विशेषतः ब्रज-समाज की स्थिति की झलक यहाँ मिलती है; यथा नवनीत, गोरोचन-तिलक, कठुला.....नख आदि से। 3. 'कठुला.....हिण' अंश में कवि का लोकज्ञान प्रकट होता है। भारतीय ग्राम्य समाज में नजर उतारने या न लगने के लिये कठुला-प्रयोग आज भी प्रचलित है। 4. अन्तिम पंक्ति में कवि की अनन्य भक्ति-भावना प्रकट हुई है। 5. 'बालकृष्ण भक्ति' पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय की प्रमुख मान्यता है, प्रस्तुत पद इसी प्रभाव का परिचायक है। 6. अलंकार—(क) उत्प्रेक्षा—लट.....पिण। (ख) अनुप्रास—कठुला कंठ, लोल लोचन, मनु.....मधुहि, राजत रुचिर।

7. भावसाम्य—(क) अरविन्दु सो आननु रूप मरंदु अनंदित लोचन-भृंग पिण।

—तुलसी : कवितावली

(ख) आंगन फिरत घुटुरुवनि धाए।

—तुलसी: गीतावली

कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताई?

खेलत कुँवर कनक आँगन में नैन निरखि छवि पाई ॥

कुलही लसति सिर स्यामसुन्दर कै, बहुविधि सुरंग बनाई।

मानौ नव घन ऊपर राजत मधवा धनुष चढ़ाई ॥

अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन मोहन-मुख बगराई।

मानौ प्रकट कंज पर मंजुल अलि-अवली फिरि आई ॥

नील सेतु अरु पीत, लाल मनि लटकन भाल रुलाई।

सनि, गुरु-असुर, देवगुरु मिलि मनौ भीम सहित समुदाई ॥

दूध-दंत-दुति कहि न जाति कछु अद्भुत उपमा पाई।

किलकत हँसत दुरति प्रगटति मनु घन में बिज्जु छटाई ॥

खंडित बचन देत पूरन सुख अलप-जलप जलपाई।

छुटुरुनि चलत रेनु-तन मंडित, सूरदास बलि जाई ॥

शब्दार्थ—बरनौं = वर्णन करूँ। कनक = स्वर्ण। कुलही = टोपी। लसति = शोभित। सुरंग = रंग-बिरंगी। मधवा धनुष = इन्द्र धनुष। चिकुर = केश। बगराई = फैले हुए। कंज = कमल। अलि-अवली = भ्रमरों की पंक्तियाँ। सेतु = श्वेत। रुलाई = सुन्दर। गुरु-असुर = असुरों के गुरु, शुक्राचार्य। देवगुरु = बृहस्पति। भीम = मंगल। समुदाई = समुदाय। दुरति = छिपती। जलपाई = बोलना।

प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—(सूरदास जी कहते हैं) “श्री कृष्ण की सुन्दरता का कहाँ तक वर्णन करूँ? वे (बालक कृष्ण) स्वर्णिम आँगन में खेल रहे हैं। उन्हें देखकर नेत्रों में अद्भुत शोभा छा जाती है। कृष्ण के सिर पर छोटी-छोटी सी, अनेक सुन्दर रंगों की बनी हुई, पगड़ी शोभायमान है। ऐसा लगता है मानो सुन्दर बादलों के ऊपर इन्द्रधनुष छा गया हो। कृष्ण के सुन्दर मुख पर इधर-उधर फैले हुए कोमल बाल ऐसे शोभायमान हैं मानो कमल के चारों ओर सुन्दर भ्रमरों की पंक्तियाँ फैली हुई हों। कृष्ण के शरीर का वर्ण नीला है। मुख कमल जैसा श्वेत वर्ण का है। उनके वस्त्र पीले रंग के हैं। उनकी लाल मणियों की माला, झूलती हुई अत्यन्त सुन्दर लग रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो शनि (नीला), शुक्र (पीला), बृहस्पति (श्वेत) और मंगल (लाल) एक ही स्थान पर मिल गये हों। उनके दूधिया दाँतों की चमक का वर्णन नहीं किया जा सकता। उनकी उपमा एक ही चीज से दी जा सकती है। जब कृष्ण किलकारी मारकर हँसते हैं तो दाँत कभी छिपते हैं कभी दिखाई देने लगते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो बादलों में बिजली-छिपी हुई हो। कृष्ण

नोट

के अधूरे वचन आनन्द देते हैं जो फल को थोड़ा-थोड़ा खाने में आता है। घुटनों से चलने वाले, धूल से जिसका शरीर युक्त है, मैं उस कृष्ण पर बलिहारी जाता हूँ।”

विशेष—1. अलंकार—(क) अतिशयोक्ति—कहाँ लौ..... सुन्दरताई। (ख) उत्प्रेक्षा—कुलही.....चढ़ाई, अति.....आई, नील.....समुदाई, दूध.....छटाई। (ग) यथासंख्य—कुलही.....जलपाई। (घ) अनुप्रास—दूध.....दुति, सिर.....सुन्दर कै, अलि.....अवली। 2. यहाँ पर बालकृष्ण के बाह्य सौन्दर्य का सर्वांग (नख-शिख) चित्रण है। 3. ‘कुलही’ का प्रयोग तत्कालीन (कवि-युगीन) मुस्लिम समाज का प्रभाव है। 4. भाषा की दृष्टि से ‘कुलही’ (फारसी), बगराई जलपाई, अलप-जलप आदि (देशज शब्दावली) तथा कनक, मधवा, कंज, मंजुल, अलि-अवली आदि तत्सम-परक संस्कृत शब्दावली के परिचायक हैं। 5. उपमान-योजना की झड़ी कवि के सटीक काव्यशास्त्रीय ज्ञान की परिचायक है। 6. भावसाम्य—

(क) भाल बिसाल ललित लटकन वर, बालदसा के चिकुर सुहाए।

मनु दोउ गुर सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए।

—तुलसी : गीतावली

7. ‘सनि..... समुदाई’ काव्यांश कवि के ज्योतिष ज्ञान का परिचायक है। साथ ही, चारों वर्णों का समुचित रूप मंगलकारी माने जाने से कवि कृष्ण के प्रति मंगलकामना भी प्रकट कर देता है।

हरिजू की बाल-छवि कहैं बरनी।

सकल सुख की सींव, कोटि मनोज-शोभा-हरनि ॥

भुज-भुजंग सरोज-नैननि, बएन बिधु लरनि।

रहे बिबरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि ॥

मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूषन भरनि।

मनहु सुभग सिंगार-सिसु-तरु, फर्यो अद्भुत फरनि ॥

चलत पद प्रतिबिम्ब मनि-आँगन घुटरुवनि करनि।

जलज संपुट-सुभ-छवि भरि लेति उर जनु धरनि ॥

पुन्यफल अनुभवति लुतहिं विलोकि के नंद-घरनि।

सूर प्रभु की उर बसी किलकनि ललित लरखरनि ॥

शब्दार्थ—बरनी = वर्णन करना। सींव = सीमा। मनोज = मन्मथ, काम-देव। भुजंग = सर्प। सरोज = कमल। बदन = मुख। बिधु = चन्द्रमा। लरनि = लड़कर, युद्ध में। बिबरनि = वर्ण रहित, बिल। सलिल = जल। अपर = दूसरी। दुरि = छिप गयीं। मेचक = केश। अनुहरत = शोभित। फरनि = फल। संपुट = दोना। उर = हृदय। धरनि = पृथ्वी। घरनि = पत्नी। किलकनि = किलकारी। लरखरनि = लड़-खड़ाहट।

प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—मैं श्रीकृष्ण की बाल-छवि का वर्णन करता हूँ जो समस्त सुखों की सीमा तथा करोड़ों कामदेवों (के सौन्दर्य) की शोभा का हरण करने वाली है। (सौन्दर्य-समानता के) युद्ध में (श्रीकृष्ण की) भुजाओं ने सर्प को, नेत्रों ने कमलों को और मुख ने चन्द्रमा को जीत लिया (अर्थात् श्रीकृष्ण के ये अंग अन्य उपमानों से भी अधिक सुन्दर हैं।) इसी से लज्जित होकर ये सभी उपमान क्रमशः बिल, जल और आकाश में जाकर (और मुँह छिपाकर) रहने लगे। (इसी भाँति अन्य अंग-प्रत्यंगों के) विविध दूसरे उपमान भी डरकर (पहले से ही) छिप गये (ताकि कम से कम परास्त होने और लज्जित होने से तो बच सकें) उनके केश सुन्दर हैं तथा शरीर कोमल जो नाना आभूषणों से सुसज्जित होकर ऐसा लगता है मानो सुन्दर हारसिंगार के छोटे से वृक्ष (रूपी बालकृष्ण के शरीर पर) अद्भुत फल (रूपी आभूषण) फले हों। मणियों से निर्मित (या सुसज्जित) आँगन में घुटनों के बल चलते समय (कृष्ण के) चरणों का (मणियों में पड़ता हुआ) प्रतिबिम्ब ऐसा प्रतीत होता है मानो पृथ्वी कमल-दोने की सुन्दर छवि (प्रतिबिम्ब) को (प्रसन्न होकर) हृदय से भर रही हो (धारण कर रही हो)। नंद की पत्नी यशोदा ऐसे सुन्दर पुत्र (कृष्ण) को देखकर अपने (पूर्वसंचित) पुण्य-कर्मों का अनुभव करती हैं। उनके हृदय में (सूर के) प्रभु कृष्ण की किलकारी तथा (चलने के समय की) लड़खड़ाहट बस गयी है।

नोट

विशेष—1. वात्सल्य-चित्रण का एक सबल अंग होता है—शिशु के अंग-प्रत्यंगों और क्रीड़ाओं का अंकन करना। यह पद इसी का प्रमाण है। 2. कवि के भाव-चित्रण की दृष्टि से यह पद महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें कवि की सूक्ष्म और स्वाभाविक चित्रण की भाव-विषयक विशेषता एकदम परिपक्व रूप में मिलती है। 3. कवि की अद्भुत उपमान-योजना सबल तो है ही, नवीन भी है। 4. अलंकार—(क) अनुप्रास—सकल-सींव, मंजु....मृदुल। (ख) अतिशयोक्ति—सकल....हरनि। (ग) प्रतीप—भुज....डरनि। (घ) उत्प्रेक्षा—मनहु....फरनि, चलन....धरनि। 5. ‘लरखरनि’ देशज शब्दावली प्रयोग का उदाहरण है।

6. भावसाम्य—‘रघुवर बाल छवि कहौ बरनी।’ —पूरा पद तुलसी : गीतावली

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।

मनिमय कनक नंद के आँगन, बिम्ब पकरिबै धावत ॥

कबहुं निरखि आपु हरि छाँह कौं, कर सों पकरन चाहत।

किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत ॥

कनक भूमि पर कर-पग-छाया, यह उपमा इक राजति।

करि करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा कमल-बैठकी साजति ॥

बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नंद बुलावति।

अंचरा-तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति ॥

शब्दार्थ—घुटुरुवनि = घुटनों के बल। कनक = स्वर्ण। बिंब = परछाई। कर = हाथ। रजत = शोभित। अवगाहत = करते हैं। बसुधा = पृथ्वी।

प्रसंग—बाल-कृष्ण अपने आँगन में घुटनों के बल चलते हुए नाना बाल-सुलभ क्रीड़ाएँ कर रहे थे। उनको देख माता यशोदा का हृदय वात्सल्य-भाव से भर उठा।

व्याख्या—(बालसुलभ प्रसन्नता में भर कर) किलकारी मारते हुए बालक कृष्ण (भवन के आँगन में) घुटनों के बल (चलते हुए) आ रहे हैं। नंद के भवन का आँगन मणियों और सोने से युक्त है जिसमें (प्रतिबिम्बित होती हुई) अपनी परछाई को पकड़ने के लिये कृष्ण (घुटनों के बल तेजी से चलते हुए मानो) दौड़ रहे हैं। कभी कृष्ण अपनी छाया को देख हाथ से पकड़ना चाहते हैं (और पकड़ लेने की भ्रांतिजन्य प्रसन्नता में भरकर किलकारी मारकर हँसते समय उनके आगे के) दूध के दो दाँत दीख जाते हैं और बारम्बार वही क्रिया दोहराते हैं। आँगन की स्वर्ण-भूमि पर (चलते समय पड़ने वाली) हाथ-पैरों की परछाई को देखकर यही एक उपमा ठीक प्रतीत होती है कि (पग-पग पर पड़ने वाली हाथ-पैरों की छाया रूपी) मणियों से पग-पग पृथ्वी अपनी कमल-बैठक को सजा रही है। बालकृष्ण की इस सुखद अवस्था को देख यशोदा (उत्साह और ममत्व से भरकर कृष्ण-क्रीड़ा दिखाने के लिये) बारम्बार नंद को बुलाती हैं और (अतिशय ममत्व में भर भावी आशंका से डर) आँचल से ढक सूर के प्रभु कृष्ण को दुग्धपान कराने लगती हैं।

विशेष—1. प्रस्तुत पद के पूर्वार्द्ध में बालकृष्ण के माध्यम से बाल-मनोवृत्ति का एवम् उत्तरार्द्ध में यशोदा के माध्यम से मातृ-हृदय के वात्सल्य-भाव का एकदम मनोविज्ञान-सम्मत और स्वाभाविक अंकन किया गया है। 2. ‘कबहुं....अवगाहत’ काव्यांश कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-क्षमता का द्योतक है और कवि के जन्मान्ध होने की मान्यता पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा देता है। कारण यह है कि इस प्रकार के सूक्ष्म-स्वाभाविक चित्रण बिना देखे-भोगे करना प्रायः संभव नहीं है। 3. ‘अंचरा.....ढाँकि’ अंश यशोदा के साधारण-ग्राम्य मातृत्व का सबल परिचायक है और एकदम स्वाभाविक बन पड़ा है। 4. ‘कनक.....साजति’ अंश में एकदम नवीन उपमान-योजना प्रस्तुत की गयी है। 5. अलंकार—(अ) अनुप्रास—किलकत कान्ह। (ख) पुनरुक्ति—पुनि-पुनि। (ग) उपमा—कनक.....साजति। (घ) तद्गुण—कनक....साजति।

6. भावसाम्य—रघुवर बाल छवि कहौ बरनि।.....

—तुलसी : गीतावली

लसत कर-प्रतिबिम्ब मनि-आँगन घुटुरुवनि चरनि।

जनु जलज-संपुट सुछवि भरि-भरि धरति उर धरनि ॥

सखि री, नंद-नंदन देखु।

धूरि-धूसर जटा जुटली, हरि किए हर-भेषु ॥

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

नोट

नील पाट रिपोई मनि-गन, फनिग धोखे जाइ ।
 खुनखुनाकर हँसत हरि, हर नचत डमरू बजाइ ॥
 जलज-माल गुपाल पहिरे, कहा कहौ बनाइ ।
 मुंडमाल मनौ हर-गल, ऐसी सोभा पाई ॥
 स्वाति-सुत-माला बिराजत स्याम तन इति माइ ।
 मनो गंगा गौरि-उर हर लइ कंठ लगाइ ॥
 केहरी-नख निरखि हिरदे, रही नारि बिचारि ।
 बाल-ससि मनु भाल तैं लै उर धर्यो त्रिपुरारि ॥
 देखि अंग-अनंग झझक्यौ, नंद-सुर हर जान ।
 सूर के हिरदै बसौ नित स्याम-सिव को ध्यान ॥

शब्दार्थ—धूसर = युक्त । हर = शिव । पाट = माला । फनिग = सर्प । खुनखुन = खिलखिला । स्वातिसुत = मोती । भाल = माथा । उर = हृदय । त्रिपुरारि = त्रिपुर के शत्रु, शिव । अनंग = कामदेव । सुत = पुत्र ।

प्रसंग—बालकृष्ण के शिव-वेषी सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कोई ब्रज-रमणी अपनी सखी से कहती है—

व्याख्या—अरी सखी! नंद के पुत्र को देखो । कृष्ण (हरि) की जटायें धूल धूसरित होकर ऐसी लग रही हैं जैसे उन्होंने शिव का वेश धारण कर लिया हो । उनके नीले शरीर पर मणियों की माला को देखकर सर्प भी धोखे में आ जाते हैं कि कहीं ये शंकर तो नहीं हैं जो खिलखिलाकर हँसते और नाचते हुए डमरू बजाते हैं । कृष्ण ने गले में कमलों की माला पहन रखी है । उसका क्या वर्णन करूँ? यह माला ऐसी शोभित हो रही है मानो शिव के गले में मुंडों की माला हो । मोतियों की माला श्रीकृष्ण के शरीर पर ऐसी शोभित हो रही है मानो पार्वती के उर से शिव ने गंगा को अपने हृदय से लगा लिया हो । छाती पर सुशोभित सिंह-नख को देखकर नारियाँ यह विचार करती हैं मानो शिवजी ने बाल चन्द्रमा को मस्तक से उतार कर, हृदय पर धारण कर लिया हो । श्रीकृष्ण के अंगों को शिव रूप समझ कर कामदेव भी घबरा गया । (सूरदास कहते हैं कि) “शिव रूपी श्रीकृष्ण का यह ध्यान सदैव मेरे हृदय में बसा रहे ।”

विशेष—1. अलंकार—(क) अनुप्रास—नद-नंदन, धूरि-धूसर, हँसत.....हर, अंग-अनंग । (ख) भ्रम—नील.....जाइ । (ग) अतिशयोक्ति—जलज.....बनाइ । (घ) उत्प्रेक्षा—मुंड.....पाइ, स्वाति.....लगाइ, केहरी.....त्रिपुरारि, बाल.....जान । 2. यहाँ पर कवि ने देशज शब्दों का एकदम मर्मस्पर्शी और रसात्मक प्रयोग किया है (यथा धूरि-धूसर, खुनखुना, झझक्यो आदि) । 3. अंतिम पंक्ति में कवि की अनन्य भक्ति-भावना प्रस्फुटित होती है । 4. दार्शनिक दृष्टि से यहाँ पर शैववाद और वैष्णववाद का समन्वय है जो कवि की समन्वयवादी उदार विचार-दृष्टि का भी परिचायक है ।

देखौ माई! दधिसुत मैं दधि जात ।

एक अचंभौ देखि सखि री! रिपु मैं रिपु जु समात ॥

दधि पर कीर, कीर पर पंकज, पंकज के द्वै पात ।

यह शोभा देखत पसुपालक, फूलै अंग न समात ॥

बारंबार बिलोकि सोचि चित, नंद-महर मुसुक्यात ।

यहै ध्यान मन आनि स्याम कौ, सूरदास बलि जात ॥

शब्दार्थ—दधिसुत = समुद्र का पुत्र, चन्द्रमा (मुख) । दधि = समुद्र, दही । रिपु = शत्रु (चन्द्रमा और कमल-हाथ) । कीर = तोता (नाक) । पंकज = कमल (नेत्र) । पात = पत्ते (पलकें) । बिलोकि = देखकर । महर = पत्नी (यशोदा) । बलि = न्यौछावर, बलिहारी ।

प्रसंग—कोई ब्रज-रमणी (अथवा यशोदा) बालक कृष्ण को दही खाते हुए देखती है और वात्सल्य के साथ-साथ आश्चर्य-भाव से अभिभूत हो अपनी किसी अंतरंग सखी (अथवा यशोदा) से कहती है—

व्याख्या—अरी माई! देखो । चन्द्रमा में समुद्र प्रवेश कर रहा है (अर्थात् समुद्र के पुत्र चन्द्रमा जैसे कृष्ण मुख से दही खा रहे हैं) । अरी सखी! मैंने एक आश्चर्य देखा है कि शत्रु-शत्रु से मिल रहा है (अर्थात् चन्द्रमा और कमल मूलतः शत्रु हैं क्योंकि चन्द्रोदय होने पर कमल मुरझा जाता है लेकिन यहाँ चन्द्रमुख से कमल हस्त मिला रहा है) ।

नोट

(इतना ही नहीं वरन्) समुद्र पर तोता बैठा हुआ है (जबकि साधारणतः तोता जल पर नहीं, कमल पर बैठ सकता है), तोते पर कमल और कमल पर केवल दो पत्ते हैं (अर्थात् कृष्ण का मुख शोभा का सागर है जिसके ऊपर नाक रूपी तोता है और उसके ऊपर कमल जैसे नेत्र तथा नेत्रों पर केवल दो पत्ते रूपी पलकें हैं)। (कृष्ण की) इस (अद्भुत) शोभा को देखकर पशुओं का पालन करने वाले ब्रज के निवासी-जन (अथवा शिव भी) प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं मानों उनका एक-एक अंग प्रसन्नता की अतिशयता से भरकर फूला नहीं समाता। इस कृष्ण-सौन्दर्य को बारम्बार देखकर नंद की पत्नी यशोदा मन में सोच-सोच (और प्रसन्न होकर) मुस्कराने लगती हैं। श्याम के इस रूप-ध्यान के मन में आने पर (कवि अथवा यशोदा) बलिहारी जाते हैं।

विशेष—1. यह पद कवि के कूटकाव्य का परिचायक है। 2. पद-पूर्वार्द्ध में शाब्दिक चमत्कार का प्रदर्शन किया गया है। 3. कवि का पांडित्य और उक्ति-कौशल एकदम सजीव बन पड़ा है। 4. यहाँ पर आश्चर्य, उत्कंठा और वात्सल्यपरक मोहादि भावों का रसमय अंकन किया गया मिलता है। 5. अलंकार—(क) यमक—दधि-दधि, रिपु-रिपु कोर, पंकज। (ख) रूपकातिशयोक्ति—एक.....समात। (ग) विरोधाभास—दधि.....पात। (घ) श्लेष—पशुपालक। 6. माई! लोक-प्रचलित आश्चर्यसूचक सम्बोधन है और यहाँ पर एकदम सटीक। 7. 'फूलै.....समात' एक सुन्दर मुहावरा-प्रयोग है। 8. अंतिम पंक्ति में कवि की अनन्य भक्तिभावना का प्रकटीकरण है।



टास्क श्रीकृष्ण के बाल रूप सौंदर्य का अपने शब्दों में चित्रण कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. कृष्ण कंस के में देवकी की कोख से उत्पन्न हुए थे।
2. हाथ में माखन लिए सुशोभित हैं।
3. कृष्ण के सुन्दर मुख पर इधर-उधर फैले हुए कोमल बाल ऐसे शोभायमान हैं, मानो के चारों ओर सुन्दर भ्रमरों की पंक्तियाँ फैली हुई हों।

3.1.1 शृंगार-पदः संयोग शृंगार

मुरली तऊ गुपालहि भावति ।

सुनि री सखि! जदपि नंदलालहिं, नाना भांति नचावति ॥

राखति एक पाइ ठाढ़ी करि, अति अधिकार जनावति ।

कोमल तन आज्ञा करवावति, करि ढेढ़ी है आवति ॥

अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नार नवावति ।

आपु पौढ़ि अधर-सज्जा पर, कर-पल्लव सन पद पलुटावति ॥

भृकुटि कुटिल, नैन नासा-पुट, हम पर कोप करावति ।

सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, अधर सुसीस डुलावति ॥

शब्दार्थ—तऊ = तुम्हारी। भावति = अच्छी लगती है। नचावति = परेशान करती है। ठाढ़ी = खड़ा। जनावति = दिखाती है। कनौड़े = दास। नार = गरदन। नवावति = झुकवाती। पौढ़ि = लेट कर। सज्जा = शय्या। पलुटावति = दबवाती। कुटिल = टेढ़ी। नरासा-पुट = नथुने। कोप = क्रोध।

प्रसंग—कृष्ण की वंशी के प्रति सौतिया भाव प्रकट करते हुए (एवं परोक्षतः सौत के वशीभूत कृष्ण पर व्यंग्य करते हुए) एक गोपी दूसरी से कहती है—

नोट

व्याख्या—हे सखी! यद्यपि वह मुरली नंद के पुत्र कृष्ण को तरह-तरह के नाच नचाती है (परेशान करती है) फिर भी उन्हें अच्छी लगती है। यह उनको एक पैर पर खड़ा रखती है (मुरली बजाते समय कृष्ण की मुद्रा ऐसी ही होती है) और अपना अधिकार प्रदर्शित करती है। कृष्ण का शरीर कोमल है फिर भी यह उनसे अपनी आज्ञा का पालन कराती है जिसके फलस्वरूप उनकी कमर टेढ़ी हो जाती है। (यद्यपि कृष्ण पर्वत को धारण करने वाले होने के कारण वीर हैं लेकिन यह नारी—बांसुरी—उन्हें भी झुका देती है)। साथ ही साथ यह इतनी स्वार्थिनी भी है कि स्वयं तो अधर रूपी शय्या पर विराजमान रहती है और कृष्ण के पत्ते जैसे कोमल हाथों से अपने चरण छिद्र दबवाती है। यह कृष्ण की भीलों को टेढ़ा और नथुनों को कोपयुक्त (फूले हुए) बनाकर न केवल हम पर अपना क्रोध प्रकट करती है वरन् उनको भी हमारे प्रति क्रोधित कर देती है। कृष्ण इससे इतने अधिक प्रभावित हैं कि इसको प्रत्येक क्षण प्रसन्न जान, स्वयं भी मस्त हो, अपना शीश हिलाते रहते हैं।

विशेष—1. यहाँ कवि का वाक्चातुर्य और काव्य-कौशल दोनों ही देखने योग्य बन पड़े हैं। 2. नारी-मनोविज्ञान और तत्कालीन युग में नारी-समाज की स्थिति का द्योतक यह पद एकदम भाव-सबल और स्वाभाविक बन पड़ा है। 3. सूर की भाषा का एक सबल तत्व है—शब्द का सटीक-उपयुक्त प्रयोग। प्रस्तुत पद में 'गिरिधर' और 'गुपालहिं' शब्द इसी के प्रमाण हैं। 4. ठाढ़ी, कनौड़े, पौढ़ि, पलुटावति आदि तथा सीस डुलावति आदि लोक-प्रचलित मुहावरों का सार्थक प्रयोग दृष्टव्य है। 6. वंशीवादक कृष्ण का मुद्रा-चित्रण एकदम सफल बन पड़ा है जो अंधकवि सूर की सूक्ष्म कल्पना-शक्ति का परिचायक है। 7. अलंकार—(क) श्लेष—गुपालहिं, गिरिधर। (ख) रूपक—कर-पल्लव। 8. 'आपुन-पलुटावति' में मुरली का (नायिका-रूप में) किया गया मानवीकरण अत्यधिक मनोरम बन पड़ा है।

जब हरि मुरली अधर धरी।

गृह-ब्यौहार तजे आरज-पथ, चलत न संक करी ॥

पद-रिपु-पट अटकायौ, न सम्हारति, उलट न पलट खरी।

सिव-सुत-वाहन आइ मिले हैं, मन-चित्त-बुद्धि हरी ॥

दुरि गये कीर, कपोत, मधुप, पिक सारंग सुधि बिसरी।

उडुपति, बिदुम, बिंब, खिसाने, दामिनि अधिक डरी ॥

मिलिहैं स्यामहिं हंस-सुता-तट, आनंद-उमंग भरी।

सूर-श्याम कौं मिली परसपर, प्रेम-प्रबाह ढरी ॥

शब्दार्थ—अधर = होंठ। ब्यौहार = कार्य-कलाप। आरज-पथ = आर्य (मान्यता या परम्परा वाली) मर्यादा का पथ। संक = शंका। पद-रिपु = पैर का शत्रु, काँटा। पट = वस्त्र। सिव-सुत-वाहन = शिव के पुत्र कार्तिकेय का वाहन, मोर। दुरि = छिपना। कीर = तोता। कपोत = कबूतर। मधुप = भ्रमर। पिक = कोयल। सारंग = मृग। उडुपति = नक्षत्रों का स्वामी, चन्द्रमा। बिदुम = मूँगा। बिम्ब = बिम्बा-फल। खिसाने = खिसिया गये। दामिनि = आकाश-विद्युत। हंस-सुता-पट = सूर्य की पुत्री यमुना नदी के किनारे।

प्रसंग—श्रीकृष्ण द्वारा किया गया वंशी-वादन अत्यधिक मनमोहक और आकर्षक है। कारण? उसके आकर्षण के वश में चर-अचर, जड़-जंगम सभी हो जाते हैं, फिर भला कृष्ण से अटल-अनन्य प्रेम करने वाला गोपी-समाज किस प्रकार अलूता रह सकता है? गोपी समाज पर पड़े वंशी-वादन-प्रभाव और गोपियों की प्रतिक्रियाओं का परिचय देते हुए कवि ने कहा है—

व्याख्या—जिस समय श्री कृष्ण ने (वादन करने के लिये) मुरली को अपने होठों पर रखा वैसे ही ब्रज की रमणियों द्वारा किये जाने वाले सभी प्रकार के घरेलू क्रिया-कलाप बन्द हो गये, यहाँ तक कि आर्य-मर्यादा के पथ को (जिसके अनुसार नारी को पर-पुरुष के सामने घर से नहीं निकलना चाहिये था) तज कर (कृष्ण के पास) जाने में भी उन्होंने शंका तक नहीं की (और वंशी-ध्वनि को सुनते ही घर-घर से दौड़ पड़ीं)। (इतना ही नहीं, पहुँचने की शीघ्रता में मार्ग पर दौड़ते समय) अपने वस्त्र में अटके काँटे को भी नहीं निकालती थी और न तो उलट कर काँटा देखतीं और न पलट कर खड़ी होतीं। वंशी-वादन को सुनकर शिव के पुत्र कार्तिकेय के वाहन अर्थात् मोर भी उनसे आकर मिल गये थे। सच में तो इस समय उनकी मन-चित्त और बुद्धि सभी का हरण हो चुका था (क्योंकि उतावली में सोच-विचार का प्रश्न ही नहीं था)। (कृष्ण-शरीर के सौन्दर्य को देख अंग-प्रत्यंग से समानता वाले उपमान भी छिप

नोट

गये। इस प्रकार नासिका का उपमान) तोता, (गरदन का उपमान) कबूतर, (केश राशि का उपमान) भ्रमर, (वाणी का उपमान) कोयल आदि (लज्जित होकर छिप गये तथा (नेत्रों के उपमान) मृग ने तो अपनी सुधि भी बिसरा दी (मानो मंत्रमुग्ध होकर रह गये थे)। इसी भाँति (मुख का उपमान) चन्द्रमा, (दाँतों का उपमान) मूँगा, (होठों का उपमान) बिम्बाफल खिसिया गये तो (शरीर की काँति का उपमान) आकाश-विद्युत और भी अधिक भयभीत हो गयी। सूर्य-पुत्री यमुना के तट पर आनंद-उमंग में भर गोपियाँ कृष्ण से मिलीं और सूरश्याम (कृष्ण) से परस्पर भेंट कर प्रेम-प्रवाह से युक्त हो गयीं।



क्या आप जानते हैं

जिस समय श्री कृष्ण ने (वादन करने के लिये) मुरली को अपने होठों पर रखा वैसे ही (ब्रज) की रमणियों द्वारा किये जाने वाले सभी प्रकार के घरेलू क्रिया-कलाप बन्द हो गये, यहाँ तक कि आर्य-मर्यादा के पथ को (जिसके अनुसार नारी को पर-पुरुष के सामने घर से नहीं निकलना चाहिये था) तज कर (कृष्ण के पास) जाने में भी उन्होंने शंका तक नहीं की (और वंशी-ध्वनि को सुनते ही घर-घर से दौड़ पड़ी)।

विशेष—1. प्रस्तुत पद में गोपियों की उत्कंठा, प्रेम-भरी विवशता और अनन्यता आदि का सजीव अंकन है। 2. प्रारम्भिक पंक्तियों में गोपी-समाज का सजीव मुद्रा-चित्रण मिलता है। 3. कृष्ण के बाह्य-सौन्दर्य का परोक्ष शैली में वर्णन कवि-कौशल का परिचायक बन पड़ा है। 4. अलंकार—(क) प्रतीक—सिव.....डरी। (ख) अतिशयोक्ति—दुरि.....डरी। (ग) अनुप्रास—स्थान-स्थान पर। 5. सिव-वाहन और हंससुता-तट में कूट शैली है।

6. भावसाम्य—

(क) मुरली अधर सजी बलबीर।

नाद सुनि बनिता बिमोहि, बिसारे उर-चीर ॥

—सूरदास

(ख) जैसी हुति उठि तैसिय दौरि, छाँड़ि सकल गृह-काम।

रोम पुलक गद्गद् भई तिहि छन, सोचि अंग अभिराम ॥

—सूरदास

(ग) किती न गोकुल कुलवधू, काहि न कित सिख दीन।

कौने तजी न कुल-गली, है मुरली-सुर लीन ॥

—बिहारी : सतसई

(घ) मुरली सुनत भई सब बौरी। मनहूँ परि सिर मांझ ठगौरी।

जो जैसे सो तैसे दौरि। तन व्याकुल भई बिबस किसोरी ॥

—सूरदास

सुनहु, हरि मुरली मधुर बजाई।

मोहे सुर-नर-नाग निरन्तर, ब्रज-बनिता उठि धाई ॥

जमुना-नीर-प्रवाह थकित भयो, पवन रहयो मुरझाई।

खग-मृग-मीन अधीन भये सब, अपनी गति बिसराई ॥

द्रुम, बेलि अनुराग-पुलक तनु, ससि थक्यो निसि न घटाई।

सूर-स्याम वृन्दावन विहरत, चलहु सखि सुधि पाई ॥

शब्दार्थ—मोहे = मोहित हुए। नाग = एक जाति। बनिता = स्त्रियाँ। धाई = दौड़ पड़ीं। खग = पक्षी। मीन = मछली। बिसराई = छोड़कर। द्रुम = वृक्ष। अनुराग = प्रेम। विहरत = विचरण करते हैं।

प्रसंग—वृन्दावन में विचरण करने वाले श्रीकृष्ण के वंशी-वादन का प्रभाव सर्वव्यापी है। उसी से आकर्षित-प्रभावित होकर कोई ब्रज-रमणी अपनी सखी से कहती है—

व्याख्या—(अरी सखी!) सुनो। कृष्ण ने मधुर (स्वर उत्पन्न करने वाली) वंशी बजाई है जिसको सुनकर देवता, मनुष्य और नाग (जो क्रमशः स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोक में रहते हैं) निरन्तर मोहित हो गये हैं तथा ब्रज की स्त्रियाँ (गोपियाँ) तो (जिस अवस्था में बैठी थीं, उसी अवस्था में) उठकर दौड़ पड़ीं। (वंशी की ध्वनि से मोहित होकर ही मानो) यमुना नदी का जल-प्रवाह थम गया तथा वायु ने भी संचरण बन्द कर दिया है। (आकाश में रहने वाले) पक्षी, (भूमि पर रहने वाले) हिरण तथा (जल में रहने वाली) मछलियाँ सभी इस (वंशी-वादन के आकर्षण) के वश में हो गये

नोट

हैं तथा अपनी स्वाभाविक गति (उड़ना, दौड़ना और तैरना) को भी भूल गये हैं। (वायु के मंद झोंकों में हिलते-डुलते हुए) वृक्ष और बेल (रूपी नायक-नायिका) के शरीर प्रेम-भाव के प्रसरण से पुलकित हो उठे हैं। (चन्द्रमा के रथ में जुते हुए मृग मोहित होकर आगे नहीं बढ़ते, फलतः रथ भी नहीं बढ़ता। परिणामतः रात्रि भी नहीं घटती मानो वंशी ध्वनि से आकर्षित-मोहित होकर) चन्द्रमा थम गया है और उसने रात्रि को भी नहीं घटाया। सूर के श्याम (कृष्ण) वृन्दावन में विहार कर रहे हैं। हे सखी! चलो, वही सुधि प्राप्त करेंगे।

विशेष—1. प्रस्तुत पद में नायिका (गोपी और वास्तव में कवि) का वाक्-कौशल एकदम मनोविज्ञान-क्रम में अंकित है। वंशी-वादन का त्रैलोक्य-प्राणियों, पशु-पक्षियों, जड़-चेतन आदि पर पड़ा प्रभाव अतिशयोक्तिपरक होने पर भी नायिका की मनोदशा का सच्चा परिचायक है। 2. यहाँ पर नायिका की गुणकथन, उत्कंठा, परोक्षतः मनोच्छा-प्रकटीकरण तथा प्रेमोद्दीपक अवस्था आदि विशेष दृष्टव्य हैं। 3. अलंकार—(क) अनुप्रास—नर.....निरन्तर, ब्रज-बनिता, वृन्दावन विहरत। (ख) अतिशयोक्ति—जमुना.....घटाइ। (ग) रूपक—अनुराग-पुलक तनु।

4. भावसाम्य—

(क) जैसी हुति उठि तैसिय दौरि, छाँड़ि सकल गृह-काम। —सूरदास

(ख) “जब हरि मुरली अधर धरत।

थिर चर चर थिर पवन थकित रहैं, जमुना-जल न बहत।

खग मोहे, मृग-जूथ भुलाहीं, निरखि मदन छवि रहत।”

—सूरदास

(ग) गहै बीन मकु रैन बिहाई। ससि बहन तहँ रहे ओनाई ॥

—जायसी : पद्मावत

(घ) किती न गोकुल कुलवधू, काहि न किन सिख दीन।

कौन न तजी न कुल गली, है मुरली-सुर लीन ॥

—बिहारी : सतसई

मानो माई घन घन अंतर दामिनी।

घन दामिनी दामिनी घन अंतर, सोभित हरि-ब्रज भामिनि ॥

जमुन पुलित मल्लिका मनोहर, सरद सुहाई जामिनि।

सुन्दर ससि गुन रूप-राग-निधि, अंग-अंग अभिरामिनि ॥

रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौं, मुदित भई गुन-ग्रामिनि।

रूपनिधान, स्यामसुन्दर घन, आनंद मन बिस्त्रामिनि ॥

खंजन-मीन-मयूर-हंस-पिक, भाइ-भेद गजगामिनि।

को गति गनै सूर-मोहन संग, काम बिमोह्यो कामिनि ॥

शब्दार्थ—घन = घने। घन = मेघ। दामिनि = आकाश-विद्युत। भामिनि = स्त्रियाँ, गोपियाँ। पुलिन = तट। मल्लिका = एक बेल। जामिनि = यामिनी, रात्रि। राग = प्रेम। अभिरामिनि = शोभा। राइ = भुला कर। गनै-गिने। बिमोह्यो = मोहित किया।

प्रसंग—शरद-पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र के मादक चन्द्रिकामय वातावरण में श्रीकृष्ण ब्रज-रमणियों के साथ रास-लीला कर रहे हैं। उसी का परिचय देते हुए कोई ब्रज-रमणी अपनी अंतरंग सखी से कहती है—

व्याख्या—(श्रीकृष्ण और गोपियों द्वारा की गयी रास लीला को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि) मानो घने मेघ (वर्णीय कृष्ण के आलिंगन रूपी हृदय) में (गौरवर्णीय सजी-धजी गोपी रूपी) आकाश-विद्युत हो। इस समय मेघ में विद्युत है और विद्युत में मेघ (अर्थात् श्यामवर्णीय कृष्ण और गौरवर्णीय गोपियाँ परस्पर नृत्य करते हुए एक-दूसरे से लिपटे हुए प्रतीत होते हैं)। इसी रूप में श्रीकृष्ण और ब्रज की स्त्रियाँ (गोपियाँ) सुशोभित हो रही हैं। (यमुना-तट पर) मल्लिका की सुगंधित लताएँ मनोरम प्रतीत होती हैं तथा शरद (कालीन पूर्ण चन्द्रिका वाली) रात्रि सुशोभित हुई लगती है। ऐसे में सुन्दर चन्द्रमा के समान गुण, रूप प्रेम की खान (गोपियों के एक-एक अंग-प्रत्यंग) की शोभा सुन्दर लगती है। आज उन गोपियों ने रसिक-शिरोमणि (श्रीकृष्ण) के साथ मिलकर रास रचा है। इसी से वे गुणवती ग्रामीण स्त्रियाँ अत्यधिक प्रसन्न हैं। मेघवर्णीय श्रीकृष्ण रूपनिधान हैं तथा मन को आनन्द और विश्राम देने वाले (प्रतीत होते) हैं। खंजन, मछली, मोर, हंस तथा कोयल आदि के (परम्परागत उपमानों के) भेद-भाव को त्याग गोपियाँ मस्तानी चाल में गजगामिनी की भाँति मंथर गति से चल रही हैं। सूर के मोहन कृष्ण के साथ इनकी (प्रेममय संबंधी) गति-विधियों को कौन गिन (जान) सकता है। सच में तो, आज इन रमणियों को काम (रूपी कृष्ण) ने विमोहित कर दिया है।

नोट

विशेष—1. सूर द्वारा ग्राह्य पुष्टिमार्ग में रास का धार्मिक-आध्यात्मिक महत्त्व माना गया है, यहाँ पर उसी का काव्यात्मक चित्रण है। 2. प्रारंभिक पंक्तियों में रास-नृत्य के अन्तर्गत गत्यात्मक मुद्रा-चित्रण किया गया है जो कवि-कुशलता का परिचायक है। 3. 'जमुन.....जामिनि' में प्रकृति का सुन्दर उद्दीपक रूप में अंकन है। 4. 'रूप..... बिस्त्रामिनि' में संयोग शृंगारान्तर्गत गुणकथन की अवस्था है। 5. 'स्यामसुन्दर और कामिनि' का सटीक सार्थक प्रयोग कवि की समुचित शब्द-प्रयोग कला का परिचायक है। 6. अलंकार—(क) उत्प्रेक्षा—मानौ.....दामिनि। (ख) पुनरुक्ति (यमक).....घन-घन, दामिनि-दामिनि, अंग-अंग। (ग) तद्गुण-घन.....ब्रजभामिनि। (घ) अनुप्रास—रच्यौ.....राई सों। (ङ) अतिशयोक्ति—को गति.....संग।

7. भावसाम्य—कंठ-कंठ, भुज-भुज दोउ जोरे।

घन-दामिनि छूटत नहिं छोरे ॥

—सूर

उपमा हरि-तनु देखि लजानी।

कोउ जल मैं, कोउ बननि रहीं दुरि, कोउ-कोउ गगन समानी ॥

मुख निरखत ससि गयौ अम्बर कौ, तड़ित दसन-छबि हेरि।

मीन कमल, कर, चरन, नयन डर, जल में कियो बसेरि ॥

भुजा देखि अहिराज लजाने, बिबरनि पैठे धाइ।

कटि निरखत केहरि उर भाग्यौ, बन-बन रहे दुराइ ॥

गारी देहिं कबिनि कै बरनत, श्री अंग पटतर देत।

'सूरदास' हमकौ सरमावत, नाउँ हमारौ लेत ॥

शब्दार्थ—दुरि = छिपी हुई। अम्बर = आकाश। तड़ित = आकाशविद्युत। हेरि = देखकर। कर = हाथ। अहिराज = सर्पराज शेषनाग। बिबरनि = बिल में। धाइ = दौड़कर। केहरि = सिंह। दुराई = छिप गये। बरनत = वर्णन। नाउँ = नाम।

प्रसंग—वृन्दावन में श्रीकृष्ण, ब्रज के नर-नारियों के साथ (ग्रीष्म-लीला के समय) विहार करते हैं। इस समय श्रीकृष्ण का सौन्दर्य अनुपम और 'अतुलनीय' है। परिणाम? सभी दर्शक कृष्ण के इस मनोहर (शारीरिक) सौन्दर्य पर मुग्ध हैं। इसी सौन्दर्य का वर्णन (और प्रभाव स्पष्ट) करते हुए कवि (अथवा ब्रज-गोपी या कोई दर्शक) कहता है—

व्याख्या—कृष्ण-शरीर (के अद्भुत और अतिशयोक्तिपरक रूप) को देखकर सभी उपमाएँ (उपमान) लज्जित हो गयीं, यहाँ तक कि (लज्जा के कारण) कोई जल में छिप गयी तो कोई गहन वन में तथा कोई-कोई तो आकाश में (जाकर) छिप गयी। प्रमाण? कृष्ण के मुख को देखकर चन्द्रमा आकाश में चला गया तो (कृष्ण की दंत-छवि को देख) आकाश-विद्युत आकाश में छिप गयी। इसी भाँति। (कृष्ण के) हाथ-पैरों (के सौन्दर्य) को देख कमल तथा नेत्रों को देख मछली ने जल में बसेरा किया। (कृष्ण की भुजा-सौन्दर्य को देख सर्पराज शेषनाग लजा गये और दौड़कर बिल में छिप गए। कृष्ण के कटि-सौन्दर्य को देख सिंह ने भी भय माना और वन-वन में छिपता फिरा। यह सभी उपमान कवियों के वर्णन को कि कृष्ण का अंग-प्रत्यंग सौन्दर्य उपमानों से भी श्रेष्ठ है, गालियाँ देते हैं कि हमारा नाम ले-लेकर कविगण हमको लज्जित करते हैं।

विशेष—1. यहाँ पर परोक्ष विधि से कृष्ण के बाह्य सौन्दर्य का नख-शिख चित्रण किया गया है।

2. अलंकार—(क) पुनरुक्ति—कोउ-कोउ, बन-बन। (ख) प्रतीप—समस्त पद में। (ग) मानवीकरण—उपमा.....लेत।

3. भावसाम्य—'उपमा धीरज तज्यौ तिरखि छवि' वाला पद।

—सूरदास

बनी मोतिनि की माल मनोहर।

सोभित स्याम-सुभग उर-ऊपर मनु गिरि तैं सुरसरि धँसी घर ॥

तट भुज दंड, भौर भृग-रेखा, चंदन चित्र तरंग जु सुन्दर।

मनि की किरन मीन, कुंडल-छबि मकर, मिलन आए त्यागे सर ॥

जग्युपबीत विचित्र सूर सुनि, मध्य धारा जु बनी बर।

संख चक्र गदा पद्म पानि मनु कमल फूल हंसनि कीन्हें घर ॥

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

नोट

शब्दार्थ—घर = पृथ्वी। भुजदंड = भुजा का ऊपरी भाग, बाँह। भौर = भँवर। तरंग = लहरें। मीन = मछली। सर = सरोवर। जग्युपवीत = यज्ञोपवीत, जनेऊ। बर = सुन्दर। पानि = हाथ। कूल = तट।

व्याख्या—(श्रीकृष्ण के गले में धारण की हुई) मोतियों की माला मनोहर (अर्थात् दर्शक के मन का हरण करने वाली) बनी हुई है। यह माला कृष्ण के सुन्दर वक्ष पर सुशोभित है। (इसको देख ऐसा प्रतीत होता है कि) मानो (वक्ष रूपी) पर्वत से (माला रूपी) देवगंगा पृथ्वी की ओर धंस रही हो। (श्रीकृष्ण के) भुजदंड इसके तट हैं और (वक्ष पर महर्षि भृगु द्वारा किये गये पट्-प्रहार के चिन्ह वाली) भृगु रेखा भँवर तथा चंदन से (शरीर पर) बने चित्र सुन्दर लहरें हैं। (कृष्ण द्वारा धारण किये गये) मणि की किरणें मछली हैं तो कुंडलों की छवि मकर जो सरोवर को त्याग (पवित्र देवगंगा रूपी माला से) मिलन हेतु आये हैं। चित्रयुक्त (कृष्ण के शरीर पर धारण किया हुआ) यज्ञोपवीत सुन्दर मध्य धारा है तथा हाथों में धारण किये हुए शंख, चक्र गदा और कमल मानो (नदी के) तट पर घर करने वाले (निवास करने वाले) श्वेत हंस हैं।

विशेष—1. अन्तिम पंक्तियों में कृष्ण का विष्णु-अवतारी रूप अंकित है। 2. 'भृगु रेखा' विष्णु-भृगु-कथा की संकेतक है। 3. अलंकार—(क) सांगरूपक—समस्त पद में। (ख) उपेक्षा—सोभित.....घर, संख.....बर। (ग) अनुप्रास—स्याम सुभग, धंसी घर, भुजदंड भृगुरेखा, बनी बर, कमल फूल। (घ) रूपक—तट भुजदंड.....बर।

चितबनि रोकै हूँ न रही।

स्यामसुन्दर-सिंधु सम्मुख सरित उमगी बही ॥

प्रेम-सलिल प्रवाह भँवरनि मिति न कबहुँ लही।

लोभ-लहर-कटाच्छ घूँघट-पट-कगार ठगी ॥

थके पल पथ नाव-धीरज, परति नहिँन गही।

मिलि सूर सुभाव स्यामहिँ, फेरिहु न चही ॥

शब्दार्थ—सिंधु = सागर। सलिल = जल। मिति = थाह। कगार = तट। गही = ग्रहण।

प्रसंग—कृष्ण की सौन्दर्य राशि को देख ब्रज की गोपियाँ, स्वाभाविक रूप में ही, उससे प्रभावित होकर आकृष्ट हो जाती हैं। अपनी इसी विवशता का वर्णन करते हुए एक गोपी अपनी सखी (दूसरी गोपी) से कहती है—

व्याख्या—“(हे सखी!) मेरी दृष्टि प्रयत्न करने पर भी नहीं रुक सकी और श्याम वर्ण वाले कृष्ण के सौन्दर्य रूपी सागर के पीछे उसी प्रकार चल दी जैसे उमगित होकर कोई नदी स्वाभाविक तेजी से बढ़ती है। प्रेम रूपी-जल के भँवर-प्रभाव में वह पूर्णतया मग्न हो गयी और परिणामस्वरूप उसकी थाह तक नहीं मिल सकी। कृष्ण-दर्शन के लोभ और कटाक्ष रूपी लहरों से घूँघट रूपी किनारों को भी ढक दिया अर्थात् घूँघट आदि के व्यवधानों को दर्शनों की लालसा ने समाप्त कर दिया। अब टकटकी बांधकर निर्निमेष दृष्टि से उनके दर्शन करने लगी। फिर भी धीरज रूपी नौका नहीं पकड़ी जा सकी अर्थात् धैर्य प्राप्त न कर सकी। इस प्रकार मेरी दृष्टि उन्हीं में निमग्न है।”

विशेष—1. यहाँ कवि ने गत्यात्मक सौन्दर्य का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। 2. यहाँ प्रेम (भक्ति) भाव की अनन्यता एवं सहजाकर्षण और सौन्दर्य की प्रभावात्मकता दर्शनीय है। 3. यहाँ सांगरूपक, विभावना और वृत्यानुप्रास अलंकार हैं। 4. भावसाम्य—

‘हरि छवि जल जब तें परे, तब नें छिनु बिछुरै न।’

—बिहारी; सतसई

देखि री हरि के चंचल नैन।

खंजन-मीन-मृगज चपलाई, नहीं पटतक इक सैन ॥

राजिवदल इन्दीवर सतदल, कमल, कुसेसय जाति।

निसि मुद्रित प्रातहि वै विकसित, ये विकसित दिन राति ॥

अरुन स्वेत सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ।

मनु सरसुति गंगा जमुना मिलि आश्रम कीन्हों आइ ॥

अवलोकनि जलधार तेज अति, तहाँ न मन ठहराइ।

सूर स्याम-लोचन अपार-दबि, उपमा सुनि सरमाइ ॥

नोट

शब्दार्थ—खंजन = एक पक्षी। मृगज = मृग वाली। पटतर = समान। सैन = दृष्टि। राजिवदल इंदीवर सतदल = कमल-पुष्प के विविध प्रकार। कुसेसय = कमल का एक प्रकार। मुद्रित = बन्द होना, सोना। अरुन = लाल। श्वेत = श्वेत। सित = काला। लोचन = नेत्र।

प्रसंग—श्री कृष्ण के (बाह्य शारीरिक सौन्दर्य के अन्तर्गत) नेत्रों के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कोई गोपिका (अपनी सखी से) कहती है—

व्याख्या—हे सखी! कृष्ण के चंचल नेत्रों को देख। इन नेत्रों में खंजन, मछली और हिरण के नेत्रों वाली चपलता है तथा एक दृष्टि में यह (अधिक क्षणों तक) समान स्थिति में नहीं रहते। राजीवदल, इन्दीवर, शतदल, कुसेसय आदि विविध प्रकार के कमल की भाँति सुन्दर ये नेत्र भी हैं किन्तु सच में, ये उनसे भी बढ़कर हैं। प्रमाण? वे तो (सूर्यास्त होने के पश्चात्) रात्रि में मुंद जाते और (सूर्योदय होने पर) प्रातः में विकसित होते हैं किन्तु ये नेत्र दिन-रात दोनों समय में निरन्तर ही विकसित रहते हैं। प्रत्येक पलक में इनमें लाल, श्वेत और काले रंग की अलग-अलग झलक मारती है। भला कौन-सी उपमा इनका वर्णन कर सकती है? (कोई नहीं)। ऐसा प्रतीत होता है कि सरस्वती (लालिमा), गंगा (श्वेत) और यमुना (कालिमा) तीनों नदियों ने मिलकर यहाँ (इन नेत्रों में) निवास किया है। इनकी जलधार देखने में अत्यधिक तेज है और वहाँ पर मन स्थिर नहीं हो पाता। सूर के श्याम कृष्ण के नेत्रों की छवि तो अपार है जिसको सुनकर (देखकर) उपमान भी लज्जित हो जाते हैं।

विशेष—1. नायक-सौन्दर्यांकन में नेत्र-चापल्य का सौन्दर्यांकन प्रचलित काव्य-परिपाटी है और यहां पर कवि ने इसी का पालन किया है। 2. 'री' बोलचाल का सम्बोधन है जो कवि के जनसमाज-विषयक ज्ञान का परिचायक है। कहना न होगा कि इससे पद में स्वाभाविकता बढ़ गयी है। 3. अलंकार—(क) विरोधाभास—राजिवदल.....दिन रात। (ख) उत्प्रेक्षा—मनु.....आइ। (ग) मानवीकरण—उपमा सुनि सरमाई।

4. भावसाम्य—(क) “अमिय हलाहल मद भरे श्वेत श्याम रतनार।”

—बिहारी : सतसई

(ख) “नैन सुरसति जमुना गंगा उपमा डारौ वारि।”

—सूर: सूरसागर

देखि सखी अधरनि की लाली।

मनि मरकत तै सुभग कलेवर, ऐसे हैं बनमाली ॥

मनौ प्रात की घटा सांवरी तापर अरुन प्रकास।

ज्यों दामिनि बिच चमकि रहत है फहरत पीत सुबास ॥

किधौं तरुन तमाल बेलि चढ़ि जुग फल बिम्ब सुपाके।

नरसा कीर आइ मनु बैद्यो लेत बनत नहिं ताके ॥

हँसत दसन इक सोभा उपजति उपमा जदपि लजाइ।

मनौ नीलमनि-पुट मुकुतागन, बंदन भरि बगराइ ॥

किधौं ब्रज-कन, लाल नगनि खँचि तापर बिद्रुम पाँति।

किधौं सुभग बंधूक-कुसुम-तर, झलकत जल-कन-काँति ॥

किधौं अरुन अंबुज बिच बैठी सुन्दरताइ जाइ।

सूर अरुन अधरनि की शोभा, बरनत बरनि न जाइ ॥

शब्दार्थ—अधरनि = होठों। मरकत = लीनमणि। सुभग = सुन्दर। कलेवर = शरीर। तापर = उस पर। अरुन = सूर्य। दामिनि = आकाश विद्युत। पीत सुबास = पीताम्बर। किधौं = अथवा। सुपाके = परिपक्व। नासा = नासिका। कीर = तोता। पुट = पर्वत। बगराइ = फैलाना। बज्रकन = हीरे के कण। नगनि = नगीना। खँचि = जड़ना। बिद्रुम = मूंगा। बंधूक = गुलदुपहरिया का लाल पुष्प। अंबुज = कमल। बरनत = वर्णन।

प्रसंग—श्रीकृष्ण के रक्तिम आभा वाले होठों के सौन्दर्य का आलंकारिक वर्णन करती हुई कोई गोपिका अपनी सखी से कहती है—

व्याख्या—‘हे सखी! श्रीकृष्ण के होठों की लाली देखो। ये बनमाली कृष्ण मरकत मणि से सुन्दर शरीर वाले हैं। इनका रूप ऐसा है जैसा प्रातःकालीन काली घटा पर सूर्य का प्रकाश पड़ रहा हो। इनका पीताम्बर ऐसा फहराता है जैसे घटा में बार-बार बिजली चमक रही हो अथवा किसी तमाल के वृक्ष पर चढ़ी हुई कोई बेल उसके पके हुए

नोट

बिम्ब-फलों को लेने का प्रयत्न कर रही हो। इनकी नासिका ऐसी लग रही है मानो कोई तोता उस तमाल वृक्ष पर आकर बैठ गया हो और वे बिम्ब-फल उससे लेते नहीं बन रहे हों। हँसते समय इनके दाँतों से जो सौन्दर्य उत्पन्न होता है, उसे देखकर सारी उपमायें लज्जित हो जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे नीलमणि पर्वत पर किसी ने चन्दन बिखेर दिया हो और बीच-बीच में मोतियों का पुट दे दिया हो अथवा हीरे का नगीना जड़कर उस पर मूँगों की पंक्ति सजा दी गई हो अथवा बन्धूक के सुन्दर फूल पर तरल-जलबिन्दु झलक रहे हों अथवा लाल कमल के बीच में सुन्दरता आकर बैठ गई हो। वास्तव में उनके लाल अधरों की सुन्दरता का वर्णन किया ही नहीं जा सकता।”

विशेष—1. अलंकार—(क) उपमा—ज्यों.....सुवास। (ख) उत्प्रेक्षा—मनो.....प्रकास, मनो नीलमनि बगराइ। (ग) व्यतिरेक—मनि.....बनमाली। (घ) सन्देह—किधौं.....ताके।

2. भावसाम्य—(क) ‘सोहत औढ़े पीत-पटु श्याम सलोने गात।

मनौ नीलमनि-सैल पर आतुप पर्यो प्रभात।”

—बिहारी : सतसई

3. आलंकारिक शैली का सुन्दर प्रयोग है।

श्याम सौं काहे की पहिचानि।

निमिष निमिष वह रूप न वह छवि, रति कीजै जिय जानि ॥

इकटक रहति निरन्तर निसिदिन, मन-बुद्धि सौं चित सानि।

एकौ पल सोभा की सीवाँ सकति न उर महँ आनि ॥

समुझि न परै प्रगटहीं निरखत, आनन्द की निधि खानि।

सखि यह बिरह संजोग, कि समरस सुख दुख लाभ कि हानि ॥

मिटति न घृत तैं होम-अग्नि-रुचि, सूर सुलोचन-बानि।

इत लोभी उत रूप परम निधि, कोउ न रहत मिति मानि ॥

शब्दार्थ—निमिष = क्षण। रति = प्रेम। सानि = सना हुआ, लिप्त। सीवाँ = सीमा। बानि = आदत। मिति = सीमा।

प्रसंग—गोपी के मतानुसार श्रीकृष्ण का सौन्दर्य अनुपम तो है ही, पल-पल में परिवर्तन होने वाला भी है। परिणाम? इस सौन्दर्य को देखने वाले का दर्शन-लोभ बढ़ता ही जाता है। कृष्ण-सौन्दर्य और अपने दर्शन-लोभ की इसी विचित्र स्थिति से अवगत कराते हुए गोपिका अपनी सखी से कहती है—

व्याख्या—कृष्ण से भला किस प्रकार की पहचान हो सकती है? (पूर्ण परिचय भला कैसे हो सकता है?) कारण यह है कि उनका वह रूप और उसकी छवि तो पल-पल में परिवर्तनशील है जिसको मन में जानकर मैं प्रेम करती हूँ। (रूप-छवि एक-सी रहे तभी तो उसको समुचित प्रकार से पहचाना जा सकता है किन्तु वहाँ तो स्थिति एकदम विपरीत है।) (इसी सौन्दर्य की दर्शन-लालसा से उत्प्रेरित होकर) मैं रात-दिन निरन्तर अपलक देखती रहती हूँ और सच में तो, यह सौन्दर्य सदा ही मेरे मन, बुद्धि और हृदय पर छाया रहता है। वह सौन्दर्य इतना मोहक और मनोरम है कि एक-एक पल में शोभा की सीमा प्रतीत होती है और एक पल के लिये भी हृदय में नहीं समा पाता। (भाव यह है कि कृष्ण-सौन्दर्य का एक-एक दृश्य मनोरम है किन्तु पल-पल परिवर्तन हो जाने के कारण मन में कोई भी एक दृश्य अधिक समय तक टिक नहीं पाता।) इतना ही नहीं, प्रत्यक्षतः देखने पर भी यह समझ में नहीं आता। वास्तव में तो यह आनन्द की निधि है। हे सखी! इस विरह-दशा में भी उससे जो मानसिक संयोग है, उसे मैं समझ नहीं पाती। (प्रेमान्तर्गत आने वाला) यह संयोग-वियोग सुख-दुख है अथवा लाभ-हानि है अथवा सुख-दुख से परे आनन्द वाली समावस्था है, कुछ भी समझ में नहीं आता। कृष्ण-सौन्दर्य को देखने की आदत तो मेरे नेत्रों को पड़ गयी है यद्यपि इससे मेरे नेत्र उसी प्रकार सन्तुष्ट नहीं होते जैसे कि घी से होमाग्नि शान्त नहीं होती। सच तो यह है कि इधर तो मेरे (कृष्ण-दर्शन को उत्सुक बने) लोभ नेत्र हैं और उधर कृष्ण का परमानिधि सौन्दर्य, लेकिन दोनों में कोई भी अपनी स्थिति से नहीं हटता (अर्थात् नेत्र सौन्दर्य-दर्शन से नहीं हटते और कृष्ण-सौन्दर्य पल-पल में परिवर्तन होते रहने से बाज नहीं आता)। व्यंजना यही है कि मैं कृष्ण-सौन्दर्य को निरन्तर देखते रहने के लिये विवश-सी हो गयी हूँ।

विशेष—1. यहाँ पर संयोग शृंगारान्तर्गत अनन्यता की स्थिति का चित्रण है। 2. अलंकार—(क) पुनरुक्ति—निमिष, निमिष। (ख) अनुप्रास—सोभा.....सकति, मिति मानि। (ग) सदेह—साखि..... बानि। (घ) अतिशयोक्ति—सम्पूर्ण पद में।

नोट

3. भावसाम्य—(क) “तजत न लोचन लालची ए ललचौंही बानि ।”
(ख) “क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ।”

—बिहारी : सतसई
—भारवि

मन-मृग बेध्यो नैन-बान सौं ।

गूढ़ भाव की सैन अचानक, तकि ताक्यो भृकुटि-कमान सौं ॥

प्रथम नाद कल घेरि निकट लैं, मुरली सप्तक सुर बंधान सौं ।

पाछे बंक चितै, मधुरे हंसि, घात कियौ उलटे सुठान सौं ॥

सूर सु मार बिथा या तन की, घटति नहीं औषधि आन सौं ।

है है सुख तबहीं उर-अन्तर, आलिंगन गिरिधर सुजान सौं ॥

शब्दार्थ—बेध्यो = बींधना, वध करना। ताक्यो = देखना। नाद = ध्वनि। बंधान = मचान। बंक = कटाक्ष। घात = चोट। सुठान = अच्छे स्थान। मार = चोट, काम। आन सौं = दूसरी किसी से। सुजान = प्रिय।

प्रसंग—नायक श्रीकृष्ण के नेत्र-कटाक्षों से कोई नायिका (गोपी) प्रभावित हो गयी और प्रेम-लित्त हो उठी। प्रेमातुरता का उपचार था—आलिंगनबद्ध होना। अपनी और अपने प्रिय कृष्ण की इसी प्रेम-स्थिति को स्पष्ट करते हुए वह अपनी अतरंग सखी से कहती है—

व्याख्या—अपने नेत्र (कटाक्ष) के बाण से कृष्ण ने मेरे मन-मृग को बेध दिया। प्रेम के गूढ़ भावों से परिपूर्ण नेत्रों (के कटाक्ष-बाणों) को भृकुटि रूपी कमान पर रखकर अचानक ही उस (कृष्ण) ने छोड़ा (फलतः मेरे मन-मृग को बचने का अवसर ही नहीं मिल पाया और वह कृष्ण-कटाक्ष का शिकार हो गया।) एक चतुर शिकारी की भाँति कृष्ण ने पहले तो अपनी मुरली के सप्त स्वर मचान से मधुर ध्वनि करके मन-मृग को मोहित कर घेर लिया (क्योंकि हिरण स्वभावतः ही संगीत की मधुर ध्वनि को सुन आकर्षित-मोहित ही जाता है) तत्पश्चात् अपनी बंकिम चितवन (दृष्टि) और मधुर हँसी के अच्छे स्थान से पलट कर घात की। (सच तो यह है कि) इस शरीर में व्याप्त काम (चोट) की व्यथा किसी अन्य औषधि से नहीं घटती। हृदय को तो तभी सुख होता है जबकि (गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले नायक) प्रिय कृष्ण आलिंगन करें।

विशेष—1. यहाँ पर प्रेम की विविध स्थिति-सोपानों का अंकन है, एकदम क्रमबद्ध और मनोविज्ञान सम्मत रूप में। 2. अलंकार—(क) सांगरूपक—समस्त पद में। (ख) रूपक—मन-मृग, नैन-बान, भृकुटि-कमान। (ग) अनुप्रास—तकि ताक्यों। 3. यहाँ मृग-आखेट का पूरा रूपक है।

4. भावसाम्य—(क) दृगनु लगत बेधत हियहिं, बिकल करत अंग आन ।

ए तेरे सब तैं विषम ईछन-तीछन बान ॥

—बिहारी : सतसई

(ख) लड़ गई उनसे नजर, खिंच गये अबरू उनके।

मारिके इश्क के अब तीरो-कमां तक पहुँचे।

—बेताब

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

4. ‘किसी न गोकुल कुलबधू’ काहि न कित सिख दीन।

कौन तजी न कुल-गली, है मुरली-सुरलीन’

उपरोक्त पंक्तियों के रचयिता कौन हैं?

(अ) घनानंद (ब) सूरदास (स) बिहारी (द) रैदास

5. गहै बीन मकु रैन बिहाई।

ससि बहन तहँ रहे ओनाई ।।

उपरोक्त पंक्तियों के रचयिता कौन हैं?

(अ) जायसी (ब) सूरदास (स) कबीर (द) इनमें से कोई नहीं

6. सारंग नयन बयन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने ।

नोट

सारंग ऊपर उगाए दस सारंग,

केलित करत मधुपाने ।।

उपरोक्त पंक्तियों के रचयिता कौन हैं?

(अ) कबीर

(ब) सूरदास

(स) विद्यापति

(द) मीरा

3.2 सारांश (Summary)

अपने हाथ में माखन लिये हुए बालकृष्ण सुशोभित (प्रतीत हो रहे) हैं। घुटनों के सहारे चलने से उनका शरीर (हाथ-पैर आदि) मिट्टी से युक्त हैं तथा मुख पर (असावधानीवश मक्खन वाला हाथ फेरने के कारण मानो) दही का लेप किया हुआ है।

कृष्ण के सुन्दर मुख पर इधर-उधर फैले हुए कोमल बाल ऐसे शोभायमान हैं मानो कमल के चारों ओर सुन्दर भ्रमरों की पंक्तियाँ फैली हुई हों।

कृष्ण का शरीर कोमल है फिर भी बंशी उनसे अपनी आज्ञा का पालन कराती है जिसके फलस्वरूप उनकी कमर टेढ़ी हो जाती है।

मेघवर्णीय श्रीकृष्ण रूपनिधान हैं तथा मन को आनन्द और विश्राम देने वाले (प्रतीत होते) हैं। खंजन, मछली, मोर, हंस तथा कोयल आदि के (परम्परागत उपमानों के) भेद-भाव को त्याग गोपियाँ मस्तानी चाल में गजगामिनी की भाँति मंथर गति से चल रही हैं।

3.3 शब्दकोश (Keywords)

1. दामिनी: आकाश-विद्युत
2. अनुराग: प्रेम
3. कीर: तोता
4. मधुप: भ्रमर, भंवरा

3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सूरदास ने गोकुल लीला में श्रीकृष्ण की किन-किन लीलाओं का वर्णन किया है, संक्षेप में लिखिए।
2. निम्नलिखित पंक्तियों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए:
बनी मोतिनि की माल मनोहर सोभित स्याम-सुभग उर-ऊपर मनु गिरि तैं सुरसरि धसी।
3. सूरदास के वात्सल्य वर्णन में स्वाभाविकता, विविधता, रमणीयता एवं मार्मिकता है, स्पष्ट कीजिए।

उत्तर-स्वमूल्यांकन (Answer-Self Assessment)

1. कारागार
2. बालकृष्ण
3. कमल
4. (स)
5. (अ)
6. (स)

3.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. सूरसागर—सूरदास कृत।
2. सूर की काव्य कला—गौतम मनमोहन, भारतीय मन्दिर।
3. सूरदास के पद—गुप्ता संजय, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली।

नोट

इकाई 4

सूरसागर के प्रमुख पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या (गोकुल लीला)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 4.1 सूरसागर के प्रमुख पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या (1)
 - 4.1.1 सूरसागर के प्रमुख पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या (2)
- 4.2 सारांश (Summary)
- 4.3 शब्दकोश (Keywords)
- 4.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे—

- सूरसागर के प्रमुख पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या करने में।
- विभिन्न शब्दार्थ जानने में।
- सूरसागर के काव्य सौंदर्य को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सूरदास के काव्य में आत्माभिव्यंजन, भावप्रवणता, मधुरता संगीतात्मकता जैसे सभी गुण विद्यमान हैं। सूरदास ने कृष्ण के प्रेम में पगी गोपियों के रसासिक्त हृदय की भावानुभूतियों को सूर ने गीतिकाव्य के द्वारा अभिव्यक्त कर पाठकों को मधुर भावों के अवगाहन करने का जो सुअवसर प्रदान किया है, उसके लिए हिन्दी काव्य जगत उनका सदैव ऋणी रहेगा।

4.1 सूरसागर के प्रमुख पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या (1)

नवल निकुंज नवल नवला मिलि, नवल निकेतन रुचिर बनाए।

बिलसत विपिन बिलास बिबिध बर, बारिज-बदन बिकच सचु पाए ॥

लागत चंद्र मयूख सु तिय तनु, लता-भवन-रंघनि मग आए।

मनहु मदन-बल्ली पर हिमकर, सींचत सुधा धाट सत नाए ॥

सुनि सुनि सूचित स्त्रवन जिय सुन्दरि, मोन किये मोदति मन लाए।

सूर सखी राधा माधव मिलि क्रीड़त रति रतिपतिहि लजाए ॥

शब्दार्थ—नवल = नये। नवल = कृष्ण। नवला = राधा। रुचिर = सुन्दर। निकेतन = निवास-स्थान। बिलसत = सुशोभित। विपिन = वन। वर = सुन्दर। बारिज बदन = कमलमुख। बिकच = प्रफुल्लित। सचु =

सचमुच । मयूख = किरण । सुतिय = श्रेष्ठ स्त्री । मदन-बल्ली = काम-लता, नारी-शरीर । हिमकर = ओस । मोदति = आनन्दित । रति = काम-क्रीड़ा । रतिपतिहि = रति का स्वामी, कामदेव ।

नोट

प्रसंग—श्रीकृष्ण, प्रिया राधा और अन्य सखियों के साथ यमुना-तट पर विहार करते हैं और नाना प्रकार की संयोगकालीन क्रीड़ाएँ करते हैं । इन्हीं का परिचय देते हुए कोई गोपिका अपनी सखी से कहती है—

व्याख्या—(वृन्दावन स्थित यमुना नदी के तट पर) नये-नये निकुंज है जहाँ पर कृष्ण और राधा ने मिलकर नए-नए और सुन्दर निवास-स्थल (मिलन-स्थल) बना लिये हैं । वहाँ पर तरह-तरह के सुन्दर विलासों से युक्त वन सुशोभित हैं जहाँ कमलमुखी (राधा-कृष्ण) प्रफुल्लित होकर सुख पाते हैं । चन्द्रमा की किरणें (चन्द्रिका) सुन्दर स्त्री (राधा) के शरीर पर पड़ती हैं मानों अमृत की धारा से ओस के माध्यम से चन्द्रमा काम-लता (नारी-तन) को सींच रहा है । (राधा-कृष्ण की इन प्रेम-क्रीड़ाओं के वर्णन को) सुन्दर सखी कानों से और ध्यानपूर्वक सुनती है और चुपचाप मन ही मन आनन्दित होती है । राधा और माधव मिलकर काम-क्रीड़ाएँ करते हैं जिनको देखकर रतिपति-कामदेव भी लजा जाते हैं ।

विशेष—1. अलंकार—(क) अनुप्रास—नवल.....निकेतन, बिलसत.....बिकच, तिय तनु, सुनि.....स्त्रवन । (ख) यमक—नवल नवल । (ग) रूपक—वारिज बदन । (घ) उल्लेख—लागत.....सत् नाए । (ङ) पुनरुक्ति—सुनि सुनि । (च) अतिशयोक्ति—रतिपतिहिं लजाए । 2. यहाँ पर प्रकृति का पृष्ठभूमि और उद्दीपन रूप में अंकन है ।

3. भावसाम्य—‘नव वृन्दावन नव-नव तरुगन ।

नव नव विकसित फूल ॥

— विद्यापति : पदावली

अद्भुत एक अनुपम बाग ।

जुगल कमल पर गज तर क्रीड़त, तापर सिंह करत अनुराग ॥

हरि पर सरबर सर पर गिरिबर, गिरि पर फूलैं कंज पराग ।

रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृतफल लाग ॥

फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक पिक मृग-मद काग ।

खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर इक मनिधर नाग ॥

अंग-अंग प्रति और छबि, उपमा ताकौ करत न त्याग ।

सूरदास प्रभु पियौ सुधारस मानो अधरनि के बड़ भाग ॥

शब्दार्थ—अनुपम = अतुलनीय । जुगल = दो । गजवर = सुन्दर हाथी, जँघाएँ । तापर = उस पर । सिंह = कटि । हरि = सिंह, कटि । सरवर = सरोवर, नाभिप्रदेश । गिरिबर = सुन्दर पर्वत, वक्षस्थल । कंज-पराग = परागमय कमल, स्तन । कपोत = कबूतर, ग्रीवा । अमृतफल = ठोड़ी । पुहुप = पुष्प, तिल । पल्लव = कोंपल, अधर । सुक पिक = तोता और कोयल, नाक और वाणी । मृगमद = कस्तूरी, बिन्दी । काम = कौआ, केश-लटें । खंजन = नेत्र । धनुष = भौंहें । चन्द्रमा = मस्तक । नांग = सर्प, वेणी । अधरनि = अधरों के । बड़भाग = सौभाग्य ।

प्रसंग—राधा का बाह्य (शारीरिक) सौन्दर्य अनुपम है और उसके शरीर का एक-एक अंग-प्रत्यंग अतुलनीय है । इसी का वर्णन करते हुए कोई सखी (दूती अथवा गोपिका) अपनी सखी (अथवा नायक श्रीकृष्ण) से कहती है—

व्याख्या—(राधा का शरीर) एक आश्चर्यजनक तथा अतुलनीय उद्यान है । प्रमाण? इस उपवन (शरीर) में दो कमलों (जैसे चरणों) पर सुन्दर हाथी (जैसी जँघाएँ) क्रीड़ा करती हैं और उस पर सिंह (जैसे कटि-प्रदेश) अनुराग करता है । इस सिंह (कटि प्रदेश) पर एक सरोवर (नाभि) है तथा उस पर श्रेष्ठ पर्वत (जैसे पयोधर) जिस पर परागयुक्त कमल (स्तन) फूले हैं । उसके ऊपर सुन्दर कपोत (ग्रीवा) निवास करता है तथा उसके ऊपर अमृतफल (ठुड्डी) लगा है । इस अमृतफल पर पुष्प (तिल) है तथा उस पर कोंपल (जैसे अरुणाधर) जिस पर तोता, कोयल, कस्तूरी और कौआ (अर्थात् क्रमशः नाक, वाणी, कस्तूरी की बिन्दी तथा केश-लटें) शोभित हैं । खंजन (नेत्र), धनुष (भौंहें) तथा ऊपर चन्द्रमा (मस्तक) है जिसके ऊपर एक मणिधारी सर्प (मणिजटिल आभूषण) है । इतना ही नहीं, प्रत्येक अंग-प्रत्यंग का सौन्दर्य भी अलग-अलग है जिनका त्याग उपमा भी नहीं करती । सूर के प्रभु कृष्ण इस (राधा-सौन्दर्य के) अमृत-रस का पान करो (करते हैं) मानो (उनके) अधर बड़े भाग्यशाली हैं ।

नोट

विशेष—1. सौन्दर्यान्तर्गत नख-शिख वर्णन की परम्परा का यहाँ पर पूरा पालन किया गया है। 2. यह पद कवि की कूट शैली का परिचायक है। 3. अलंकार—(क) रूपकातिशयोक्ति—समस्त पद में। (ख) पुनरुक्ति—पुडप, अंग-अंग, और-और। (ग) उत्प्रेक्षा—सूरदास.....बड़ीभाग। 4. सभी उपमान परम्परागत हैं।

5. भावसाम्य—

‘माधव कि कहव सुन्दरि रूपे ।
पल्लवराज चरनजुग सोभित गति गजरादक भाने ।
कनक-कदलि पर सिंध समारल तापर मेरू समाने ॥
मेरू ऊपर दुइ कमल फुलायल नाल बिना रुचि पाइ ।
सारंग नयन बयन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने ॥

—विद्यापति

प्रिया-मुख देखो स्याम निहारि ।
कहि न जाइ आनन की शोभा, रही बिचारि बिचारि ॥
छीरोदक धूँधट हातो करि, सन्मुख दियौ उधारि ।
मनौ सुधाकर दुग्ध सिन्धु तैं कद्वयौ कलंक पखारि ॥
मुक्ता मांग सीस पर सोभित राजति इहिं आकारि ।
मानौ उडुगन जानि नवल ससि, आए करन जुहारि ॥
भाल लाल-सिन्दूर-बिंदु पर मृगमद दियौ सुधारि ॥
मनौ बधूक-कुसुम ऊपर अलि बैद्यौ पंख पसारि ॥
चंचल नैन चहुं दिसि चितवत जुग खंजन अनुहारि ।
मनौ परसपर करत लराई कीर बचाई रारि ॥
बेसरि के मुक्ता में झाँई बरन बिराजति चारि ।
मानौ सुरगुरु, स्त्रुक, भौम, सनि चमकत चंद मंझारि ॥
अधर बिंब बिच दसन बिराजत दुति दामिनि चमकारि ।
चिबुक-बिन्दु-बिच दियौ बिधाता रूप सीब निरुवारि ॥
तरिवन स्त्रवन रतन मनि भूषित सिर सीमल संवारि ।
जनु जुग भानु दुहुं दिसि उगए, भयौ द्विधा तमहारि ॥
लाल भाल कुच बीच विराजति, सखियन गुही सिंगारि ।
मनहुं धुई निर्धूम अग्नि पर, तप, बैठे त्रिपुरारि ॥
सन्मुख दृष्टि परै मनमोहन लज्जित भई सुकुमारि ।
लीन्हीं उमगि उठाई अंक भरि, सूरदास बलिहारि ॥

शब्दार्थ—आनन = मुख। विचारि = सोचकर। छीरोदक = दूध के समान श्वेत वस्त्र। हातो = अलग। दुग्ध सिन्धु = क्षीरसागर। कलंक = कालिमा। पखारि = धोकर। मुक्ता = मोतियों से युक्त। राजति = सुशोभित। इहि आकारि = इस रूप में। उडुगन = नक्षत्र। नवल = नया। जुहारि = प्रणाम। भाल = माथा। मृगमद = कस्तूरी। बधूक कुसुम = लाल रंग का एक पुष्प। अलि = भ्रमर। जुग = दो। अनुहारि = समान। कीर = तोता, नाक। बेसरि = एक आभूषण, नथ। झाँई = प्रतिबिम्ब। बरन = वर्ण, रंग। सुरगुरु = बृहस्पति, पीला रंग। भौम = मंगल, लाल रंग। मंझारि = में। बिंब = बिम्बाफल। दुति = द्युति, कान्ति। चिबुक = ठोड़ी। सीब = सीमा। तिरुवारि = सुलझाकर। तरिवन = बुन्दे। तमहारि = अंधकार। कुच = वक्ष। धुई = धुनी। त्रिपुरारि = त्रिपुर-शत्रु, शिव। अंक = गोद, आलिंगन।

प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—दूती या गोपी कहती है, “हे कृष्ण! जरा इस प्रियतमा का मुख तो देखो। इसके सुन्दर मुख की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। इसके सौन्दर्य को मैं तो केवल सोच-सोच कर ही रह जाती हूँ। दूध के समान श्वेत

नोट

वस्त्र के घूँघट को कृष्ण के सम्मुख करके उसने खोल दिया, मानो किसी ने चन्द्रमा को क्षीर-सागर से उसके कलंक को धोकर निकाला हो। मोतियों से युक्त माँग उसके शीश पर इस प्रकार शोभित हो रही है मानो नक्षत्रों का समूह उसके मुख रूपी चन्द्रमा को प्रणाम करने आया हो। उसके माथे पर सुन्दर सिन्दूर की लाल बिन्दी, ऊपर कस्तूरी का तिलक ऐसा प्रतीत होता है मानो लाल बन्धूक पुष्प के ऊपर भ्रमर पंख फैलाकर बैठा हो। खंजन पक्षी के जोड़े की समता करने वाले उसके दोनों चंचल नेत्र चारों ओर देखते रहते हैं, मानो कलह हो जाने के कारण उन्होंने शोर मचा दिया हो लेकिन तोते (नाक) ने इसको बचा दिया। नाक की नथ के मोती से पड़ने वाली परछाई चार रंग की होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है, मानो बृहस्पति (पीला) शुक्र (श्वेत) मंगल (लाल) और शनि (नीला, काला) के बीच में इन्द्र (नासिका) विराज रहे हों। उसके होंठ बिम्ब फल के समान हैं। उनके बीच में दाँतों की शोभा ऐसी है जैसे बिजली की चमक। उसके चिबुक के बीच के बिन्दु में मानो विधाता ने सौंदर्य की सीमा को सुलझाकर डाल दिया हो। रत्नमणि से युक्त बुन्दों से कान युक्त हैं और सिर सीमान्त तक संवारा हुआ है। उस प्रकाश-पुंज की उपमा देने के लिये किस चीज की समानता दूँ? उसको इस प्रकार कहा जा सकता है मानो दसों दिशाओं में अनेक सूर्य निकल आये हों, जिनसे भयभीत होकर अन्धकार पाताल में जा छिपा हो। सखियों ने अच्छी प्रकार से लाल पुष्पों की सुन्दर माला से हीरे की पंक्तियों वाले हार से उसे सजाया है। इस दशा में वह ऐसी प्रतीत होती है मानो शिवजी धुवें-रहित अग्नि की धूनी पर बैठे हुए तप रहे हों। इस प्रकार की सुन्दरी नायिका के सामने जब मनमोहन आ गये और उन पर दृष्टि पड़ी, तो वह सुकुमारी लज्जित हो गई। कृष्ण ने उसे उमंग में भरकर उठाकर हृदय से लगा लिया। इस दृश्य पर कवि सूरदास बलिहारी जाते हैं।

विशेष—1. यहाँ पर दूती या गोपी परोक्षतः राधा के मुख-सौन्दर्य का अतिशयोक्ति-परक वर्णन करके नायक (कृष्ण) को उत्तेजित-प्रेरित करती है जो शृंगार-काव्य की एक कवि-परम्परा है। 2. यहाँ पर काव्यशास्त्रीय दृष्टि से, राधा का वासकसज्जा नायिका के रूप में चित्रण किया गया है। 3. अलंकार—(क) अतिशयोक्ति—कहि न.....बिचारि। (ख) पुनरुक्ति—बिचारि बिचारि। (ग) रूपक—छीरोदक घूँघट। (घ) उत्प्रेक्षा—छीरोदक.....त्रिपुरारि। (ङ) मानवीकरण—उडुगन। (च) उपमा—अधर बिंब, दुति दामिनि। (छ) अनुप्रास—सिर.....संवारी, जनु जुग। 4. कवि का अनुभाव-चित्रण दृष्टव्य है। 5. यहाँ पर उल्लिखित सौन्दर्य-प्रसाधन कवि के लोक-ज्ञान के परिचायक हैं।

स्याम भए राधा बस ऐसे।

चातक स्वाति, चकोर चन्द ज्यों चक्रवाक रवि जैसे ॥

नाद कुरंग, मीन-जल की गति, ज्यों तनु के बस छाया।

इकटक नैन अंग-छबि मोहे, थकित भए पति जाया ॥

उठै बैठत बैठे उठत हैं, चलैं चलत सुध नाहीं।

सूरदास बड़भागिनि राधा, समुझि मनहिं मुसुकाहीं ॥

शब्दार्थ—स्वाति = एक नक्षत्र विशेष। चक्रवाक = चक्रवा। नाद = संगीत की ध्वनि। कुरंग = मृग। जाया = पत्नी, राधा। बड़भागिनि = सौभाग्यवाती।

प्रसंग—राधा के सौन्दर्य पर कृष्ण न केवल मुग्ध हो उठे वरन् पूरी तरह से उसके वश में हो गये। निःसन्देह (सामान्य नारी की भाँति) राधा इस पर प्रसन्न हो अपने को सौभाग्यवती मानती है। इसी का वर्णन करते हुए कोई सखी कहती है—

व्याख्या—कृष्ण तो राधा के (सौन्दर्य के) वश में इस प्रकार हो गये हैं जैसे कि चातक स्वाति नक्षत्र में हुई वर्षा के, मछली जल के तथा परछाई शरीर के वश में रहती है। उनके अल्पक नेत्र राधा के शरीर की छवि पर मोहित हैं, यहाँ तक कि पत्नी (राधा) की छवि को देख पति (कृष्ण) के नेत्र थक गये हैं। (इतना ही नहीं, कृष्ण अपनी सुध-बुध तक खो-बैठे हैं)। इसी से स्थिति तो यह हो गयी है कि वे उठते ही बैठ जाते हैं और बैठते ही उठ जाते हैं, चलते हैं तो चलने की सुध की नहीं रहती (अथवा राधा के बैठने पर बैठते हैं और उठने पर उठते हैं तथा चलने पर स्वयं भी चल देते हैं। उन्हें कोई सुधि नहीं है)। राधा बड़ी सौभाग्यवती है जो (कृष्ण की इस अवस्था को) समझकर मन ही मन प्रसन्न होती है (अथवा अपने को सौभाग्यवती समझकर मन ही मन आनन्दित होती है)।

नोट

विशेष—1. अलंकार—उपमा—स्याम.....छाया। 2. चातक, चकोर, चक्रवाक, कुरंग तथा मीन प्रेम की अनन्यता के परम्परागत काव्य-प्रतीक हैं। यहाँ पर कवि ने इन्हीं से सम्बन्धित कवि-समयों का प्रयोग किया है।

3. भावसाम्य—

(क) “कहा लड़ैते दृग करै, परे लाल बेहाल।

कहुँ मुरली कहुँ पीतपट, कहुँ मुकटु बनमाल ॥”

—बिहारी : सतसई

(ख) “कहुँ बनमाल कहुँ गुंजननि की माल कहुँ।

संग सखा ग्वाल ऐसे हाल भूलि गये हैं।

घुंघट की ओट है के चितयो कि चोट करि।

लालन तो लोटपोट तबहीं ते भये हैं॥”

—सुन्दर

(ग) नागरि छवि पर रीझे स्याम।

कबहुँक वारत हैं पीताम्बर, कबहुँक वारत मुक्ता-दाम ॥

(घ) होश जाता ही रहा, वरना जब वो आते हैं तब नहीं आता।

—मीर

संग सोभित वृषभानु किसोरी।

सारंग¹ नैन बैन बर सारंग², सारंग³ बदन कहै छवि कोरी ॥

सारंग⁴ अघर सुघर कर सारंग⁵, सारंग⁶ जाति, सारंग⁷ मति भोरी।

सारंग⁸ दसन, हसन पुनि सारंग⁹, सारंग¹⁰ बसन पीत पर डोरी ॥

सारंग¹¹ चरन, पीठ पर सारंग¹², कनक खम्ब मनौ अहि लसौ री।

सारंग¹³ बरन, दीठ पुनि सारंग¹⁴, सारंग¹⁵ गति, सारंग¹⁶ गति थोरी ॥

सारंग¹⁷ पुलिन, रजनि रुचि सारंग¹⁸ सारंग¹⁹ अंग, सुभग भुज जोरी।

बिहरति सघन कुंज, सखि निरखति, सूरस्याम-घन दामिनि गोरी ॥

शब्दार्थ—सारंग = क्रमशः 1. मृग या खंजन, 2. कोयल, 3. चन्द्रमा, 4. सरस, 5. कमलनाल, 6. पद्मिनी जाति की नायिका, 7. स्त्री, 8. हीरा, 9. बिजली, 10. घनश्याम, 11. कमल, 12. वेणी, 13. स्वेत, 14. मधुर 15. हंस, 16. सर्प, 17. नदी, 18. मधुर, 19. कामदेव। बर = सुन्दर। कर = हाथ। अहि = सर्पिणी। लसौरी = शोभित है। दीठ = दृष्टि। पुलिन = तट। बिहरति = विचरण करती है। घन = मेघ। दामिनि = आकाशविद्युत।

प्रसंग—राधा और कृष्ण, प्रेमानन्द में भरकर, वृन्दावन में विहार कर रहे हैं। इस समय राधा का एक-एक अंग-प्रत्यंग अत्यधिक सौन्दर्य से ओतप्रोत है। इन्हीं का कूटात्मक विवरण देते हुए कोई गोपी अपनी अन्तरंग सखी से कहती है—

व्याख्या—(अपने प्रिय नायक) श्रीकृष्ण के साथ (वृषभानु की किशोरावस्था वाली पुत्री) राधा सुशोभित हैं। उसके नेत्र मृग या खंजन जैसे (सुन्दर और चंचल) हैं तो वाणी कोयल (की वाणी) जैसी मधुर। मुख चन्द्रमा जैसा (सुन्दर) है तथा छवि-एकदम साफ (पवित्र या कुंवारी) है। उसके होंठ सरस हैं तथा सुघड़ हाथ कमल-नाल जैसे (कोमल और सुन्दर)। वह पद्मिनी जाति की (सर्वोत्तम नारी) है तथा उसकी बुद्धि एकदम भोली (निश्छल और अबोध) स्त्री जैसी है। उसके दांत हीरे (की आभा) जैसे हैं तो हास्य आकाशविद्युत की भाँति। उसके वस्त्र श्याम घन की भाँति हैं जिनमें पीले रंग की डोरी लगी है (अथवा जो पीताम्बरधारी कृष्ण पर रीझती है)। उसके चरण कमल की तरह हैं, तो पीठ पर सर्पिणी की भाँति वेणी लटक (लहरा) रही है। कटि पर झूलती वेणी ऐसी प्रतीत होती है मानो किसी स्वर्ण-खम्ब (शरीर-यष्टि अथवा कटि) पर सर्प सुशोभित हो। उसके (शरीर) का वर्ण श्वेत है तथा दृष्टि भी मधुर है। उसकी चाल हंस (की चाल) सी और थोड़ी-थोड़ी सर्प (की चाल की भाँति लहराती हुयी) सी है। नदी-तट है जिस पर मधुर-मनोहर रात्रि (का वातावरण) है। ऐसे मादक और उद्दीपक वातावरण में राधा का अंग-प्रत्यंग साक्षात् कामदेव (के अंगों) सा प्रतीत होता है। दोनों ने अपनी सुन्दर भुजाओं को जोड़ रखा है (हाथ में हाथ पकड़ रखे हैं)। हे सखी! देखो गहन-कुंजों में (काले मेघ जैसे) कृष्ण और (मेघों में छिपी विद्युत-सी) राधा विचरण कर रहे हैं।

विशेष—1. संयोगान्तर्गत युगल-चारण (नायक-नायिका का सम्मिलित विचरण) और पुष्टिमार्गीय विचारधारा के अनुकूल युगल-उपासना दोनों ही दृष्टियों से यह पद महत्त्वपूर्ण है। 2. प्रस्तुत पद कवि की कूटकाव्य-शैली का

नोट

परिचायक है। 3. उपमान-योजना में 'सारंग' शब्द कवि को सर्वाधिक प्रिय रहा है। यह पद इसी सत्य का उद्घोषक है। 4. 'सारंग' शब्द का बहुअर्थी प्रयोग कवि के विशद भाषा-ज्ञान का साक्ष्य है। 5. अलंकार—(क) उपमा और रूपक—समस्त पद में। (ख) रूपकातिशयोक्ति—समस्त पद में। (ग) यमक—'सारंग' शब्द की आवृत्ति और अर्थ-वैभिन्न्य में। (घ) अनुप्रास—बैन वर। (ङ) उत्प्रेक्षा—कनक.....लसौ री।

6. भावसाम्य—

(क) सारंग चरन सुभग कर सारंग, सारंग नाम बुलावहु।

सूरदास सारंग उपकारिनि, सारंग मरत जियावहु ॥

—सूरदास

(ख) सारंग नयन बयन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने।

सारंग ऊपर उगाए दस सारंग, केलि करत मधुपाने ॥

—विद्यापति : पदावली

लोचन भए पखेरू, माई

लुब्धे स्याम-रूप चारा कौं, अतम-फंद परे जाई ॥

मोर मुकुट टाटी मानौं, यह बैठनि ललित त्रिभंग।

चितवनि लकुट, लास लटकनि-पिय, कांपा अलक तरंग ॥

दौरि गहनि मुख-मृदु-मुसुकावनि, लोभ-पीजरा डारे।

सूरदास मन-व्याध हमारी, गृह-बन तैं जु बिसारे ॥

शब्दार्थ—लोचन = नेत्र। पखेरू = पक्षी। लुब्धे = मोहित हुए। अलक-फंद = केश पाश। टाटी = टट्टी, ओट। लकुट = छड़ी, लाठी। लास = लासा। काँपा = बाँसतिली। व्याध = शिकारी।

प्रसंग—प्रेमारम्भ का मूल है—दर्शन और तद्जनित रूप-लिप्सा। इनका माध्यम होते हैं—नेत्र। इसी से शृंगारान्तर्गत नेत्र-व्यापारों का विशेष महत्त्व रहता है। अपने नेत्रों की इसी विवशता भरी स्थिति का परिचय देते हुए कोई गोपिका (अपनी सखी से) कहती है—

व्याख्या—(अरी माई!) मेरे नेत्र तो (प्रिय कृष्ण के रूप-सौन्दर्य को देख लेने के पश्चात्) पक्षी हो गये हैं। प्रमाण? (एक पक्षी की भाँति) मेरे ये नेत्र श्याम वर्ण वाले कृष्ण के सौन्दर्य रूपी चारे पर मुग्ध हुए और (शिकारी द्वारा पूर्व नियोजित फन्दे रूपी) अलक-पाश में जाकर फँस गये (अर्थात् कृष्ण की सुन्दर केशराशि पर मोहित होकर मानो वहीं पर अटक गये)। कृष्ण का मोरपंखी मुकुट ही वह ओट है जिसकी आड़ में (वह कृष्ण रूपी) शिकारी (त्रिभंगिमा वाले आसन से) बैठा है। उसकी चितवन छड़ी है और केश-लटकन ही मानो लासा है तथा इसमें लहरदार केश का कंधा लगा है (जिसके द्वारा शिकारी पक्षी को फाँसकर शिकार करता है)। उसके मुख की मृदु मुस्कान ही दौड़कर (शिकार बनने वाले पक्षी को) पकड़ लेती है। (आकर्षित कर लेती है) तथा लोभ (आकर्षण) के पीजरे में डाल देती है। सच में तो, हमारा मन ही शिकारी है जिसने हमको (पक्षी की भाँति) घर और वन (अर्थात् घर और बाहर सभी) से अलग कर दिया है (तथा शिकारी की भाँति अपने रूपजाल में बन्दी बना लिया है)।

विशेष—1. यहाँ पर प्रेमरम्भ की स्थिति का एकदम प्रभावशाली और मनोविज्ञानसम्मत अंकन है।

2. 'माई' बोलचाल की भाषा का सूचक है।

3. अलंकार—(क) सांगरूपक—समस्त पद में। (ख) उत्प्रेक्षा—मोर.....मानौ। (ग) अनुप्रास—लकुट.....लटकनि, मुख.....मुसुकावनि। (घ) रूपक—अलक-फंद, लोभ-पीजरा, मन-व्याध।

4. परोक्षतः कृष्ण-सौन्दर्य का काव्यात्मक अंकन किया गया है।

5. भावसाम्य—मोहन छवि रसखान लख, अब दृग अपने नाहिं।

ऐंचे आवत धनुष से, छूटे सर से जाहिं ॥

—रसखान



टास्क

सूरदास श्रीकृष्ण और राधा के प्रेमालाप का वर्णन करने में अद्वितीय स्थान रखते हैं। क्या आप इस बात से सहमत हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. पक्षी के जोड़े की समता करने वाले उसके दोनों चंचल नेत्र चारों ओर देखते हैं, मानो कलह हो जाने के कारण उन्होंने शोर मचा दिया हो।
2. सुक-पिक को कहा जाता है।
3. 'मोहन छवि रसखान लख, अब दृग अपने नाहिं।' पंक्तियां की हैं।

4.1.1 सूरसागर के प्रमुख पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या (2)

लोचन मेरे भृंग भए री।

लोकलाज बन-घन बेलि तजि, आतुर है जु गए री ॥

स्याम-रूपरस बारिज-लोचन, तहाँ जाइ लुब्धे री।

लपटे लटकि पराग-बिलोकनि, संपुट-लोभ परे री ॥

हँसनि प्रकास बिभास देखिकै, निकसत पुनि तहँ पैठत।

सूरस्याम अंबुज कर चरननि, जहाँ तहां भ्रमि बैठत ॥

शब्दार्थ—भृंग = भ्रमर। आतुर = उत्सुक। बारिज = कमल। संपुट = पराग। विभास = आभा। निकसत = निकले। पैठत = बैठे। अम्बुज = कमल। भ्रमि = भ्रम करके, भ्रमवश।

प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—(अरी सखी!) मेरे नेत्र तो (कृष्ण का रूप-सौन्दर्य देखकर) भ्रमर बन गये हैं। प्रमाण? इन्होंने लोक-लाज रूपी वन-बेल को तज दिया और (निःसंकोच होकर) वहाँ (कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर) मोहित हो गये। कारण? (कृष्ण के) केश-राशि रूपी पराग को देख उससे लिपट गये और पराग के लोभ में पड़ गये। सूर्य (उदय होने पर लाली) प्रकाश-आभा को देख ये निकले और पुनः वहीं बैठ गये। कृष्ण के हाथ और चरण तो कमल तुल्य हैं जिनके आस-पास भ्रमण करके (अथवा कमल का भ्रम मानकर) ये बैठ गये।

विशेष—1. अलंकार—(क) सांगरूपक—समस्त पद में। (ख) रूपक—लोक,.....बेलि, बारिज लोचन, अम्बुज.... चरननि। 2. 'री' देशज शब्दावली-प्रयोग का सूचक है।

3. भावसाम्य—'लोचन-भृंग कोस-रस पागे।

स्याम कमल-पद सौँ अनुरागे ॥'

—सूर : सूरसागर

मेरे नैन कुरंग भए।

जोबन-वन तें निकसि चले ये, मुरली-नाद ए ॥

रूप-व्याध, कुंडल-दुति ज्वाला, किंकनि घंटा-घोष।

व्याकुल है एकहि टक देखत, गुरुजन तजि संतोष ॥

भौंह-कमान, नैन-सर-साषनि, मारनि चितवनि-वारि।

ठौर रहे नहिं टरत सूर वै, मंद हँसनि सिर डारि ॥

शब्दार्थ—कुरंग = हिरण। भए = हो गये हैं। नाद = ध्वनि। ए = मस्त। व्याध = शिकारी। दुति = द्युति, छवि। है = होकर। सर = शर। चारि = चारु। ठौर = स्थान। सिर डारि = सिर झुकाना।

प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—(कृष्ण के सौन्दर्य के दर्शन करने के लिये) मेरे नेत्र तो हिरण बन गये हैं। प्रमाण? (हिरण की भाँति मेरे) ये नेत्र यौवन-वन से निकलकर चले और (कृष्ण की) वंशी के स्वर को सुनकर मोहित हो गये (अपनी सुधबुध

नोट

खो बैठे)। सच तो यह है कि कृष्ण का रूप शिकारी है तो कुंडलों की कान्ति अग्नि की ज्वाला तथा किंकणी की घंटा-घोष है जिससे व्याकुल होकर ये नेत्र अपलक दृष्टि से उसी (कृष्ण-सौन्दर्य) की ओर देखते रहते हैं। यहाँ तक कि गुरुजन की लज्जा भी नहीं करते। कृष्ण की भौंहें कमान हैं जिनसे वे नेत्र (दृष्टि) रूपी बाण साधकर चितवन की मार करते हैं। फिर भी ये नेत्र (सौन्दर्य-मुग्ध होने के कारण) उस स्थान से तनिक भी नहीं हटते और (कृष्ण की) मन्द हँसी (मुस्कान) के सम्मुख सिर झुका देते हैं।

विशेष—1. अलंकार—(क) सांगरूपक—समस्त पद में। (ख) अनुप्रास—सर साधनि, चितवनि चारि।

नैन भए बस मोहन तैं।

ज्यों कुरंग बस होत नाद के, टरत नहीं ता गोहन तैं ॥

ज्यों मधुकर बस कमल-कोस के, ज्यों बस चंद चकोर।

तैसेहि ये बस गए स्याम के गुड़ी-बस्य ज्यों डोर ॥

ज्यों बस स्वाति-बूंद के चातक, ज्यों बस जल के मीन।

सूरज-प्रभु के बस्य भये ये, छनु-छिनु प्रीति नवीन ॥

शब्दार्थ—कुरंग = मृग। नाद = संगीत की ध्वनि। ता = उसके। गोहन = समीप। भए = हुए। गुड़ी = पतंग। मीन = मछली।

प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—मेरे नेत्र (मन को मोहित करने वाले) कृष्ण के वश में हो गये हैं। जिस प्रकार मृग संगीत-ध्वनि के वशीभूत होकर उसके पास से नहीं हटता, जिस प्रकार भ्रमर (पराग-लोभ में) कमल-कोष के तथा चकोर (दर्शनार्थ) चन्द्रमा के वश में हो जाता है, उसी भाँति से नेत्र भी (कृष्ण की वाणी, सौन्दर्य-लोभ और दर्शनार्थ) कृष्ण के वश में हो गये हैं ठीक उसी प्रकार जैसे कि पतंग के वश में डोरी हो जाती है। जिस प्रकार (अनन्य प्रेम-भाव से भरकर) चातक स्वाति (नक्षत्र में होने वाली वर्षा के) जल-बूंद के तथा मछली जल के अधीन हो जाती है। उसी भाँति ये नेत्र (सूर के) प्रभु कृष्ण के वश में हो गये हैं तथा क्षण-क्षण में नये प्रेम (भाव) का अनुभव करते हैं।

विशेष—1. यहाँ पर परोक्षतः नायिका के कृष्ण-प्रेम की अनन्यता, अटलता, एक-निष्ठा तथा पल-पल वर्धित प्रेमानुभूति आदि स्थितियों का अंकन किया गया है। 2. समस्त पद में उपमा अलंकार का (मालोपमा अलंकार का) कौशल दृष्टव्य है। 3. समस्त उपमेय-योजना पारस्परिक कवि-समयों से सम्बन्धित है। 4. 'सूरज' सूर का ही वास्तविक नाम माना जाता है।

रोम रोम है नैन गए री।

ज्यों जलधर परबत पर बरषत, बूंद बूंद है निचटि द्रए री ॥

ज्यों मधुकर रस कमल पान करि मोतैं तजि उन्मत्त भए री।

ज्यों कांचुरी भुअंगम तजहिं, फिरि न तकै, जु गए सु गए री ॥

ऐसी दसा भई री इनकी, स्याम-रूप मैं मगन भए री।

सूरदास प्रभु अगनित-सोभा, ना जानौं किहिं अंग छए री ॥

शब्दार्थ—जलधर = बादल। निचटि = समूह। द्रए = द्रवित। मधुकर = भ्रमर। मोतैं = मुझको। उन्मत्त = मस्त। भुअंगम = सर्प। तकै = देखे। छए = मोहित।

प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—(अरी सखी! कृष्ण के रूप-सौन्दर्य को देखने के लिये तो मेरे शरीर का) एक-एक रोम नेत्र बन गया है (अर्थात् मैं रोम-रोम से कृष्ण-सौन्दर्य को देखती हूँ)। जिस प्रकार जल से परिपूर्ण बादल पर्वत पर बरसते हैं और एक-एक बूंद के समूह से द्रवित होते हैं, उसी भाँति मेरा रोम-रोम कृष्ण-दर्शन करके द्रवित (आकर्षित-मोहित) हो जाता है। जिस प्रकार कोई भ्रमर कमल रस (पराग) को पीकर तथा उसको छोड़कर उन्मत्त हो जाता है उसी प्रकार मेरे नेत्र कृष्ण-दर्शन का पान करके मस्त हो गये हैं। जिस प्रकार सर्प अपनी केंचुल उतारकर फिर उसको नहीं देखता, एक बार छोड़कर चला जाता है, उसी भाँति ये नेत्र मुझको छोड़कर चले गये (कृष्ण सौन्दर्य पर ही टिक गये) और पुनः

नोट

मेरी ओर नहीं आये। मेरे नेत्रों की जो यह अवस्था हो गयी है कि ये श्याम के रूप में ही मग्न हो गये हैं। (सूर के) प्रभु कृष्ण (के सौन्दर्य) की शोभा तो अगण्य है। न जाने ये उनके किस अंग-सौन्दर्य पर मोहित हो गये हैं?

विशेष—1. अलंकार—(क) पुनरुक्ति—रोम-रोम, बूँद-बूँद। (ख) उपमा—ज्यौ.....गए री।

2. भावसाम्य—(क) प्रीतम के संग ही उमगि उड़ि जाए को, नाहिं अंग-अंगन अनन्त पंखिया देइ।
कीजे कहा राम स्याम आनत बिलोकिबे को, बिरचि बिरंच ना अनन्त अंखिया देइ ॥—पद्माकर
(ग) 'नैन गए सु फिरे नाहि फेरि।' —सूरदास

नैना घूँघट में न समात।

सुन्दर बदन नन्द-नन्दन-कौ, निरखि-निरखि न अघात ॥

अति रस-लुब्ध महा मधु लम्पट, जानत एक न बात।

कहा कहीं दरसन-सुख माते, ओट भरो अकुलात ॥

बार बार बरजत हौ हारी, तऊ टेव नहिं जात।

सूर तनक गिरिधर बिनु देखै, पलक कलप सम जात ॥

शब्दार्थ—समात = समाते, छिपते। बदन = मुख। नन्दन = पुत्र। माते = मस्त। अकुलात = दुःखी।
बरजत = मना करना। हौं = मैं। तऊ = फिर भी। टेव = आदत। सम = समान।

प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—(कृष्ण के रूप सौन्दर्य को देखने के लिये उत्सुक बन मेरे) ये नेत्र घूँघट में नहीं समाते। नंद के पुत्र कृष्ण का मुख अत्यधिक सुन्दर है जिसको बारम्बार और अधिकाधिक देखकर भी ये नेत्र अघाते नहीं (क्योंकि उसको और भी देखने की इच्छा बनी रहती है)। ये नेत्र तो (कृष्ण के रूप सौन्दर्य के) रस के लोभी तथा (भ्रमर की भाँति) बहुत बड़े लम्पट हैं और एक भी बात नहीं जानते (कि इनको सबके सामने इतना रूप-लोभी नहीं होना चाहिये)। मैं (इनके विषय में और) क्या कहूँ? ये तो सौन्दर्य-दर्शन के सुख में मस्त हैं और तनिक-सी ओट होने पर भी व्याकुल हो जाते हैं। मैं इनको बारम्बार मना करते-करते हार गयी हूँ किन्तु फिर भी (कृष्ण दर्शन की) इनकी आदत नहीं जाती। सच तो यह है कि कृष्ण को न देखे हुए तो एक पल भी कल्प के समान बीतता है।

विशेष—1. यहाँ पर नायिका का वाक्चातुर्य विशेष दृष्टव्य है। 2. अलंकार—(क) पुनरुक्ति—निरखि-निरखि, बार-बार। (ख) अनुप्रास—महा मधु, बार-बार बरजत। (ग) उपमा—सूर.....जात।

3. भावसाम्य—

(क) ये नैना मेरे ढीठ भए री।

घूँघट ओट रहत नहिं रोके, हरि-मुख देखत लोभि गए री ॥

—सूर

(ख) 'नयनन में नय नाहिनै, याते नयना नाम।'

(ग) नैना नेकु न मानहीं, कितौ कहों समुझाय।

तन-मन हारे हूँ हँसे तिनसो कहा बसाय ॥

—बिहारी : सतसई

(घ) जैसे मेरी निगाह ने देखा न हो तुझे, महसूस ये हुआ तुझे हर बार देखकर।

—शाद

जाकी जैसी टेव परी री।

सो तौ टरे जीव के पीछे जो जो धरनी धरी री ॥

जैसे चोर तजै नहिं चोरी, बरजै वही करी री।

बरु ज्यों जाइ, हानि पुनि पावत, बकतहिं बकत मरी री ॥

जदपि व्याध बधै मृग प्रगटहि, मृगिनि रहे खरी री।

ताहूँ नाद-बस्य ज्यों दीन्हों, संका नहीं करी री ॥

जदपि मैं समुझावती पुनि पुनि, यह कहि कहि जु लरी री।

नोट

सूरस्याम दरसन तैं इकटक, टरत न निमिष धरी री ॥

शब्दार्थ—जाकी = जिसकी। टेव = आदत। धरनि = धारण, आदत। बरजै = मना करना। बरु = फिर भी। व्याध = शिकारी। ताहुँ = उसको। संका = शंका, सन्देह। निमिष = क्षण।

प्रसंग—पूर्ववत्

व्याख्या—जिसकी जैसी आदत पड़ जाती है वह तो उसी (आदत) के पीछे दौड़ता है जो कि उसने (आदत के रूप में) धारण कर रखा है। जिस प्रकार कोई चोर चोरी करना नहीं छोड़ता, उसको (अथवा वह स्वयं) जिस चीज को मना करो, वही करता है और फिर भी जाकर बारम्बार हानि उठाता है, चाहे (मना करते समय) कहते-कहते मर ही जाओ। (यही स्थिति मेरे नेत्रों की है। इन्हें जितना भी कृष्ण-दर्शन के लिये मना किया, ये नहीं मानते और बारम्बार आदतवश वही करते हैं अर्थात् कृष्ण-सौन्दर्य को देखते हैं)। यद्यपि शिकारी प्रत्यक्षतः मृग का वध करता है किन्तु मृगी फिर भी वहीं खड़ी रहती है। उसको शिकारी नाद के वश में करता है किन्तु फिर भी वह तनिक भी शंका नहीं करती इसी भाँति, यद्यपि मैं बारम्बार समझाती हूँ, यह कहकर लड़ती हूँ फिर भी सूरस्याम के निरन्तर दर्शन से ये नेत्र क्षण भर को भी नहीं हटते।



नोट्स

जिसकी जैसी आदत पड़ जाती है वह तो उसी (आदत) के पीछे दौड़ता है जो कि उसने (आदत के रूप में) धारण कर रखा है।

विशेष—1. पूर्वानुरागिनी नायिका की विवशता भरी स्थिति का यह चित्रण एकदम स्वाभाविक बन पड़ा है। अलंकार—(क) पुनरुक्ति—जो जो, पुनि पुनि, कहि। उदाहरण—जैसे.....करी री। 2. प्रारंभिक तीन पंक्तियाँ सूक्ति वाक्य हैं।

4. भावसाम्य—‘नैना नैंक न मानहीं, कितौ कह्यौ समुझाई।’

—बिहारी

अति रस-लंपट नैन भए।

चाख्यो रूप-सुधा-रस हरि कौ, लुब्धे उतहिं गए ॥

ज्यों विट-नारी भवन नहीं भावत, औरहिं पुरुष रई।

आवति कबहुं होति अति व्याकुल जैसे गवन नई ॥

फिरि उतहिं कौ धावति जैसे छूटत धनुष तैं तीर ॥

चुभे जाइ हरि-रूप-रोम में सुन्दर स्याम सरीर ॥

ऐसे रहत उतहिं कौ आतुर, मोसो रहत उदास।

सूर स्याम के मन बच क्रम भए, रीझे रूप-प्रकास ॥

शब्दार्थ—लुब्धे = लुब्ध होकर। विट = कामुक, दुराचारी। रई = मस्त। गवन = गौना। धावति = दौड़ती। उतहिं = उधर।

प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—(कृष्ण के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध होने वाले) मेरे नेत्र (सौन्दर्य) रस के लिये अत्यधिक लम्पट हो गये हैं। ये हरि के रूप रूपी अमृत को चखना चाहते हैं, इसी से लुब्ध होकर उधर (कृष्ण की ओर) हो गये हैं। जिस प्रकार किसी कामुक या व्यभिचारिणी नारी को घर अच्छा नहीं लगता और वह पर-पुरुष में लिप्त हो जाती है लेकिन कभी-कभी व्याकुल होकर इस प्रकार आती है जैसे कि गौने पर (कोई) नव वधू (लज्जित होते हुए) आती है लेकिन फिर उसी (पर-पुरुष की) ओर ऐसे दौड़ती है जैसे कि धनुष से छूटा हुआ बाण (तेजी से दौड़ता है)। उसी तेजी से ये नेत्र रूपी बाण हरि के रूप-रोम में जाकर चुभते (अटक जाते) हैं क्योंकि कृष्ण का श्याम-शरीर सुन्दर है। इस प्रकार मेरे नेत्र उधर (कृष्ण-सौन्दर्य की ओर) ही आतुर रहते हैं और मुझसे उदास (या तटस्थ)। मन-वचन-कर्म अर्थात् सभी प्रकार से ये नेत्र सौन्दर्य-प्रकाश वाले श्याम पर रीझे हुए हैं।

नोट

विशेष—1. पूर्वानुरागवती नायिका की अनन्य प्रेम-स्थिति का अंकन है। 2. अलंकार—(क) रूपक—रूप-सुधा-रस, हरि-रूप-रोम। (ख) उपमा—ज्यों....तीर। (ग) अनुप्रास—सुन्दर स्याम शरीर।

3. भावसाम्य—

(क) मोहन छवि रसखान लखि, अब दृग अपने नाहिं।

ऐंछे आवक धनुष से, छूटे सर से जाहिं ॥

—रसखान

(ख) भई सखि ये अंखियाँ बिगैरैल।....

हरिचन्द्र कुलकानि छाडिकै, हरि की भई रखैल ॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(ग) जसु अपजसु देखत नहीं, देखत सांवल गात।

कहा करौं, लालच भरे चपल नैन चलि जात ॥

—बिहारी

अंखियाँ हरि के हाथ बिकानी।

मृदु मुसुकानि मोल इनि लीन्हों, यह सुनि सुनि पछतानी ॥

कैसे रहति रहीं मेरे बस, अब कछु और भाँति।

अब वै लाज मरति मोहि बैठत, बैठी मिलि हरि पाँति ॥

सपने की सी मिलनी करति हैं, कब आवहिं कब जाति।

सूर मिली ठरि नन्द-नन्दन कौं, अनत नहीं पतियाति ॥

शब्दार्थ—बिकानी = बिक गयीं, वश में हो गयीं। इनि = इनको। पांती = पंक्ति, पक्ष। अनत = अन्यत्र, किसी और का। पतियाति = विश्वास करती है।

प्रसंग—कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर रीझकर गोपिका (नायिका) उनकी ओर न केवल आकर्षित हो गयी वरन् पूर्वानुराग भी करने लगी। इसका कारण वह निःसन्देह अपने नेत्रों को मानती है। इन्हीं नेत्रों की स्थिति को अपनी अंतरंग सखि के सम्मुख स्पष्ट करते हुए वह कहती है—

व्याख्या—(कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर लुब्ध और आकर्षित होकर) मेरी आँखें तो (मन का हरण करने वाले) कृष्ण के हाथों बिक गयी हैं (अर्थात् कृष्ण के वश में हो गयी हैं)। कृष्ण ने केवल अपनी मृदु मुस्कान के मूल्य पर इनको मोल ले लिया है, यह सुनकर मैं पछताती हूँ (कि कितने ही सस्ते में ये आँखें बिक गयीं)। (मुझे तो यही आश्चर्य है कि अब तक) ये मेरे वश में किस प्रकार रहती थीं? कारण यह है कि अब (कृष्ण के वश में होने के उपरान्त तो) ये कुछ और ही प्रकार की (पराधीन) हो गयी हैं। अब ये कृष्ण की पंक्ति (पक्ष) में बैठी हुयी मुझे देखकर लाज के मारे मरती हैं। अब तो ये मिलन भी स्वप्न के समान (झूठा और क्षणिक) करती हैं। यही मालूम नहीं होता कि ये कब आती हैं और अन्य किसी का विश्वास नहीं करती।

विशेष—1. यहाँ पर परोक्ष विधि से नायिका की पूर्वानुरागमय स्थिति का सूक्ष्म अंकन किया गया है जो कवि की भाव-चित्रण-कुशलता का परिचायक है। 2. अंतिम पंक्ति में अनुराग-अनन्यता और एकनिष्ठा का अंकन है। 3. यहाँ पर लोक-प्रचलित मुहावरों का स्टीक और सार्थक प्रयोग कवि की भाषा-सबलता का परिचय देता है। 4. अलंकार—(क) अनुप्रास—मृदु.....मोल। (ख) पुनरुक्ति—सुनि सुनि। (ग) उपमा—सपने.....जाति। 5. गोपिका (के माध्यम से प्रकट मूलतः कवि) का वाग्वैदग्ध्य दृष्टव्य है। 6. 'हरि' शब्द का स्टीक प्रयोग कवि की शब्द की पकड़ और समुचित प्रयोग का साक्ष्य है।

अंखियनि की सुधि भूल गई।

स्याम-अधर मृदु सुनत मुरलिका, चक्रित नारी भई ॥

जो जैसे सो तैसे रहि गई, सुख दुख कछौ न जाइ।

लिखि चित्र की सी सब है गई इकटक पल बिसराइ ॥

काहूँ सुधि, काहूँ सुधि नाहीं, सहज मुरलिका गान।

भवन रवन की सुधि न रही तनु, सुनत शब्द वह कान ॥

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

नोट

अंखियनि तैं मुरली अति प्यारी वै बैरिनी यह सौति ।

सूर परस्पर कहति गोपिका, यह उपजी उद्भूति ॥

शब्दार्थ—सुधि = ध्यान। अधर = होंठ। चक्रित = चकित, चकई। भई = हो गयीं। काहूँ = कभी। रवन = गमन, तनिक। उद्भूति = अद्भुत।

प्रसंग—नायिका (गोपी) अपनी सखियों के साथ पारस्परिक वार्तालाप में मग्न थी। उसी समय कृष्ण की बंशी की ध्वनि उसके कानों में पड़ी। परिणाम क्या हुआ इसी को बताते हुए कवि ने कहा है—

व्याख्या—(नायिका गोपी और उसकी सभी अंतरंग सखियाँ) आँखों का ध्यान भूल गयीं। कृष्ण-होठों पर रखी मुरली की मधुर ध्वनि सुनते ही सभी गोपियाँ चकित हो गयीं (अथवा चकई की भाँति चंचल हो गयीं)। उस क्षण जो जिस अवस्था में थी, उसी में रह गयी, परस्पर सुख-दुःख भी उनसे नहीं कहा जाता क्योंकि संगीत-रस में डूबी होने से वाणी भी अवाक् हो गयी थी) सभी चित्र-लिखित सी (स्तब्ध) हो गयी और पलभर को तो पलक झपकना भी बिसार दिया। मुरली के सहज गान में खोई और तल्लीन बनी इन गोपियों को कभी सुध थी तो कभी बेसुध (अथवा किसी को अपनी सुध थी तो कोई एकदम बेसुध बन गयी थी)। उनको घर वापिस जाने की तनिक भी सुधि नहीं थी। वे तो कानों से मुरली के शब्द को ही सुन रही थीं। उनको अपनी आँखों से अधिक मुरली प्यारी थी यद्यपि आँखें यदि शत्रु थीं तो यह मुरली सौत (की भाँति कृष्ण के मुँह लगने वाली प्रिया)। गोपियाँ परस्पर कहने लगी कि यह मुरली तो अद्भुत जन्मी है (क्योंकि इसने सभी को एकदम विभोर कर दिया है)।

विशेष—1. यहाँ पर मुरली का अतिशयोक्तिपरक प्रभाव दिखाया गया है जो पुष्टिमार्गीय मतानुयायी सूर के लिये स्वाभाविक ही था। 2. अलंकार—(क) उपमा—लिखि.....बिसराइ। (ख) अनुप्रास—सुनत सबद। 3. संयोग शृंगारान्तर्गत मुग्धावस्था, स्तंभ और जड़तादि अवस्थाएँ चित्रित हैं।

4. भावसाम्य—

(क) मुरली सुनत देह गति भूलि, गोपी प्रेम-हिंडोरे झूली।
कबहुँक चक्रित होहिं समानी, स्वेद चले द्रव जैसे पानी।
कबहुँ सुधि कबहुँ सुधि नाहिं, कबहुँ मुरली नाद समाही।

नैना भए अनाथ हमारे।

मदनगुपाल उहाँ तैं सजनी, सुनियत दूर सिधारे ॥

वै समुद्र हम मीन बापुरी, कैसे जीवें न्यारे।

हम चातक वै जलद स्याम-घन, पियतिं सुधारस प्यारे ॥

मथुरा बसत आस दरसन की, जोई नैन मग हारे।

सूरदास हमकौ उलटि विधि, मृतकहुं तै पुनि भारे ॥

शब्दार्थ—भए = हो गये। उहाँ = वहाँ, मथुरा से। बापुरी = बेचारी। न्यारे = अलग। जलद = जल से भरे। जोइ = देखते, प्रतीक्षा करते। मृतकहु = मरे हुए। पुनि = पुनः।

प्रसंग—कृष्ण के मथुरा-प्रवास के उपरान्त गोपियाँ वृन्दावन में ही अकेली रहकर कृष्ण-विरह में व्यथित रहने लगी थीं। किसी पथिक से उनको पता चला कि कृष्ण अब मथुरा को भी छोड़ दूर द्वारिकापुरी चले गये हैं फलतः गोपियों की कृष्ण-मिलन की आशा पर फिर पानी पड़ गया और वे और भी अधिक विरह-व्यथित हो उठीं। अपनी इसी अवस्था को स्पष्ट करते हुए कोई गोपी (अथवा राधिका) अपनी अंतरंग सखी से कहने लगी—

व्याख्या—(कृष्ण के चले जाने और दर्शन न कर पाने के कारण) हमारे नेत्र (स्वामी कृष्ण के अभाव में) अनाथ हो गये हैं। हे सखि! सुनते हैं कि मदनगोपाल कृष्ण अब वहाँ (मथुरा) से कहीं दूर (द्वारिका में) चले गये। (अतएव अब तो उनसे मिलन होना और भी मुश्किल हो गया है। जब मथुरा से ही वे नहीं लौटे तो अब भला इतनी दूरी पर स्थित द्वारिका से क्या लौट पायेंगे)। वे यदि समुद्र हैं तो हम बेचारी मछलियाँ (जो जल में ही जीवित रह पाती हैं), अब भला दूर (अलग) रहकर कैसे जीवित रह सकती हैं? हम चातक (पक्षी की भाँति है) और वे (कृष्ण) जल से परिपूर्ण श्याम वर्ण वाले मेघ जिसके अमृतरस को हम (चातक की भाँति ही) पीती हैं। (कृष्ण के) मथुरा में रहते हुए

नोट

तो (हमको) दर्शनों की आशा थी किन्तु अब (कृष्ण के द्वारिका पहुँच जाने के कारण) नेत्र तो रास्ता देखते-देखते (प्रतीक्षा करते-करते) हार गये हैं। सच तो यह है कि विधाता ने हमारे लिये उल्टी स्थिति उत्पन्न कर दी है और (हम कृष्ण-विरह में पहले से ही) मरी हुई नारियों को पुनः मारा डाला है।

विशेष—1. यहाँ पर वियोगान्तर्गत प्रेम की एकनिष्ठा-अनन्यता आदि भावनाओं तथा गुणकथन, उद्वेग आदि विरह-दशाओं का काव्यात्मक चित्रण है। 2. अलंकार—(क) उपमा—वै.....प्यारे। (ख) रूपक और श्लेष—स्याम घन, सुधारस। 3. अन्तिम दो पंक्तियों में मुहावरों का सुन्दर प्रयोग कवि की भाषा-कला का परिचायक है। 4. ‘मदन गुपाल’ तथा ‘जलद स्याम घन’ आदि शब्दों का सटीक और सार्थक प्रयोग है। 5. उपमानयोजना परम्परागत है।



क्या आप जानते हैं कृष्ण के मथुरा-प्रवास के उपरान्त गोपियाँ वृन्दावन में अकेली रहकर कृष्ण-विरह में व्यथित रहने लगी थीं।

उडुपति सौं बिनवति मृगनयनी।

तुम कहियत उडुराज अमृतमय, तजि स्वभाव कत बरषत बहनी ॥

उमापति-रिपु अधिक दहत हैं, हरि-रिपु-प्रीतम सुख नितैनी ॥

छपा न छीन होति सुनु सजनी, भूमि-धिसन-रिपु कहा दुरैनी ॥

स्याम संदेस विचार करति हौं, कहाँ रहे हरि, छाड़ जु छौनी।

सूर स्याम बिनु भवन भयानक, जोहत रहति गोपाल की औनी ॥

शब्दार्थ—उडुपति = नक्षत्रों का स्वामी, चन्द्रमा। बिनवति = प्रार्थना करती हैं। बहनी = वन्धि, अग्नि। उमापति-रिपु = पार्वती के पति शिव का शत्रु, कामदेव। दहन = जलाता है। हरि-रिपु = सर्प का शत्रु मयूर। नितैनी = पाताल। छपा = रात्रि। भूमिधिसन रिपु = भूमि पर रेंगने वाले साँप का शत्रु, गरुड़। दुरैनी = छिप गया। छौनी = किशोरी। जोहत = प्रतीक्षा। औनी = आगमन।

प्रसंग—कृष्ण के द्वारिका-प्रवास के उपरान्त, वृन्दावन-स्थित गोपियों की विरह-व्यथा और भी अधिक बढ़ जाती है। कृष्ण से हुआ विच्छेद और विरह-ग्रस्त स्थिति उनको पहले से भी अधिक व्याकुल करने लगती है। इसी स्थिति को प्रकट करते हुए कोई गोपी (अपने अथवा राधा के विषय में) अपनी सखी से कहती है—

व्याख्या—(वह) मृग जैसे नेत्रों वाली (नायिका, गोपी अथवा राधिका) नक्षत्रपति चन्द्रमा से प्रार्थना करती है कि हे चन्द्रमा! कहने के लिये (अथवा कहलाने वाले) तुम अमृतमय हो किन्तु अपने (दयालु) स्वभाव को छोड़कर अग्नि की वर्षा क्यों करते हो? (भाव यह है कि संयोगकाल में अमृतमयी लगने वाली चन्द्रिका अब वियोगकाल में अग्नि की भाँति जलाने वाली प्रतीत होने लगी है।) (ऐसे उद्दीपन वातावरण में) पार्वती के पति शिव का शत्रु अर्थात् कामदेव (मुझको कामोद्दीप्त करके) बहुत अधिक जलाता है (काम-व्यथित करता है)। ऐसे में सर्प-शत्रु गरुड़ के प्रियतम अर्थात् श्रीकृष्ण न जाने कहाँ पाताल में चले गये हैं। हे सजनी! रात्रि भी नहीं घटती। भूमि पर रेंगने वाले सर्प के शत्रु न जाने कहाँ छिप गये हैं? मैं तो कृष्ण के संदेश पर ही विचार करती हूँ। न जाने वे कहाँ हैं, जिन्होंने मुझ किशोरी को छोड़ दिया है? श्यामवर्णीय कृष्ण के बिना तो मुझे अपना भवन भी भयानक प्रतीत होता है और मैं (इन्द्रियों को सुख देकर इनका पालन करने वाले) कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करती रहती हूँ।

विशेष—1. यहाँ पर विरह का अतिशयोक्तिपरक चित्रण है। 2. काव्यशास्त्रीय दृष्टि से उन्मादावस्था को सजीव किया गया है। 3. नायिका का वागवैदग्ध्य दृष्टव्य है। 4. ‘उमापति....दुरैनी’ अंश कूटकाव्य का उदाहरण है। 5. अलंकार—(क) विरोधाभास—तुम.....बहनी। (ख) अतिशयोक्ति—सूरस्याम.....भयानक। 6. यहाँ पर प्रकृति का विरहान्तर्गत उद्दीपक रूप में अंकन किया गया है।

भावसाम्य— (क) कोउ, माई! बरजै या चंदहि।

करत है कोप बहुत हम्ह ऊपर कुमुदनि करत अनंदहि ॥

—सूरदास

नोट

- (ख) हर को तिलक, हरि! चित को दहत ।
कहियत है उडुराज अमृतमय, तजि सुभाव मोको वहि बहत ॥ —सूरदास
- (ग) कलप समान रैनि तेहि बाढ़ी,
तिल तिल भर जुग जुग जिमि गाढ़ी ।
गहै बीन मकु रैनि बिहाइ । —जायसी : पद्मावत
- (घ) ऐ रे मतिमन्द चन्द! आवत न तोहि लाज,
है कै द्विजराज काज करत कसाई के । —मतिराम पदावली
- (ङ) औरै भाँति भयेब ये चौसर चन्दन चन्द ।
पति बिन अति पारस विपत मारत मारुतचंद ॥ —बिहारी : सतसई
- (च) किस तरह से अब कटेगी जिन्दगी,
रात कटती नजर नहीं आती ।

वायस गहगहात सुनि सुन्दरि बानि बिमल पूर्व दिसि बोली ।
आजु मिलावा होइ स्याम कौ, तू सुनि सखि राधिका भोली ॥
कुच भुज नैन अधर फरकत हैं, बिनहिं बात अंचल-ध्वज डोली ।
सोचि निवारि, करौ मन आनन्द मानो भाग दसा विधि खोली ॥
सुनत बात सजनी के मुख की, पुलकित प्रेम तरकि गई चोली ।
सूरदास अभिलाषा नन्दसुत, हरषि सुभग नारि अनमोली ॥

शब्दार्थ—वायस = कौआ । गहगहात = गद्गद् होकर बोलना । बिमल = मीठी । मिलावा = मिलन । कुच = वक्ष । अधर = होंठ । ध्वज = ध्वजा । निवारि = छोड़कर । विधि = ब्रह्मा । तरकि = तड़कना, खुलना । सुभग = सुन्दर ।

प्रसंग—श्री कृष्ण के द्वारिका-गमन के पश्चात् ब्रज का गोपी-समाज एकदम विरह-व्यथित हो गया । इनमें सबसे अधिक व्यथित थी—राधा । किसी दिन श्रेष्ठ शकुन देख राधा की कोई अन्तरंग सखी प्रसन्न हो उठी । विरह-व्यथित राधा को सान्त्वना देते हुए वह कहने लगी—

व्याख्या—हे सुन्दरी (राधा!) सुनो । पूर्व दिशा में कौआ गद्गद् होकर मीठी वाणी में बोल रहा है । हे भोली सखी राधा! तू इसको सुन । आज तेरा श्याम से मिलन अवश्य होगा । आज कुच, भुजा, नेत्र और होंठ अपने आप फड़क रहे हैं तथा बिना वायु के झोंके के आंचल रूपी ध्वजा फहराती है । (ये सभी प्रिय मिलन के शुभ लक्षण हैं ।) अतएव चिन्ता छोड़कर मन में प्रसन्न हो । ऐसा लगता है मानो ब्रह्मा ने तेरे भाग्य की दशा को खोल दिया है (अर्थात् तेरा भाग्योदय हो गया है) ।

सखी के मुख (से कही गयी इन सान्त्वनामयी) की बातों को सुनकर राधा प्रेम पुलकायमान हो गयी तथा उनकी चोली के बन्द टूट गये । नन्द के पुत्र कृष्ण से मिलन होने की अभिलाषा से भरकर वह सुन्दर और अनमोल नारी (राधा) हर्षित हो गयी ।

विशेष—1. लोक-नारी समाज में शकुन-विचार की आम परिपाटी है । यहाँ कवि ने ऐसे ही कुछ लोक-प्रचलित शकुनों का उल्लेख किया है जो एक ओर कवि के शकुन-परिचय के साक्षी हैं तो दूसरी ओर कवि की जनसमाज में गहरी पैठ तथा समकालीन नारी-समाज के भी । 2. काव्यशास्त्रीय दृष्टि से यहाँ पर मिलनातुर नायिका का मर्मस्पर्शी चित्रण है । 3. अलंकार—(क) अनुप्रास—सुनि सुन्दरि, बानि बिमल । (ख) रूपक—अंचल-ध्वज । (ग) उत्प्रेक्षा—सोचि... ..खोली । 4. 'पुलकित.....चोली' में सुन्दर अनुभाव-चित्रण किया गया है ।

4. भावसाम्य—(क) मोरा रे अगनवा चनन केरि गछिया ताहि चढ़ि कुरुख । —विद्यापति
(ख) पिय आयौ परदेस तै हिय हुलसि अति बाम ।
टूट-टूट कंचुकि जियौ करि कमनैति काम ॥ —रसराज

माधव या लगि है जग जीजत ।
जात हरि सौं प्रेम पुरातन, बहुरि नयौ करि लीजत ॥
कहाँ हौं तुम जदुनाथ सिंधु तट, कहँ हम गोकुलवासी ।
वह वियोग यह मिलन कहाँ अब, काल चाल औरासी ॥
कहाँ रबि राहु कहाँ यह अवसर, विधि संजोग बनायौ ।
उहिं उपकार आजु इन नैननि, हरि दरसन सचु पायौ ।
तब अरु अब यह कठिन परय अति निमिषहु पीर न जानी ।
सूरदास प्रभु जानि आपने, सबहिनि सौं रुचि मानी ॥

शब्दार्थ—या लगि = इसीलिये। जीजत = जीवित है। जाते। = जिससे। बहुरि = पुनः। हौं = कहाँ। औरासी = विलक्षण। विधि = भाग्य, ब्रह्मा। उहि = उसी। सचु = सुख। निमिषहु = क्षण भर। पीर = पीड़ा। रुचि = प्रेम।

प्रसंग—ब्रज का समुदाय कृष्ण से भेंट करने के लिये कुरुक्षेत्र जा पहुँचा। वहाँ पर कृष्ण से भेंट करते हुए ब्रज-समाज का कोई व्यक्ति कहने लगा—

व्याख्या—हे माधव! यह संसार इसलिये जीवित है जिससे कि हम अपने हरि के प्रति अपने प्रेम को फिर से नया कर लें। (भाव यह है कि कृष्ण से हमारा प्रेम जन्म-जन्मान्तर का है जो हमारे हर एक जनम में नया होता रहता है)। कहाँ तो तुम सिंधु-तट (द्वारिका) पर रहने वाले यदुराज तथा कहाँ हम गोकुल ग्राम के निवासी? फिर भी दोनों में कहाँ तो वह वियोग और कहाँ अब यह मिलन। वास्तव में, समय की गति बड़ी विलक्षण है। कहाँ तो सूर्य और कहाँ राहु? (दोनों का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं) लेकिन आज यह अवसर है कि दोनों का मिलन हो रहा है। विधि ने भी यह क्या संयोग बनाया है। कारण? उसी ब्रह्म (द्वारा निर्मित संयोग रूपी) उपकार से हम अपने इन नेत्रों से हरि-दर्शन का सुख प्राप्त कर रहे हैं। तब (वियोग-काल में) और अब (मिलन-काल में) दोनों ही स्थितियों में यह (समझ पाना) बड़ा कठिन है। अब तो क्षण भर को भी पीड़ा नहीं जान पड़ी। कारण? सूर के प्रभु कृष्ण ने सबको अपना जानकर प्रेमपूर्वक व्यवहार किया।

राधा माधव भेंट भई।

राधा माधव माधव राधा कीट, भृंग गति है जु गई॥

माधव राधा के रंग राँचे, राधा माधव रंग रई।

माधव राधा प्रीति निरन्तर, रसना करि सो कहि न गई॥

बिहँसि कहयौ-हम तुम नहिं अन्तर, यह कहिकै उन ब्रज पठई।

सूरदास प्रभु राधा माधव, ब्रज-बिहार नित नई-नई॥

शब्दार्थ—भई = हुई। कीट-भृंग = भृंग नामक कीड़ा। राँचे = रंगे। रई = हो गयी। रसना = जिह्वा, वाणी। बिहँसि = हँसकर। पठई = भेज दिया।

प्रसंग—प्रिय कृष्ण से भेंट करने के लिये आये हुए ब्रज-समाज में कृष्ण की अटल-अनन्य बाल सखा राधा भी थी। दीर्घकाल के पश्चात् उसकी कृष्ण से भेंट हुई थी। निःसंदेह इस भेंट में राधा-माधव एकाकार हो गए। इसी भेंट-चित्रण और राधा-माधव पर हुई भेंट प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करते हुए कवि ने कहा है—

व्याख्या—(दीर्घ प्रतीक्षा और दीर्घ काल के पश्चात्) राधा और माधव (वसन्त जैसे मादक और सुन्दर कृष्ण) की भेंट हुई। मिलते ही राधा माधवमय हो गई तो माधव राधामय (अर्थात् दोनों एक-दूसरे में खोकर एकाकार-एकरूप हो गए। दोनों की अवस्था भृंग नामक कीट की भाँति हो गयी (अर्थात् दोनों एक हो गये)। माधव राधा के रंग में रंग गये तो राधा माधव के। राधा और कृष्ण में पारस्परिक प्रीति निरन्तर बढ़ने लगी जिसका वर्णन जिह्वा या वाणी से भी नहीं किया जा सकता। कृष्ण ने हँसते हुए राधा से कहा कि 'हम-तुम में कोई अन्तर नहीं है, (दोनों अभिन्न हैं)। यह कहकर राधा को ब्रज वापिस भेज दिया। सूर के प्रभु राधा और माधव ब्रज में नित्य नया विहार करते हैं (अर्थात् राधा-कृष्ण की ब्रज-विहार-लीला अनित्य है)।

नोट

विशेष—1. इस पद का महत्त्व कई दृष्टियों से उल्लेखनीय है। काव्य-दृष्टि से यहाँ पर नायक-नायिका का अभेद भाव प्रतिपादित किया गया है तो कवि की पुष्टिमार्गीय विचारधारा के अनुकूल राधा-कृष्ण (ब्रह्म और जीव अथवा ब्रह्म और माया) का अनित्यत्व और अभेद। 2. राधा-कृष्ण-प्रेम के द्वारा प्रेम की आदर्श स्थिति यहाँ पर प्रकट की गयी है। 3. अलंकार—(क) पुनरुक्ति—राधा.....राधा, नई-नई। (ख) उदाहरण—राधा.....गई। (ग) अतिशयोक्ति—रसना.....गई। 4. 'राधा' और 'माधव' शब्दों का एकदम सटीक और सार्थक प्रयोग है जो कवि की अद्भुत शब्द-प्रयोगशक्ति का परिचायक है।

5. भावसाम्य—

(क) मिलन दुहुं तन कि वा अपरूप। —चंडीदास : पदावली

(ख) राधा सेय जब पुनतहि माधव, माधव सेय जब राधा.....।
दुहि दिसि दाह दारुन दगधई आकुल कीट-कीट परागा। —विद्यापति : पदावली

(ग) मोहि मोहि मोहन को मन भयो राधामय।
राधा मन मोहि मोहि मोहन भई भई ॥ —देव

(घ) सूर स्याम नागर इह नागरि एक प्राण तनु द्वे। —सूरदास

6. धार्मिक-दार्शनिक प्रतीकत्व की दृष्टि से अन्तिम दो पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि उसमें राधा-कृष्ण के साथ-साथ ब्रज और ब्रज-लीलाओं की अनित्यता के स्पष्ट संकेत दिये गये हैं।

7. यहाँ पर 'रंग राचे' और 'रंग रई' आदि ब्रजप्रदेशीय मुहावरों का एकदम काव्यात्मक और व्यंजनात्मक प्रयोग मिलता है जो कवि की भाषा-समृद्धि और लोकज्ञान-वैपुल्य का परिचायक है।

स्याममुख देखे ही परतीति।

जो तुम कोटि जतन करि सिखवत जोग ध्यान रीति ॥

नाहिन कछू सयान ज्ञान में यह हम कैसे मानै।

कहौ कहा कहिये या नभ को कैसे उर में आनै ॥

यह मन एक, एक वह मूरति, भृंगकीट सम माने।

सूर सपथ दे, बूझत ऊधौ यह ब्रज लोग सयाने ॥33॥

शब्दार्थ—परतीति = विश्वास। कोटि = करोड़ों। सयान = चालाकी। नभ = शून्याकाश। उर = हृदय। भृंगकीट = बिलनी अथवा उपात्त नामक कीड़ा जो हर दूसरे कीड़े को अपनी ही तरह का बना लेता है। सम = समान। बूझत = पूछना।

सन्दर्भ और प्रसंग—उपर्युक्त।

व्याख्या—श्यामल कृष्ण के मुख को देखकर ही हमको (उनके प्रेम पर) विश्वास है अथवा कृष्ण के मुख को देखकर ही हम (तुम्हारे द्वारा लाये गये) उस योग-संदेश पर विश्वास कर सकती हैं। जिस योग को तुम करोड़ों प्रकार से प्रयत्न करके हमको सिखा रहे हो उसके ध्यान-रीति पर हमको तभी विश्वास हो सकता है जबकि हम कृष्ण-मुख के दर्शन कर लें। तुम्हारे इस ज्ञान (उपदेश) में कोई चालबाजी नहीं है, यह बात हम किस प्रकार मान लें (क्योंकि हमको तो तुम्हारा बार-बार योग का उपदेश देना चालाकी अथवा धूर्तता से भरा हुआ लगता है। तुम ही बताओ, इस शून्य (ब्रह्म) आकाश को हृदय में किस प्रकार धारण किया जा सकता है। कारण? हमारा मन तो एक ही है और उसमें केवल (कृष्ण की ही) एक मूर्ति बसी है। इस मूर्ति ने उपात्त कीट की भाँति हमारे मन को भी अपनी ही भाँति बना लिया है। हे उद्धव! हम तुमको शपथ, देकर पूछती हैं, तुम सच बताओ कि क्या हृदय में एक मूर्ति के रहते किसी दूसरे (ब्रह्म अथवा योग) का ध्यान किया जा सकता है? हम ब्रज के लोग बहुत सयाने हैं अतएव सोच-समझकर सच ही बताना।

विशेष—1. यहाँ पर गोपियों का नारी वाग्वैदग्ध्य, अनन्य प्रेम-भाव और तर्क-शक्ति एक साथ मुखर हुई मिलती है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि सूर नारी-मनोविज्ञान के कितने बड़े कुशल चितरे थे। 2. यहाँ पर उपमा (भृंगकीट), रूपकातिशयोक्ति (कहौ.....आनै) अलंकार हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

4. कौन-सा जानवर अपनी केंचुल उतारकर उसको फिर नहीं देखता?
(अ) सर्प (ब) केंचुआ (स) न (अ) और न (ब)(द) इनमें से कोई नहीं
5. 'नैना नेकु न मानहीं, कितौ कहौं समुझाय' पंक्तियां किसकी हैं?
(अ) सूरदास (ब) बिहारी (स) तुलसी (द) इनमें से कोई नहीं
6. भई सखि ये अंखियां बिगैरै।
हरिश्चन्द्र कुल कानि छांडिकै, हरि की भई रखैल।।
पंक्तियों के रचयिता हैं—
(अ) भारतेन्दु हरिश्चंद्र (ब) बिहारी (स) सूरदास (द) इनमें से कोई नहीं

4.2 सारांश (Summary)

खंजन पक्षी के जोड़े की समता करने वाले उसके दोनों चंचल नेत्र चारों ओर देखते रहते हैं, मानो कलह हो जाने के कारण उन्होंने शोर मचा दिया हो लेकिन तोते (नाक) ने इसको बचा दिया।

कृष्ण तो राधा के (सौन्दर्य के) वश में इस प्रकार हो गये हैं जैसे कि चातक स्वाति नक्षत्र में हुई वर्षा के, मछली जल के तथा परछाई शरीर के वश में रहती है। सच तो यह है कि कृष्ण का रूप शिकारी है तो कुंडलों की कान्ति अग्नि की ज्वाला तथा किंकणी की घंटा-घोष है जिससे व्याकुल होकर ये नेत्र अपलक दृष्टि से उसी (कृष्ण-सौन्दर्य) की ओर देखते रहते हैं। जिस प्रकार कोई चोर चोरी करना नहीं छोड़ता, उसको (अथवा वह स्वयं) जिस चीज को मना करो, वही करता है और फिर भी जाकर बारम्बर हानि उठाता है, चाहे (मना करते समय) कहते-कहते मर ही जाओ। मुरली के सहज गान में खोई और तल्लीन बनी इन गोपियों को कभी सुध थी तो कभी बेसुध (अथवा किसी को अपनी सुध थी तो कोई एकदम बेसुध बन गयी थी)। उनको घर वापिस जाने की भी तनिक भी सुधि नहीं थी। राधा और कृष्ण में पारस्परिक प्रीति निरन्तर बढ़ने लगी जिसका वर्णन जिह्वा या वाणी से भी नहीं कहा जा सकता। कृष्ण ने हँसते हुए राधा से कहा कि 'हम-तुम में कोई अन्तर नहीं है, (दोनों अभिन्न हैं)। यह कहकर राधा को ब्रज वापिस भेज दिया। सूर के प्रभु राधा और माधव ब्रज में नित्य नया विहार करते हैं (अर्थात् राधा-कृष्ण की ब्रज-विहार-लीला अनित्य है)।

4.3 शब्दकोश (Keywords)

1. परतीति: विश्वास, यकीन होना
2. औनी: आगमन, किसी का आना

4.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. निम्नलिखित पंक्तियों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए—
राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव माधव राधा कीट,
भृंग गति है। जु गई।।

2. क्या आप इस बात से सहमत हैं कि 'गोकुल लीला' में सूरदास ने श्रीकृष्ण और गोपियों का मनोहारी वर्णन किया है? उदाहरण सहित बताएं।

नोट

उत्तर-स्वमूल्यांकन (Answer-Self Assessment)

- | | | | |
|---------|-----------------|------------|--------|
| 1. खंजन | 2. तोता और कोयल | 3. रसज्ञान | 4. (अ) |
| 5. (ब) | 6. (अ) | | |

4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. सूरसागर-सूरदास कृत।
2. सूर की काव्य कला-गौतम मनमोहन, भारतीय मन्दिर।
3. सूरदास के पद-गुप्ता संजय, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली।

नोट

इकाई 5

सूरसागर की तात्विक समीक्षा एवं शिल्प विधान**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

5.1 सूरसागर की तात्विक समीक्षा एवं शिल्प विधान

5.1.1 मुहावरे-लोकोक्तियाँ

5.2 सारांश (Summary)

5.3 शब्दकोश (Keywords)

5.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

5.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे—

- शिल्प विधान के अर्थ को जानने में।
- सूरसागर की भाषा-विषय चमत्कार को समझने में।
- सूरसागर की तात्विक समीक्षा को अपने शब्दों में लिखने में।

प्रस्तावना (Introduction)

काव्य और शिल्पविधान—काव्य का इष्ट है—रस, जिनकी प्रतिष्ठा कवि दो प्रकार से करता है—(1) भावगत तुष्टि से तथा (2) कलागत रमणीयता से। यह कलागत रमणीयता भी मूलतः शिल्पविधान की ही प्रण्य है। कवि की अनुभूति इसी के माध्यम से प्रकट होकर रसिक-हृदय तक पहुँचती है और साधारणीकरण का माध्यम बनती है। दूसरे शब्दों में, कवि-कथ्य को साकार करने एवं रसिक-हृदयों तक पहुँचाने का कार्य शिल्प-विधान ही करता है। यही कारण है कि काव्य-कला का यह अभिन्न अंग माना गया है। इसी का सविस्तृत परिचय देते हुये एक काव्यशास्त्रीय रूपक में कहा गया है”, कविता एक लावण्यमयी सुन्दरी है। शब्दार्थ इसका तन है, अलंकार आभूषण, रीति अवयवों का गठन तथा गुण स्वभाव।’

5.1 सूरसागर की तात्विक समीक्षा एवं शिल्प विधान

शिल्पविधान का तात्पर्य—‘शिल्पविधान’ दो शब्दों से मिलकर बना है—शिल्प + विधान। ‘शिल्प’ का शब्दार्थ है—‘कला’ जबकि ‘विधान’ का अर्थ है—संयोजन। इस प्रकार शिल्पविधि का शब्दार्थ होगा—कला अथवा कलागत संयोजन। कलागत-तुष्टि, अभिव्यंजना बहिर्पक्ष अथवा अभिव्यक्ति-कौशल आदि भी इसी के पर्यायसूचक शब्द हैं।

संक्षेप में, भाषा, अलंकार, छन्द और काव्य-रूप आदि शिल्प के विविध अंग हैं और इनका समुचित संयोजन करना ही समग्रतः शिल्पविधान। दृष्टव्य बात यह भी है कि यह कोई बाह्य अथवा भिन्न तत्व नहीं, ‘काव्य’ का ही अन्तरंग और अभिन्न पक्ष है।

सूरकाव्य का शिल्प-विधान—श्रेष्ठ कवि अथवा उसके काव्य का अन्तर्बाह्य सब कुछ मधुर होता है—‘मधुराधिपतेरखिलम् मधुरम्। निःसन्देह सूर और उनका काव्य इसी कोटि का है। ‘साहित्य-लहरी’ का आचार्यत्व

नोट

हो अथवा 'सूर सूरवली' और सबसे अधिक 'सूरसागर' का काव्य-कौशल, सूरकाव्य के साहित्यिक या काव्यात्मक गुणों के परिचायक हैं। निःसन्देह महाकवि सूर ने काव्याचार्यों की संगति नहीं भोगी थी, काव्यशास्त्रियों के चरणों में बैठकर सूत्र व्याख्याओं को नहीं रटा था किन्तु फिर भी सूर ने काव्यशास्त्र का अपूर्व ज्ञान संजोया, जैसा कि 'साहित्य-लहरी' से स्पष्ट भी हो जाता है। दूसरे, डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया के शब्दों में, 'सूर की जन्म-भूमि 'साही', सूर का साधना क्षेत्र, 'गौघाट' (रुनकता-आगरा) तथा उपासना-क्षेत्र परासोली (गोवर्धन-मथुरा) तीनों ही ब्रजभाषा क्षेत्र में स्थित हैं।' तीसरे, 'सूर न तो कबीर की भाँति घुमक्कड़ थे और न उन्होंने तुलसी की भाँति दो भाषाओं का प्रयोग किया, इस दृष्टि से वह एक भाषा (ब्रज) निष्ठ थे।' चौथे, 'सूरसागर' आदि समस्त सूरकाव्य का मूल वर्ण्य ब्रज से सम्बन्धित है। फलतः इन सबका प्रभाव सूर के शिल्प-विधान पर पड़ना स्वाभाविक ही है। सच तो यह है कि सूर के काव्य का समस्त शिल्प-विधान नाना विशेषताओं से युक्त है। प्रमाण है—'सूरकाव्य' की शिल्पगत विशेषताएँ जो निम्नांकित हैं—

भाषा विषयक

शब्दावली—सूर ब्रजभाषा के प्रथम कवि हैं। अपने समस्त काव्य में उन्होंने इसी भाषा को मुख्यतः अपनाया है। यह तत्कालीन जनसमाज की लोक-भाषा थी जिसको सूर ने 'भाषा' नाम दिया है—“सूरदास सोई कहे पद भाषा, करि गाई।” यही कारण है कि यहाँ पर मुख्यतः ब्रजभाषा की लोक-प्रचलित शब्दावली की प्रधानता है यथा आंखि, सोई, पतिआरौ, दोऊ, सेए, बटाऊ, मुआल, सिरनोई, जनियत, जुवतिनि, अंजोरी, सकुचात तथा सकोरत आदि। भाषा को अधिकाधिक स्वाभाविक बनाने के लिये कहीं शब्दों में व्यंजनादि बदले गये हैं (यथा रिसि, रिचा), तो कहीं उनको तोड़ा-मरोड़ा गया है (यथा किलकी, मिलकी)। ध्वननशीलता भी इसका एक बड़ा गुण है यथा अरबाई, झमंकत, लखिखत, गहरात आदि। कहीं-कहीं इसमें अन्य भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं यथा—

संस्कृत— (i) अम्बुज, अधोमुख, कमल-दललोचन, निरालंब, वसुधा, अवज्ञा, खगपति, करभ, पिनाक, राका, संघात, गृह, अजिर आदि तत्सम शब्द।

(i) **तद्भव**—जोजन, कलेद, परतीति, भिनुसार, मरजाद, स्वारथ, स्रवन, औसर, कान्ह, पंखी, हियरो, अटारी, बछल, बिज्जु, आदि तद्भव शब्द।

लोक-प्रचलित देशज शब्द—यथा करतूति, करनी, उहकावे, तलबेली, मूँड, लाहा, खोही, छाक, डहकाओ, वागरि, धारी, दुर, लठबांसी आदि।

स्व-निर्मित—यथा ज्योतिक, मसानी, उतजीग, उषाधा, बिचवाना आदि।

अरबी-फारसी—तरवारि, दिवसी, दागना, हद, तारव, गुमान, दगा आदि।

पंजाबी—महंगी, प्यारी, पा, बिरियाँ।

पूर्वी—हमार, गोड, आपने।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही कहा है “सूर में चलती भाषा-कोमलता है.....भाषा की स्वाभाविकता में बाधा नहीं पड़ने पाई है।.....कहने का तात्पर्य यह है कि सूर की भाषा बहुत चलती हुई और स्वाभाविक है। काव्य-भाषा से होने से यद्यपि उसमें कहीं-कहीं संस्कृत के पद, कवि के समय से पूर्व परम्परागत प्रयोग तथा ब्रज से दूर-दूर के प्रदेशों के शब्द भी आ मिले हैं, पर उनकी मात्रा इतनी नहीं है कि भाषा के स्वरूप में कुछ अन्तर पड़े या कृत्रिमता आवे।” सच तो यह है कि “भाव-सम्राट सूर के मनो-दशा विशेष चित्रण में भाषा को भाव के समान्तर लाने के लिये प्रस्तुत्य प्रयास किया है। भाषा को प्रवाह और प्रभाव प्रदान करने वाली मिली-जुली शब्दावली उसी प्रयास का एक अंग और सूर की उस समन्वयवादी का प्रतीक है।”



टास्क सूरसागर के शिल्प-विधान पर अपना मत प्रस्तुत कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. भाषा, अलंकार, छन्द और आदि शिल्प के विविध अंग हैं।
2. सूरदास के बाद कवि थे।
3. हमार, गोड, आपन आदि बोली (भाषा) के शब्द हैं।

5.1.1 मुहावरे-लोकोक्तियाँ

भाषा के अन्तर्गत मुहावरों का विशिष्ट महत्त्व होता है। कारण? एक ओर तो मुहावरे अर्थ-व्यंजना को बढ़ाते हैं और दूसरी ओर उसको रोचक, सबल, प्रामाणिक, स्वाभाविक और संक्षिप्त बनाने में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त समाज का संचित अनुभव और मनोवैज्ञानिकता जैसे गुण भी इनमें मिलते हैं। कहना न होगा कि सूर की भाषा को भी मुहावरों ने इन सभी गुणों से युक्त तो बनाया ही है, वाग्वैदग्ध्य से भी शक्ति-सम्पन्न बना दिया है। सूर द्वारा प्रयुक्त अधिकांश मुहावरे ब्रज प्रदेश में प्रचलित रहे हैं और सबसे अधिक मात्रा (और गुण में) ‘भ्रमरगीत-प्रसंग’ में मिलते हैं। कुछ प्रमुख मुहावरे इसी सत्य के परिचायक हैं यथा गगन के तारे गिनना, चाम के दाम लगाना, एक डार के तोरे, इक दूजे हांसी, जी में सल रहना, जरे पर जारत, पवन को भुजा बनाना, पोच करना, धतुरा खाये फिरना, बारह बाने तथा एक ही सांचे से काढ़ना आदि। सच तो यह है कि सूरकाव्य में मुहावरों का विस्तृत कोष है। डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया के अनुसार तो केवल आँख से सम्बन्धित सैकड़ों मुहावरे केवल ‘भ्रमरगीत’ में उपलब्ध हैं।

मुहावरे वाले गुण लोकोक्तियों में भी होते हैं। इसी से भाषा में इनका भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। साधारणतः ‘लोकोक्तियाँ किसी सारगर्भित विचारपूर्ण वाक्य अथवा परम्परागत कथा, इतिहास किंवा ज्ञानोपदेशमय सूक्ति के रूप में कथनी की पुष्टि के लिये प्रयुक्त होती हैं।’ भ्रमरगीत में तो इन्होंने वचन-वक्रता का कार्य भी किया है। सूर ने लोकोक्तियों को दो ओर से सबल बनाया है। एक तो लोक-प्रचलित लोकोक्तियों को सटीक रूप से प्रयुक्त किया गया है, यथा—

“ले आये हो नफा जानि के सबै वस्तु अकरी।

कहौ कौन पै कढ़त कनूका जिन अठि भुसी पछोरी ॥

दूसरे, सूर ने कुछ लोकोक्तियों का निर्माण भी किया है, यथा—

(i) ‘भूरी के पातन के बदले को मुक्ताहल दैहै।’

(ii) ‘सूरजदास दिगम्बर पुर तैं रजक कहा त्योंहाइ।’

समग्रतः कुछ प्रमुख लोकोक्तियाँ देखिये जिनका प्रयोग ‘भ्रमरगीत’ में किया गया है—अपने स्वारथ के सब कोड, अपनो दूध छाड़ि को पीवे खार कूप के वारि, काकी भूख गई मन जाडू, जे आवें ते कारे, तुमसौं प्रेम कथा का काहबो मनहु काटिबो घास, लवादेइ धराधरि में कौन रंक को भूप, हठि नाव चलावत सूर सुझाव तजै नहीं कारो कीजै कोटि उपाय आदि।

शब्द शक्ति—सूर में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तीनों शब्द-शक्तियाँ मिलती हैं और वह भी अपने सशक्त और प्रभावशाली रूप में। इनमें भी प्रधानता है अन्तिम दो की। कुछ उदाहरण देखिये—

(i) “मधुकर स्याम हमारे चोर।

मन हरि लियो माधुरी मूरति चितै नयन की कोर ॥”

(ii) “ऊधो! तुम साथी मोरे।

मेरे कहे विलख मानोगे, कोटि कुटिल लैं जोर।”

॥ ॥ ॥

(iii) प्रकृति जोइ जाके अंग परी।

स्वान पूंछ कोटिक जा लागै, सूधि न काहू करी।”

नोट

वाग्वैदग्ध्य—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही कहा है, ‘सूरदास जी में सहृदयता और भावुकता है, प्रायः उतनी ही चतुरता और वाग्वैदग्ध्यता (Wit) भी है। किसी बात को कहने के न जाने कितने टेढ़े-सीधे ढंग उन्हें मालूम थे।’ यही कारण है कि तुलसी वाली गम्भीरता का यहाँ पूर्णतया अभाव है। दूसरी ओर गोपियों के कथनों में आद्योपांत वचन-चातुर्य और वाग्वैदग्ध्य भरा पड़ा है। यहाँ तक कि बारम्बार पुनरावृत्ति पर भी यह खलता नहीं है। निम्नलिखित कुछ उदाहरण इसी सत्य के परिचायक हैं—

(i) “सन्देसनि मधुवन कूप भरे।

जो कोउ पथिक गए हैं ह्यातें फिर नहीं गवन करे।

के वै स्याम सिखाये समोधे, कै वे बिच मरे।”

× × ×

(ii) “ऊधो! जानियो ज्ञान तिहारो।

जानै कहा राजगति लीला, अन्त अहीर विचारो।”

सच तो यह है कि भ्रमरगीत में गोपियों का एक-एक कथन मूलतः कवि के वचन-चातुर्य और वाग्वैदग्ध्य-शक्ति का परिचायक है। वास्तव में उच्चकोटि के कवि ही इस प्रकार के वाग्वैदग्ध्य के अधिकारी होते हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि इसी एक विशेषता के कारण सूर के पद एक वर्ण्य विशेष से सम्बन्धित होने पर भी एकरसता-दोष से अछूते बच गये हैं गोपियाँ कभी तो ज्ञान मार्ग के व्यावहारिक पक्ष की कठिनाइयों की ओर संकेत करके, कभी ज्ञानमार्गी एकांगिता को आधार बनाकर और कभी ज्ञानोपदेश की शैलीगत दुर्बोधता को लक्ष्य करके तरह-तरह से उद्धव को छकाती हैं और अन्त में उद्धव को छकाने के साथ-साथ प्रभावित भी करती हैं। यही कथन सूर के दृष्टकूट पदों, विनय पदों और वात्सल्यमय पदों आदि पर चरितार्थ होता है। राधा-कृष्ण की छेड़छाड़ से अधिक वाक्-कौशल भला और कहाँ मिल सकता है?



नोट्स

भ्रमरगीत में गोपियों का एक-एक कथन मूलतः कवि के वचन-चातुर्य और वाग्वैदग्ध्य-शक्ति का परिचायक है।

संगीतात्मकता—‘सूरसागर’ के सभी पद विविध राग-रागनियों में बंधे हैं। उनकी लययुक्त शब्दावली संक्षिप्त आकार और भाव-परिपूर्णता आदि भी उनको पूर्णतया गेय बना देती हैं। संगीत की रक्षा के लिये ही सूर ने प्रायः प्रसाद गुण युक्त शब्दावली को ही अधिक ग्रहण किया है। डॉ. मनमोहन गौतम ने इस विषय में ठीक ही कहा है, “सूर के पदों का गेयत्व अपूर्व है।.....सूर के गीतों में शास्त्रीय स्वर-लय का पूर्ण विधान है फिर भी सूर के गीत शास्त्रीय संगीत मात्र नहीं हैं। उनमें.....प्रधानता है शब्द संगीत की।.....संगीत शब्द सौन्दर्य या अर्थसौम्य में किसी प्रकार का विघ्न उत्पन्न नहीं करता। वह तो शब्दों की रमणीयता, ध्वन्यात्मकता और स्वर-लहरी से अर्थ में सौष्ठव और कल्पना में कमनीयता भरता है।.....पदगत शब्द संगीत अनुभूति की सूक्ष्मता को मूर्तिमान कर देता है।.....साथ ही दन्त्य वर्णों की बहुलता और सानुनासिक ध्वनि के संयोग से उसका गेयत्व सघन कर दिया गया है।”



क्या आप जानते हैं सूर के काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों मिलते हैं।

अलंकार विषयक—सूरकाव्य में अलंकारों का सागर है, कोई भी गोताखोर चाहे जितने अलंकार निकाल ले फिर भी ये अलंकार सायास नहीं आये वरन् पूर्णतया स्वाभाविक और भाव-सबलता के सहायक रूप में आये हैं। इनका मूलोद्देश्य है—सौन्दर्य का बोध कराना। डॉ. हरवंश लाल शर्मा (सूरकाव्य की आलोचना) ने ठीक कहा है, “किसी वस्तु के साक्षात्कार से जब कवि की सौन्दर्यानुभूति सजग हो उठती है, हृदय तल्लीन हो जाता है तो उसकी कल्पना उस वस्तु के सौन्दर्य को अधिक हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक बनाने के लिये अप्रस्तुत-व्यापार योजना का सन्निवेश

नोट

करने लगती है, उस समय कवि की रचना में अलंकारों का समावेश स्वतः हो जाता है।” कहना न होगा कि सूरकाव्य में अलंकार इसी रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

सूर के काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों मिलते हैं। इनमें भी प्रधानता दूसरे प्रकार के अर्थात् अर्थालंकारों की है। अर्थालंकारों में भी सबसे अधिक साम्यमूलक अलंकार आये हैं और इनमें भी सारूप्य या सादृश्य, साधर्म्य और प्रभाव साम्य तीनों प्रकार के अलंकार हैं। जैसा कि डॉ. विश्वनाथ शुक्ल ने (सूर की साहित्य साधना) कहा है, “उनके प्रियतम अलंकार, उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा हैं जिनके सुन्दर और अतिशय कलात्मक प्रयोग में सम्भवतः कोई हिन्दी कवि इनके समकक्ष नहीं ठहर सकता।.....सांगरूपक पर तो.....सूरदास का असाधारण अधिकार है।.....सूर के सांगरूपक उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, तत्तत् शास्त्रों के ज्ञान और अनुभूति के अतुल गाम्भीर्य से उद्भूत हैं।” इसी भाँति डॉ. हरवंश लाल शर्मा का मत है, “अनुप्रास का प्रयोग तो सूरकाव्य में अत्यन्त ही स्वाभाविक है क्योंकि अनुप्रास द्वारा जहाँ एक ओर ध्वन्यात्मक सौन्दर्य का विधान होता है, वहाँ दूसरी ओर उसके वातावरण की सृष्टि भी। वीप्सा अलंकार कवि के हृदय की भक्ति-भावना का ही परिचायक कहा जा सकता है क्योंकि उसका प्रयोग उन्होंने राधा और कृष्ण के अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य-रसापान से तृप्त न होकर बार-बार स्वरूप वर्णन में किया है। वक्रोक्ति का प्रयोग व्यंग्योक्तियों में है।.....विरहणी गोपियों की उक्तियाँ तो उनके भावों के साथ व्यंग्य को भी लेकर निकलती हैं, इसलिये उनमें वक्रोक्ति के सुन्दर उदाहरण भरे पड़े हैं।” इनके अतिरिक्त व्याजनिन्दा, संगति, विभावना, विरोधाभास, विषम, अनन्वय, सन्देह, भ्रान्ति, उल्लेख, अपन्हुति, दृष्टान्त आदि अनेक उदाहरण व्याप्त हैं। कुछ उदाहरण देखिये—

(i) रूपकातिशयोक्ति

“खजन मीन भृंग, वारिज, मृग पर दृग अति रुचि पाई।”

(ii) उत्प्रेक्षा, रूपक और अनुप्रास—

“देखियत चहुं दिसि ते घन घोर।

मानो मत मदन के हथियनु बलकरि बन्धन तोरे ॥

स्याम सुभग तन चुअत गण्डमद बरसत थोरे-थोरे।

रुक्त न पौन महावत हूँ पै मुख न अंकुस भोरे ॥”

(iii) व्यतिरेक—

“उपमा नैन न एक गही।

कवि जन कहत-कहत सब आए सुखि करि नाहिं कही ॥”

(iv) अतिशयोक्ति—

“नयन सजल, कागद अति कोमल, कर अंगुली अति ताती।

परसत जरै, विलोकन भीजे, दुहं भाँति दुख छाती ॥”

(v) अनुप्रास—

“ऊधो! कोकिल कूजत कानन ॥”

(vi) सन्देह—

“तिहारी प्रीति किधौं तरबारि?”

(vii) वक्रोक्ति—

“मधुकर! त्याग जोग सन्देसो।

भली स्याम कुसलात सुनाई सुनतहिं भयो अंदेसो ॥”

इस प्रकार, “सूरकाव्य विशेषतः भ्रमरगीत में अलंकारों का अनन्त वैभव विकीर्ण है। स्वभावोक्ति में तो उनसे आगे विश्व का सम्भवतः कोई ही कवि बढ़ सका हो।.....अलंकार उनके काव्य में सहज समाविष्ट होकर उसकी चारुता

को अतिशय प्रदान कर रहे हैं।” सच तो यह है कि “सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो अलंकारशास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है।”

नोट

छन्द विषयक—सूर के सभी पद गीतात्मक है। उनमें छन्दों का वैविध्य तो नहीं है, केवल पद प्रकार की दृष्टि से उनको विविधापरक माना जा सकता है। अधिकांश पद षट्पदी हैं जिनमें सवैया, रोला और छप्पय का स्वतन्त्र और मिश्रित रूप मिलता है। कुछ पद काफी बड़े और कुछ बहुत बड़े छन्दों में बद्ध हैं यथा “उद्धव-गोपी संवाद” के पद। कहीं-कहीं लोक छन्दों यथा होली, विरवा, कजरी आदि का उदाहरण भी देखा जा सकता है यथा ‘तुम्हारे बिरह, ब्रजनाथ, अहो प्रिय’ नयनन नदी बढ़ी’ तथा ‘ऊधो का उपदेस सुनौ किन कान दे।’ कहीं-कहीं चौपाई छन्द भी हैं यथा “हो तुम ब्रजनाथ पठायो। आतमज्ञान सिखावन आये।”

काव्य-रूप-विषयक—समस्त सूरकाव्य प्रबन्धात्मक मुक्तक है। तात्पर्य यह है कि इसमें प्रबन्ध की एक हल्की योजना-रेखा है किन्तु सभी पद अपने में स्वतन्त्र भी हैं। गीतात्मकता के सभी गुणों से युक्त होने के कारण सभी पद गेय हैं। सच तो, **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के शब्दों में, यह है कि ‘सूर की रचना जयदेव और विद्यापति के गीत काव्यों की शैली पर है, जिसमें सुर और लय के सौन्दर्य या माधुर्य का भी रस-परिपाक में बहुत कुछ योग्य रहता है।’ इस शैली को भी कवि ने उच्च कोटि का बनाकर प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सूर के काव्य का शिल्प पक्ष भी उच्च कोटि का है और विविध विशेषताओं से युक्त होने के कारण विशिष्ट भी है। वास्तव में, सूर के भाव विधान की भाँति उनके काव्य का शिल्प विधान भी अत्युत्तम है। क्या भाषा और क्या अलंकार, क्या छन्द योजना और क्या काव्य-रूप, सूर और उनका काव्य सभी अनुपम हैं, अत्युत्तम हैं, नवीनताओं और मौलिकताओं से परिपूर्ण हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

4. ‘भ्रमरगीत’ के रचयिता कौन हैं?
 (अ) सूरदास (ब) तुलसीदास (स) कबीर (द) जायसी
5. निम्नलिखित में से कौन-सा शब्द अरबी-फारसी भाषा का है?
 (अ) दागना, हद (ब) प्यारी, पा (स) करनी, छाक (द) इनमें से कोई नहीं
6. सूर के काव्य में और अर्थालंकार दोनों मिलते हैं।
 (अ) शब्दालंकार (ब) रस (स) दोहा (द) इनमें से कोई नहीं

5.2 सारांश (Summary)

शिल्पविधान का तात्पर्य—‘शिल्पविधान’ दो शब्दों से मिलकर बना है—शिल्प + विधान। ‘शिल्प’ का शब्दार्थ है—‘कला’ जबकि ‘विधान’ का अर्थ है—संयोजन।

‘सूर की जन्म-भूमि ‘साही’, सूर का साधना क्षेत्र, ‘गौघाट’ (रुनकता-आगरा) तथा उपासना-क्षेत्र परासोली (गोवर्धन-मथुरा) तीनों ही ब्रजभाषा क्षेत्र में स्थित हैं।’

सूरकाव्य में अलंकारों का सागर है, कोई भी गोताखोर चाहे जितने अलंकार निकाल ले फिर भी ये अलंकार सायास नहीं आये वरन् पूर्णतया स्वाभाविक और भाव-सबलता के सहायक रूप में आये हैं।

समस्त सूरकाव्य प्रबन्धात्मक मुक्तक है। तात्पर्य यह है कि इसमें प्रबन्ध की एक हल्की योजना-रेखा है किन्तु सभी पद अपने में स्वतन्त्र भी हैं।

5.3 शब्दकोश (Keywords)

1. भाभिनि: स्त्रियां, गोपियां
2. पानि: हाथ

5.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'सूरदास ने अपने काव्य में चमत्कारपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है'—स्पष्ट कीजिए।
2. 'सूर-काव्य में अलंकारों का सागर है' विश्लेषण कीजिए।
3. सूरसागर के शिल्प-विधान को अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर-स्वमूल्यांकन (Answer-Self Assessment)

- | | | | |
|--------------|-------------|-----------|--------|
| 1. काव्य रूप | 2. ब्रजभाषा | 3. पूर्वी | 4. (अ) |
| 5. (अ) | 6. (अ) | | |

5.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. सूरसागर—सूरदास कृत।
2. सूर की काव्य कला— गौतम मनमोहन, भारतीय मन्दिर।
3. सूरदास के पद—गुप्ता संजय, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली।

इकाई 6

नोट

तुलसीदास का काव्यात्मक योगदान**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

6.1 तुलसीदास की लेखन कुशलता

6.2 तुलसीदास का काव्यात्मक योगदान

6.3 सारांश (Summary)

6.4 शब्दकोश (Keywords)

6.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

6.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- तुलसीदास की लेखन कुशलता समझने में।
- तुलसीदास के काव्यात्मक योगदान को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी काव्य-गगन के सर्वाधिक दैदीप्यमान नक्षत्र हैं। उनकी प्रतिभा और पाण्डित्य का प्रभाव देश-काल की सीमा का अतिक्रमण का आज सर्वकालिक और सार्वभौम होकर सर्वत्र व्याप्त हो गया है। उनकी काव्यकृतियाँ अपनी प्रभूत भावसामग्री, अनुपम अभिव्यक्ति पद्धति, समृद्ध भाषाशैली, प्रचुर कल्पना-सृष्टि, अद्भुत वस्तुविन्यास और उत्कृष्ट कला-कौशल के कारण हिन्दी काव्य में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती हैं।

6.1 तुलसीदास की लेखन कुशलता

तुलसी मूलतः भक्त और संत कोटि के साधक थे। काव्य-रचना के मूल में भी उनकी आत्मोद्धार की प्रेरणा ही प्रधान है। इस प्रकार कविता उनका साधन है और साध्य-रामभक्ति। इस साधन को तुलसी ने इतना पूर्ण और समर्थ बना दिया है कि भक्ति और साहित्य के क्षेत्र में वे अद्वितीय बन गए हैं।

अपनी रचना में तुलसी ने प्रायः सभी रसों-भावों का वर्णन किया है अपने भावों की विशद व्यंजना के लिए उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा आदि सहज अलंकारों को उनके नैसर्गिक रूप में ही ग्रहण किया है। तुलसी के काव्य में उपमा और उत्प्रेक्षा का सहज-समीचीन प्रयोग दर्शनीय है—

सोभित छोट छटा निज ते तुलसी प्रभु सौहैं महाछवि छूटी।

मानौ मरक्कत सैल विसाल में फैलि चली वर वीर बहुटी ॥

गोस्वामी जी ने भावों की उत्कर्ष-व्यंजना में, वस्तुओं का अनुभव तीव्र करने में तथा गुण-क्रिया आदि की अनुभूति को व्यापकता देने में सहायक रूप में भी अलंकारों का यथास्थान प्रयोग किया है।



क्या आप जानते हैं अवधी और ब्रजभाषा पर तुलसीदास का पूर्ण अधिकार उनकी रचनाओं में स्पष्ट झलकता है।

भाषा और शैली की दृष्टि से भी तुलसी अप्रतिम हैं। अवधी और ब्रजभाषा दोनों पर समर्थ अधिकार उनकी रचनाओं से स्पष्ट है। विनम्रतावश उन्होंने अपनी भाषा को 'गँवारू' अवश्य कहा है परन्तु वास्तविकता यह है कि अवधी भाषा का जैसा प्रांजल, परिमार्जित और प्रवाहपूर्ण प्रयोग उन्होंने किया है, वैसा उनके पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती किसी कवि द्वारा संभव नहीं हुआ है। ब्रजभाषा के शब्दों का नैसर्गिक प्रयोग भी उन्हें सिद्ध था। उनकी सहज ब्रजभाषा देखकर उनके अवधवासी और काशीवासी होने में आश्चर्य होता है। ब्रजभाषा के सहज प्रयोग का एक उदाहरण दर्शनीय है—

राम सों बड़ो है कौन मो सों कौन छोटी।

राम सों खरो है कौन मो सों कौन खोटो॥

तुलसी ने शब्द-शक्तियों का भी साधिकार और समीचीन प्रयोग किया है। अभिधा का सुन्दर प्रयोग तो सर्वत्र हुआ ही है, लक्षणा और व्यंजना का भी सहज प्रयोग हुआ है—

सुनि विलाप सुखहु दुःख लागा। धीरज हू कर धीरज भागा।

यहाँ लक्षणा का और—

सेवत तोहि सुलभ फल चारि। वरदायिनि त्रिपुरारि पियारी।

में व्यंजना के प्रयोग से भावाभिव्यक्ति और विषय-विकास को सहयोग मिला है।

भावानुरूप नैसर्गिक छवि को छन्दों में समा देने में प्राप्त सफलता में गोस्वामी जी छन्दविधायक कवि सिद्ध होते हैं। 'मानस' के सोपानों के प्रारम्भ और अंत में तुलसी ने विविध वृत्तों में संस्कृत-श्लोकों का प्रयोग किया है। शेष ग्रंथ की रचना चौपाई और दोहे छन्दों में हुई है। कहीं-कहीं सोरठे का भी प्रयोग हुआ है। दोहों और चौपाइयों के बीच कहीं-कहीं हरिगीतिका छन्द की छटा भी देखने को मिल जाती है। 'कवितावली' में सवैया, मनहरण, घनाक्षरी, छप्पय और झूलना आदि छन्दों का तथा 'वैराग्यसन्दीपनी' में दोहा, सोरठा और चौपाई का प्रयोग हुआ है। कवि के विषयोपयुक्त छन्दों के सफल प्रयोग को देखकर इन छन्दों पर उसके अधिकार का सहज ज्ञान हो जाता है।

इस प्रकार तुलसी की लेखन कुशलता सचमुच की अप्रतिम और स्पृहणीय है। हरिऔध की यह उक्ति सर्वथा उपयुक्त ही है—

कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।



नोट्स तुलसीदास मूलतः भक्त और सन्त कवि थे उनकी काव्य रचना में आत्मोद्धार की प्रेरणा झलकती है।

6.2 तुलसीदास का काव्यात्मक योगदान

तुलसी मुख्य रूप से प्रबंधकाव्य-प्रणेता महाकवि हैं, परन्तु उनकी प्रतिभा का क्षेत्र सीमित नहीं है। काव्य के प्रसाधन और समस्य आवश्यक उपकरण जुटाने-सँवारने में उन्हें अपूर्व सफलता मिली है। प्रबंधकाव्य की मूलभूति कथा या वस्तु है। कथा का यथोचित विन्यास कवि की सफलता का निर्णायक तत्त्व होता है। महाकाव्य की व्यापक परिभाषा के अन्तर्गत अन्य तत्त्व हैं—चरित्र-चित्रण, रस-निरूपण, प्रकृति-वर्णन, मर्यादा स्थापन, लोक-संरक्षण, आद्योपान्त आकर्षण। तुलसी के 'मानस' में इन सभी तत्त्वों की परिपूर्णता मिलती है।

नोट

कथा-कौशल की दृष्टि से 'रामचरितमानस' इतना पुष्ट है कि उसका प्रचार-प्रसार उसके मूलाधार ग्रंथों से भी अधिक है। इस ग्रंथ में कवि का ध्यान मुख्य रूप से राम पर रहा है और उसी के आश्रय से रस की पुष्टि हुई है। तुलसी के 'मानस' की कथावस्तु इतनी सुसज्जित और सन्तुलित रही है कि वह राम-महिमा के विस्तार के साथ जन साधारण का अतुलनीय मनोरंजन करने में अपार आकर्षण जुटाने में तथा अमित कल्याण-साधन करने में समर्थ हुई है।

तुलसी मूलतः भक्त थे। गंभीर चिन्तक एवं प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी उनका वास्तविक रूप भक्त का था। उनकी भक्ति दास-भाव की थी, जिसमें अनन्य अनुराग होते हुए भी स्वामी के प्रति संभ्रम का भाव था। श्रद्धातत्त्व की अनिवार्य स्थिति को बनाए रखने के कारण तुलसी की रामभक्ति में सात्त्विकता बनी रही, कलुषता नहीं आने पायी भक्त के रूप में भी उनका उल्लेखनीय योगदान समन्वय-भावना और उदारता है। भक्ति को गौरव देते हुए भी उन्होंने स्वातन्त्र्योत्तरकाल में आकर तुलसी-विषयक नई-नई सामग्री प्रकाश में आयी, नई-नई स्थापनायें हुईं। यहाँ तक कि उनको 'हिन्दू समाज के पथभ्रष्टक' जैसे नाम दिए गए। कहना न होगा कि दोनों ही पक्ष 'अतिकर और एकांगी' हैं। सत्य तथ्य को पहचानने, सामान्य पाठक की शंकाओं-जिज्ञासाओं का समाधान करने, तटस्थ-निर्लिप्त होकर निष्कर्ष स्थापित करने तथा उससे अधिक वास्तविकता को स्थापित करने के लिए 'तुलसी और उनके साहित्य' का निष्पक्ष मूल्यांकन आवश्यक है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. गोस्वामी जी की कविता है और रामभक्ति है।
2. तुलसीदास जी ने विनम्रतावश अपनी भाषा को कहा है।
3. तुलसीदास की रचना में दोहों और चौपाइयों के बीच कहीं-कहीं की छटा भी देखने को मिल जाती है।
4. तुलसीदास मुख्य रूप से प्रणेता महाकवि हैं।
5. गंभीर चिंतक और प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी तुलसीदास का वास्तविक रूप का था।

6.3 सारांश (Summary)

तुलसी मूलतः भक्त और संत कोटि के साधक थे। काव्य-रचना के मूल में भी उनकी आत्मोद्धार की प्रेरणा ही प्रधान है। तुलसी मुख्य रूप से प्रबंधकाव्य-प्रणेता महाकवि हैं।

गोस्वामी जी ने भावों की उत्कर्ष-व्यंजना में, वस्तुओं का अनुभव तीव्र करने में तथा गुण-क्रिया आदि की अनुभूति को व्यापकता देने में सहायक रूप में भी अलंकारों का यथास्थान प्रयोग किया है।

भाषा और शैली की दृष्टि से भी तुलसी अप्रतिम हैं। अवधी और ब्रजभाषा दोनों पर समर्थ अधिकार उनकी रचनाओं से स्पष्ट है।

भावानुरूप नैसर्गिक छवि को छन्दों में समाहित कर देने में प्राप्त सफलता से गोस्वामी जी छन्दविधायक कवि सिद्ध होते हैं।

6.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **त्रिपुरारि:** शिव, भगवान शंकर
2. **आत्मोद्धार:** अपने प्रयास से अपना उद्धार करना
3. **नैसर्गिक:** प्राकृतिक, स्वाभाविक

6.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'तुलसीदास प्रबन्धकाव्य-प्रणेता महाकवि हैं' स्पष्ट करें।
2. तुलसीदास की भाषा-शैली पर टिप्पणी करें।
2. तुलसीदास के काव्यात्मक योगदान का वर्णन करें।

उत्तर-स्वमूल्यांकन (Answer-Self Assessment)

1. साधन, साध्य
2. गँवारू
3. हरिगीतिका छन्द
4. प्रबंधकाव्य
5. भक्त

6.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



- पुस्तकें
1. रामचरितमानस-साहित्यिक मूल्यांकन-पाण्डेय सुधाकर, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली।
 2. गोस्वामी तुलसीदास-मीना मनिशिखा, प्रभात प्रकाशन।
 3. तुलसी दास-शिवसरन राम, एस.राम, वेदाम बुक्स।

इकाई 7

नोट

रामचरितमानस उत्तरकाण्ड दोहा-सप्रसंग व्याख्या**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

7.1 रामचरितमानस उत्तरकाण्ड दोहा-सप्रसंग व्याख्या

7.2 सारांश (Summary)

7.3 शब्दकोश (Keywords)

7.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

7.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- रामचरितमानस के दोहों का अर्थ जानने में।
- रामचरितमानस की व्याख्या करने में।
- तुलसीदास की काव्य विशेषताओं को समझने में।
- रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड की कथा-वस्तु को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

महाकवि तुलसीदास एक उत्कृष्ट कवि ही नहीं, महान लोकनायक और तत्कालीन समाज के दिशा-निर्देशक भी थे। इनके द्वारा रचित महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस' भाषा, भाव उद्देश्य, कथावस्तु, चरित्र-चित्रण तथा संवाद की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य का एक अद्भुत ग्रन्थ है। इसमें तुलसी के कवि, भक्त एवं लोकनायक रूप का चरम उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। 'श्रीरामचरितमानस' में तुलसीदास ने व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य, राजा, प्रशासन, मित्रता, दाम्पत्य एवं भ्रातृत्व आदि का जो आदर्श प्रस्तुत किया है, वह सम्पूर्ण विश्व के मानव समाज का पथ-प्रदर्शन करता रहा है। 'विनयपत्रिका' ग्रन्थ में ईश्वर के प्रति इनके भक्त-हृदय का समर्पण दृष्टिगोचर होता है। इसमें एक भक्त के रूप में तुलसी ईश्वर के प्रति दैन्यभाव से अपनी व्यथा-कथा कहते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास की काव्य-प्रतिभा का सबसे विशिष्ट पक्ष यह है कि ये समन्वयवादी थे। उन्होंने 'श्री रामचरितमानस' में राम को शिव का और शिव को राम का भक्त प्रदर्शित कर वैष्णव एवं शैव सम्प्रदायों में समन्वय के भाव को अभिव्यक्त किया। निषाद एवं शबरी के प्रति राम के व्यवहार का चित्रण कर समाज की जातिवाद पर आधारित भावना की निस्सारता (महत्त्वहीनता) को प्रकट किया और ज्ञान एवं भक्ति में समन्वय स्थापित किया।

7.1 रामचरितमानस उत्तरकाण्ड दोहा-सप्रसंग व्याख्या

तुलसीदास विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न तथा लोकहित एवं समन्वय भाव से युक्त महाकवि थे। भाव-चित्रण, चरित्र-चित्रण एवं लोकहितकारी आदर्श के चित्रण की दृष्टि से इनकी काव्यात्मक प्रतिभा का उदाहरण सम्पूर्ण विश्व-साहित्य में भी मिलना दुर्लभ है।

नोट

‘श्रीरामचरितमानस’, ‘विनयपत्रिका’, ‘कवितावली’, ‘गीतावली’, ‘श्रीकृष्णगीतावली’, ‘दोहावली’, ‘जानकी-मंगल’, ‘पार्वती-मंगल’, ‘वैराग्य-सन्दीपनी’ तथा ‘बरवै-रामायण’ आदि।

दोहा— रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।

जहाँ तहाँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग ॥1॥

शब्दार्थ—अवधि = सीमा, मीआद। आरत = आर्त, व्याकुल। कृस = दुर्बल।

व्याख्या—श्रीराम के चौदह वर्ष के वनवास की अवधि का अब एक दिन ही शेष रह गया है। अतः अयोध्यावासी स्त्री-पुरुष अत्यंत व्याकुल हैं और श्रीराम के वियोग में उनका शरीर दुर्बल हो गया है। वे जहाँ-तहाँ एकत्र होकर चिंतामग्न हैं।

विशेष—1. नगरवासी यही सोचते हैं कि आज श्रीराम के वनवास की अवधि पूर्ण होने का अंतिम दिन है, अतः आज उन्हें वापस आ जाना चाहिए।

2. चौदह वर्ष वनवास की अवधि कब पूर्ण हुई थी, इस पर विद्वानों में मतभेद है। एक मत से अवधि चैत्र मास में पूर्ण हुई थी। वाल्मीकि के अनुसार श्रीराम ने चतुर्थी को किष्किंधा में रहकर पंचमी को वहाँ से प्रस्थान किया था और चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होने पर पंचमी तिथि को भारद्वाज आश्रम में पहुँचे थे—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चभ्यां लक्ष्मणाग्रजः।

भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम् ॥(युद्धकाण्ड, 124वां सर्ग)

अध्यात्मरामायण के अनुसार भी 14वां वर्ष पूर्ण होने पर पंचमी तिथि को भारद्वाज मुनि का दर्शन कर उन्हें भाई सहित प्रणाम किया—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चभ्यां रघुनन्दनः।

भरद्वाजं मुनिं दृष्ट्वा ववन्दे सानुजः प्रभुः ॥ (युद्धकाण्ड, चतुर्दश सर्ग)

3. वाल्मीकि जी वनवास का प्रारंभ राम के जन्मदिन से ही मानते हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि यदि चौदह वर्ष चैत्र में ही उसी तिथि पर पूर्ण न होते हो वे अंत में मास का नाम अवश्य देते, क्योंकि यह चरित उनके समय का है।

दोहा— सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर।

प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहूँ फेर ॥2॥

शब्दार्थ—आगवन = आगमन, आना। रम्य = सुन्दर। फेर = दिशा, ओर।

व्याख्या—सभी लोगों को शुभ शकुन की अनुभूति हो रही है, सभी का मन प्रसन्न है (प्रसन्नता का भाव कार्य सिद्धि का सूचक होता है), उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ये शुभ शकुन प्रभु श्रीराम के आगमन के सूचक हैं। पूरा नगर सुंदर दिखाई पड़ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह भी प्रभु के आगमन का सूचक है। श्रीराम के अयोध्या से चले जाने के पश्चात् पूरा नगर भयानक प्रतीत हो रहा था—

‘लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अंधियारी॥’ (अयोध्याकाण्ड, 83/5)

अब श्रीराम के आगमन को जानकर मानों अवध रमणीक हो गया है।

अलंकार— दूसरे चरण में उत्प्रेक्षा।

दोहा— कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ।

आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ ॥3॥

शब्दार्थ—श्री = सीता जी। जुत (युक्त) = साथ।

व्याख्या—श्री कौसल्यादि सभी माताओं के मन में ऐसा आनंद हो रहा है कि अब कोई यह कहना ही चाहता है कि श्रीराम जी और सीता जी लक्ष्मण के साथ आ गए।

विशेष—आयउ प्रभु—यह संदेश कहने वाले के वचन हैं, कौसल्यादि के नहीं, क्योंकि उनके मन में श्रीराम के प्रति वात्सल्य-भाव था।

तुलनीय—गीतावली में इस प्रसंग का अत्यंत मनोरम और शकुन-सूचक वर्णन है—

नोट

क्षेमकरी बलि बोलि सुबानी ।
कुसलक्षेम सियराम लषन कब ऐहैं, अंब! अवध रजधानी ॥
ससिमुख कुंकुम बरनि सुलोचनि मोचनि सोचनि बेद बखानी ।
देवि दया करि देहि दरसफल जोरि पानि बिनवहिं सब रानी ॥
सुनि सनेहमय बचन निकट है मंजुल मंडल कै मँडरानी ।
सुभ मंगल आनंद गगन धुनि अकनि उर जरनि जुड़ानी ॥
फरकन लगे सुअंग बिदिस दिसि मन प्रसन्न दुख दसा सिरानी ।
करहिं प्रनाम सप्रेम पुलकि तनु मानि बिबिध बलि सगुन सयानी ॥

दोहा- भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार ।

जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार ॥4॥

शब्दार्थ-भुज = भुजा, बाँह ।

व्याख्या-भरत जी का दाहिना नेत्र और दक्षिण भुजा बारंबार फड़कते हैं। इसे शुभ शकुन समझकर उनके मन में अपार हर्ष हुआ और वे विचार करने लगे ।

विशेष-1. पुरुष के दाहिने अंगों का फड़कना शुभ माना जाता है। यहाँ तीन प्रकार के शकुन दिखाए गए हैं-पुरवासियों को प्रत्यक्ष, माताओं को मानसिक और भरत को कायिक ।

2. श्रीराम के वनवास की अवधि पूर्ण होने में केवल डेढ़ पहर शेष रह गया है। इसी कारण सभी अवधवासी 'अति आरत' होकर चिंतामग्न हैं, किंतु इसी समय होने वाले शुभ शकुन उनमें आशा का संचार करते हैं ।

दोहा- राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत ।

बिप्र रूप धरि पवन सुत आइ गयउ जनु पोत ॥1(क)॥

शब्दार्थ-मगन = डूबना । पोत = जहाज या नौका ।

व्याख्या-इस प्रकार श्रीराम के विरह रूपी समुद्र में भरत का मन डूब रहा था। उसी समय बिप्र रूप में हनुमान जी आ गए, मानों डूबते व्यक्ति को सहारा देने के लिए जहाज पहुँच गया हो ।

अलंकार-पहली पंक्ति-रूपक, दूसरी पंक्ति-उत्प्रेक्षा ।

दोहा- बैठे देखि कुशासन जटा मुकुट कृस गात ।

राम राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जलजात ॥1(ख)॥

शब्दार्थ-कृस (कृश) = दुर्बल । गात = शरीर । स्त्रवत = प्रेमाश्रुप्रवाह । जलजात = कमल ।

व्याख्या-हनुमान ने देखा कि भरत जी कुशासन पर बैठे हैं, सिर पर जटाओं का मुकुट है, श्रीराम के वियोग में उनका शरीर दुर्बल हो गया है। वह निरंतर 'राम राम' का कर जप रहे हैं और उनके कमल के समान नेत्रों से अश्रुप्रवाह हो रहा है ।

विशेष-श्रीराम वन में कुशासन पर ही बैठते थे, सिर पर जटाओं का मुकुट था। भरत की भी वही स्थिति है, केवल एक अंतर है-श्रीराम के वियोग में उनका शरीर सूख गया है ।

अलंकार-स्त्रवत नयन जलजात-परिणाम ।

तुलनीय-1. वाल्मीकि रामायण में भी भरत की दशा का इसी प्रकार वर्णन मिलता है। हनुमान ने देखा कि-

ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनं ।

जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्षितम् ॥

फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम् ।

समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम् ॥ (युद्धकाण्ड, 125वां सर्ग)

नोट

2. अध्यात्मरामायण के अनुसार भी हनुमान ने अयोध्या से एक कोस की दूरी पर नन्दिग्राम में इसी रूप में भरत को बैठे हुए देखा—

क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीर कृष्णाजिनाम्बरम् ।

ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥

मलपङ्कविदिग्धाङ्गं जटिलं वल्कलाम्बरम् ।

फलमूलकृताहारं रामचिन्तापरायणम् ॥ (युद्धकाण्ड, चतुर्दश सर्ग)

दोहा— राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात ।

पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदयँ समात ॥2(क)॥

सोरठा— भरत चरन सिरु नाइ तुरित गयउ कपि राम पहिं ।

कही कुसल सब जाइ हरिषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि॥2(ख)॥

शब्दार्थ—जान (सं. यान) = पुष्पक विमान ।

व्याख्या—हनुमान ने कहा कि हे तात! तुम श्रीराम को प्राणों के समान प्रिय हो। मेरा वचन पूर्णतः सत्य है। हनुमान के ऐसे उद्गार सुनकर भरत के हृदय में हर्ष समा नहीं रहा है। वह प्रेम तथा कृतज्ञता से वशीभूत होकर हनुमान का पुनः पुनः आलिंगन करते हैं।

तत्पश्चात् हनुमान भरत के चरणों में प्रणाम करके तत्काल श्रीराम के पास चले गए। वहाँ जाकर उन्होंने भरत का समग्र कुशल वृत्तांत निवेदित किया, जिसे सुनकर प्रभु राम ने प्रसन्न होकर पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया।

दोहा— हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत ।

चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत ॥3(क)॥

बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन विमान ।

देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान ॥3(ख)॥

शब्दार्थ—परिजन = कुटुंबीजन। भूसुर = ब्राह्मण। बृंद = समूह। कृपानिकेत = दया के धाम।

व्याख्या—गुरु वशिष्ठ, कुटुम्बीजन, अनुज (शत्रुघ्न) तथा ब्राह्मण-ऋषि वृन्द आदि परम प्रसन्न हैं। उन सबके साथ अत्यंत प्रेमपूर्वक श्रीभरत जी दयानिधि प्रभु राम के स्वागत के लिए चले।

बहुत-सी स्त्रियाँ जो बाहर निकलने में संकोच करती थीं, वे महलों की अटारियों पर चढ़कर आकाश में विमान को देख रही हैं। जब उन्हें विमान दिखाई दिया तो हर्षित होकर मधुर स्वर में मंगलगीत गाने लगीं। स्त्रियाँ अटारियों पर हैं, अतः उनको विमान पहले दिखाई पड़ा।

दोहा— राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान ।

बढ़यो कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान ॥3(ग)॥

शब्दार्थ—राका ससि = पूर्णिमा का चंद्रमा। सिंधु = सागर। तरंग = लहर।

व्याख्या—श्रीराम पूर्णिमा के चंद्र हैं और अयोध्या समुद्र है। अयोध्या रूपी सागर श्रीराम रूपी चंद्रमा को देखकर हर्षित हुआ। (पूर्णिमा तिथि को समुद्र में ज्वार-भाटा आता है, तब उसमें ऊँची-ऊँची तरंगें उठती हैं)। यहाँ नगर की स्त्रियाँ तरंग के समान हैं, वे मधुर गीत गा रही हैं, जिससे प्रतीत होता है कि मानों समुद्र ही कोलाहल (शब्द) करता हुआ बढ़ रहा है।

विशेष—1. चंद्रमा की उत्पत्ति सिंधु से हुई थी और श्रीराम अयोध्या में प्रकट हुए थे। अतः श्रीराम को चंद्रमा कहा गया है।

2. पूर्णिमा चौदह दिनों के बाद आती है और श्रीराम चौदह वर्षों के बाद आ रहे हैं।

3. चंद्रमा प्राची (पूर्व) दिशा में उदित होता है। यहाँ व्यंजना यह है कि श्रीराम भी अयोध्या की पूर्व दिशा में आ गए।

नोट

अलंकार-1. पहली पंक्ति - समअभेद रूपक

2. जनु नारि तरंग समान - वस्तुल्लेख

दोहा- आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान ।

नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान ॥4(क)॥

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु ।

प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु ॥4(ख)॥

व्याख्या—जब दया के सागर भगवान राम ने देखा कि अवधवासी उनका स्वागत करने के लिए आ रहे हैं, तब उन्होंने नगर के समीप ही पुष्पक विमान को भूमि पर उतरने की प्रेरणा (आज्ञा) दी। उनकी आज्ञानुसार विमान भूमि पर आ गया।

पुष्पक यान से उतरकर प्रभु ने उससे कहा कि अब तुम कुबेर के पास जाओ। श्रीराम की प्रेरणा (आज्ञा) से वह अपने स्वामी कुबेर के पास चला। उस समय उसे हर्ष तथा वियोगजन्य दुःख, दोनों का अनुभव हो रहा था।



क्या आप जानते हैं

चंद्रमा की उत्पत्ति सिंधु से हुई थी और श्रीराम अयोध्या में प्रकट हुए थे। अतः श्रीराम को चंद्रमा कहा गया है।

विशेष— 1. श्रीराम ने पुष्पक विमान विभीषण को वापस नहीं किया, उसे कुबेर के पास भेज दिया। वस्तुतः यह यान कुबेर का ही था, जिसे रावण छीन लाया था। अतः नियमतः उस पर कुबेर का ही अधिकार था।

2. हरषु बिरहु अति ताहु—विमान बहुत समय के अंतराल के बाद अपने स्वामी के पास जा रहा है, अतः उसे हर्ष हुआ। किंतु श्रीराम से उसका वियोग हो रहा है, अतः उसे दुःख भी हुआ।

अलंकार—यहाँ प्रथम समुच्चय अलंकार है, क्योंकि विमान को हर्ष व शोक एक ही साथ हुए हैं।

तुलनीय—अध्यात्मरामायण के अनुसार भी राम के आदेश से ही विमान कुबेर के पास गया था—

अब्रवीत्पुष्पकं देवो गच्छ वैश्रवणं वह ।

अनुगच्छानुजानामि कुबेरं धनपालकम् ॥

(युद्धकाण्ड, चतुर्दश सर्ग)

दोहा- पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाइ ।

लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ॥5॥

व्याख्या—भरत जी से भेंट करने के पश्चात् श्रीराम ने प्रसन्नतापूर्वक शत्रुघ्न को हृदय से लगाकर आलिंगन किया। जब श्रीराम, भरत और शत्रुघ्न दोनों से मिल चुके, तब लक्ष्मण और भरत दोनों भाई प्रेमपूर्वक मिले।

दोहा- भेटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि ।

रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि ॥6(क)॥

लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ ।

कैकई कहँ पुनि-पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ ॥6(ख)॥

शब्दार्थ—तनय = पुत्र। रति = प्रेम। छोभु (सं. क्षोभ) = व्याकुलता, खेद।

व्याख्या—सुमित्रा माता लक्ष्मण को राम का प्रेमी समझकर मिलीं, केवल पुत्र समझकर नहीं। कैकेयी श्रीराम से मिलीं, किंतु भेंट करते समय उनके हृदय में बहुत संकोच हो रहा है। वह सोचती हैं कि मेरे कारण ही इनको वनवास का दुःख झेलना पड़ा। पुनः लक्ष्मण सभी माताओं से मिले और उनका आशीर्वाद प्राप्त करके प्रसन्नता का अनुभव किया। वह कैकेयी से बार-बार मिलते हैं, किंतु उनके मन का खेद अथवा व्याकुलता समाप्त नहीं होती है।

विशेष—1. सुमित्रा ने लक्ष्मण को रामचरणानुरक्त समझकर भेंट किया। भाव यह है कि उनमें पुत्र के प्रति ममत्व की अपेक्षा उनके राम-भक्त होने के कारण अधिक प्रसन्नता है।

नोट

2. मन कर छोभु न जाइ—यह पंक्ति दोनों के लिए हो सकती है। कैकेई के मन का क्षोभ नहीं जाता है अथवा लक्ष्मण के मन का क्षोभ नहीं जाता है।

लक्ष्मण के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि वह कैकेयी से बार-बार मिलते हैं, किंतु यह स्मरण करके कि उनके कारण ही श्रीराम को वन जाना पड़ा, उनके दुःख का शमन नहीं होता है। लक्ष्मण ने कैकेयी को कटुवचन कहा था, अतः अपने मन का क्षोभ मिटाने के लिए वह उनसे बार-बार मिलते हैं।

कैकेयी को राम को वनवास देने का क्षोभ था, अतः उनका क्षोभ मिटाने के लिए लक्ष्मण उनसे बार-बार मिलते हैं।

3. यहाँ लक्ष्मण के चरित्र का अत्यंत सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रांकन हुआ है। महाकाव्य में किसी भी पात्र के चरित्र-निरूपण में यह ध्यान रखना पड़ता है कि उसमें जिस भाव का उद्रेक दिखाया जाए, क्रमशः उसका विकास, ह्रास और फिर शमन भी दिखाया जाए। लक्ष्मण में कैकेयी के प्रति शृंगवेरपुर में जिस भाव का उद्रेक होता है, चित्रकूट में उसका उत्कर्ष दिखाई पड़ता है और उत्तरकाण्ड में शमन।

दोहा— लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मातु।

परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु ॥7॥

व्याख्या—इसके पूर्व कहा गया था कि माता कौसल्या श्रीराम को बार-बार देखती है; किंतु किसी को यह संदेह न हो कि माता का ममत्व केवल राम के प्रति है, अतः कवि पुनः स्पष्ट करता है कि माता कौसल्या लक्ष्मण और सीता सहित श्रीराम को बार-बार देखती हैं और प्रत्येक बार उनका शरीर प्रेम से रोमांचित हो जाता है तथा मन परमानंद में डूबा हुआ है।

दोहा— नारि कुमुदिनीं अवध सर रघुपति बिरह दिनेस।

अस्त भएँ बिगसत भई निरखि राम राकेस ॥9(क)॥

होहिं सगुन सुभ बिबिधि बिधि बाजहिं गगन निसान।

पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान ॥9(ख)॥

शब्दार्थ—सर = तालाब। दिनेस = सूर्य। राकेस = पूर्ण चंद्र। निसान = नगाड़ा। सनाथ = कृतार्थ।

व्याख्या—अयोध्या रूपी सरोवर की स्त्रियाँ रूपी कुमुदिनी श्रीराम के विरह रूपी सूर्य के अस्त होने पर श्रीराम रूपी पूर्ण चंद्र को देखकर विकसित (प्रसन्न) हो गई। इस समय अनेक प्रकार के मंगल सगुन हो रहे हैं, आकाश में देवता वृंद नगाड़े बजा रहे हैं। इस प्रकार नगर के स्त्री-पुरुषों को कृतार्थ करके प्रभु श्रीराम महल को चले।

विशेष—1. राजतिलक के समय देवता दुःखी थे, क्योंकि उन्हें चिंता थी कि यदि राम वन न गए तो राक्षसों का विनाश कैसे होगा? इसीलिए—‘तिन्हति सोहाव न अवध-बधावा।’ किंतु अब उनका कार्य संपन्न हो गया है, अतः वे प्रसन्न हैं और नगाड़े बजा रहे हैं।

2. श्रीराम के वन जाने पर पुरवासी अनाथ हो गए थे, अब उनके वापस आने पर वे फिर से ‘सनाथ’ हो गए हैं।

अलंकार—पहला दोहा—सांगरूपक।

दोहा— तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ।

रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ ॥10(क)॥

जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रब्य मगाइ।

हरष समेत बसिष्ट पद पुनि सिरु नायउ आइ ॥10(ख)॥

शब्दार्थ—बाजि = अश्व। सँवारे = सजाया। धावन = शीघ्रगामी व्यक्ति।

व्याख्या—तब वशिष्ठ मुनि ने सुमंत्र से राज्याभिषेक की सभी तैयारियाँ यथाशीघ्र संपन्न करने के लिए कहा। सुमंत्र प्रसन्नतापूर्वक चले और अनेक प्रकार के रथों, अश्वों और हाथियों को सजाया तथा यत्र-तत्र शीघ्रगामी व्यक्तियों को भेजकर राज्याभिषेक के अवसर पर प्रयुक्त होने वाले मांगलिक पदार्थों को मँगवाकर वापस आ गए और प्रसन्नतापूर्वक वशिष्ठ मुनि का अभिवादन किया।

नोट

दोहा- सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ।

दिव्य बसन बर भूपन अँग अँग सजे बनाइ ॥11(क)॥

राम बाम दिसि सोभति रमा रूप गुन खानि।

देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि॥11(ख)॥

शब्दार्थ—मज्जन = स्नान। बसन = वस्त्र। बर = श्रेष्ठ। रमा = लक्ष्मी; यहाँ तात्पर्य है—सीता।

व्याख्या—एक ओर श्रीराम, उनके अनुजों तथा सखाओं आदि को स्नानादि कराकर तैयार किया जा रहा है, उधर उसी समय माताओं (सासुओं) ने सीता जी को आदरपूर्वक स्नान कराया तथा दिव्य वस्त्र एवं श्रेष्ठ आभूषण उनके अंग-अंग में पहनाया। इस प्रकार पूर्ण शृंगार करके रूप और गुण की खान सीता जी श्रीराम के बायीं ओर सुशोभित हुई। यह देखकर सभी माताओं ने अपना जन्म कृतार्थ समझकर प्रसन्नता का अनुभव किया।

विशेष—सीता जी को सोलहों शृंगार कराए गए हैं और बारहों आभूषण पहनाए गए हैं। भारतीय परंपरा में 16 शृंगार और 12 आभूषण मान्य हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

1. सोलह शृंगार—अंगों में उबटन लगाना, स्नान करना, स्वच्छ वस्त्र धारण करना, केश-सज्जा करना, काजल लगाना, माँग सँवारना, सेंदुर लगाना, महावर देना, भाल पर तिलक लगाना, चिबुक पर तिल बनाना, मेहंदी लगाना, अरगजा आदि सुगंधित वस्तुओं का प्रयोग करना, आभूषण पहनना, पुष्प-माला धारण करना, पान खाना तथा मिस्सी लगाना।

2. बारह आभूषण—नूपुर, किंकिणी, चूड़ी, अँगूठी, कंकण, बिजायठ, हार, कंठश्री, बेसर, बिरिया, टीका, शीशफूल।

दोहा- सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनि बृंद।

चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद ॥11(ग)॥

शब्दार्थ—खगेस = पक्षिराज गरुड़। सुखकंद = 1. आनंद के मूल, 2. आनंद रूपी मेघ।

व्याख्या—काग भुशुण्डि कहते हैं—हे पक्षिराज! सुनिए। उस समय ब्रह्मा, शिव, मुनि वृंद तथा सभी देवता विमानों पर चढ़कर आनंद के मूल अथवा आनंद की वर्षा करने वाले श्रीराम का दर्शन करने आए।

दोहा- वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस।

बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस ॥12(क)॥

शब्दार्थ—खगेस = गरुड़। सारद = शारदा, सरस्वती। श्रुति = वेद।

व्याख्या—काग भुशुण्डि कहते हैं कि हे गरुड़! श्री राम-जानकी के सिंहासनारूढ़ होने की वह शोभा, वह समाज और वह आनंद मुझसे कहते नहीं बनता। उसका वर्णन सरस्वती, शेषनाग और वेद करते हैं, किन्तु वस्तुतः उस रस (आनंद) को केवल शिव जी ही जानते हैं। तात्पर्य यह है कि वह शोभा, समाज और आनंद अलौकिक थे, अप्राकृत थे।

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति।

दोहा- भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम।

बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्रीराम ॥12(ख)॥

प्रभु सर्वग्य कीन्ह अति आदर कृपानिधान।

लखेउ न काहूँ मरम कछु लगे करन गुन गान ॥12(ग)॥

शब्दार्थ—बंदी = चारण। मरम = मर्म, रहस्य।

व्याख्या—सभी देवताओं ने भिन्न-भिन्न प्रकार से श्रीराम की स्तुति की और अपने-अपने निवास को चले गए। तात्पर्य यह है कि इन्द्र, पितर, यक्षादि, महानाग, सिद्ध, किन्नर, मरुत, वसु आदि ने भिन्न-भिन्न प्रकार से स्तुति की है। तत्पश्चात् चारण के वेश में वेदगण श्रीराम के निकट आए। प्रभु श्रीराम सर्वज्ञ हैं, अतः वह वेदों को चारण वेश में भी पहचान गए तथा उनका स्वागत-सत्कार किया। इस रहस्य को वहाँ उपस्थित कोई व्यक्ति न जान सका। तब वेदों ने श्रीराम का गुणगान प्रारंभ किया।

नोट

विशेष—अध्यात्मरामायण में विभिन्न देवताओं द्वारा की गई स्तुति का विस्तृत विवरण मिलता है। वहाँ पितर, यक्ष, गंधर्व, महानाग, सिद्ध, किन्नर, मरुत, वसु, मुनि, गौ, गुह्यक, पक्षी, प्रजापति और अप्सराओं द्वारा श्रीराम की स्तुति का उल्लेख किया गया है। (युद्धकाण्ड, सर्ग 15, छंद सं. 65 से 74 तक)। तुलसीदास ने संक्षेप में ही इसका उल्लेख कर दिया है।

दोहा— सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्ह उदार।

अंतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार ॥13(क)॥

बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर।

बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर ॥13(ख)॥

शब्दार्थ—उदार = श्रेष्ठ, महान। आगार = लोक। बैनतेय = गरुड़।

व्याख्या—सभी लोगों के देखते-देखते वेदों ने श्रीराम की महान विनती की, फिर अंतर्धान (गायब) हो गए और ब्रह्मलोक चले गए। (ब्रह्मलोक ही वेदों का निवास-स्थान है)

काग भुशुण्डि कहते हैं कि हे विनता के पुत्र गरुड़ जी! सुनो। तत्पश्चात् जहाँ श्रीराम थे, वहाँ शिव जी आए और उनकी स्तुति की। उस समय उनकी वाणी प्रेमाधिक्य के कारण गद्गद थी और शरीर रोमांचित था।

विशेष—सामान्यतः वेद प्रकट होकर स्तुति नहीं करते। यहाँ वह सशरीर चारण रूप में आए और जब अंतर्धान हो गए तब लोगों ने जाना कि ये वेद थे।

दोहा— बार बार बार मागऊँ हरषि देहु श्रीरंग।

पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ॥14(क)॥

बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास।

तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास ॥14(ख)॥

शब्दार्थ—श्रीरंग = श्री जानकी जी का रंजन करने वाले अर्थात् पति। अनपायनी = जिसका कभी अपाय (वियोग) न हो, अर्थात् हृदय में सदा एक रस रहने वाली।

व्याख्या—शिव जी ने कहा कि हे जानकी पति! मैं बार-बार आपसे यही वरदान माँगता हूँ कि आप मुझे अपने चरण-कमलों में सदा एक रस रहने वाली भक्ति तथा सत्संग प्रदान करें। इस प्रकार शिव जी राम के गुणों का वर्णन करके प्रसन्नतापूर्वक अपने निवास कैलाश पर्वत पर चले गए। ('हरषि' शब्द में यह व्यंजना है कि उन्हें वरदान मिल गया)। तत्पश्चात् श्रीराम ने सभी वानरों को सभी प्रकार के सुखदायी निवास-स्थान दिलवाए।

दोहा— ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति।

जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति ॥15॥

व्याख्या—सभी वानर अलौकिक ब्रह्मानंद-मगन हैं। सभी के हृदयों में प्रभु श्रीराम के चरणों के प्रति प्रेम है। वे प्रभु-प्रेम में इतने अधिक आनंदमग्न हैं कि उन्हें पता ही नहीं चला कि कब छः मास बीत गए।

दोहा— अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।

सदा सर्वगत सर्वहित जानि करेहु अति प्रेम ॥16॥

व्याख्या—अब आप सभी लोग अपने घरों को जाइए और अटल नियम के साथ मेरी उपासना करते रहिए। मुझे सर्वव्यापी तथा सबका हितैषी समझकर मुझसे अत्यंत प्रेम करते रहना।

दोहा— जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ।

हियँ धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ ॥17(क)॥

तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि।

अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रस बोरि ॥17(ख)॥

व्याख्या—तत्पश्चात् श्रीराम ने जामवंत, नीलादि सभी को स्वयं वस्त्राभूषण पहनाए। सुग्रीव और विभीषण को निष्कण्टक राज्य दिया था, अतः भाइयों ने उनका सम्मान किया। अन्य लोगों को राज्य नहीं मिला था। अतः श्रीराम

ने उनके सम्मानार्थ स्वयं वस्त्राभूषण पहनाए। सभी वानरादि श्रीराम के रूप को हृदय में धारण करके उनके चरणों में प्रणाम करके विदा हो गए।

नोट

तत्पश्चात् अंगद ने उठकर प्रमाण करके सजल नेत्रों से हाथ जोड़कर अत्यंत विनम्र वाणी में, मानों प्रेमासक्त वाणी में कहा। अंगद के कथन में आर्त भाव की व्यंजना है।

दोहा— अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुना सीव।

प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव ॥18(क)॥

निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।

बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ॥18(ख)॥

शब्दार्थ—करुना सीव = करुणा की सीमा, अत्यंत कृपालु। बसन = वस्त्र।

व्याख्या—अंगद के विनम्र वचनों को सुनकर अत्यंत कृपालु श्रीराम ने सजल नेत्रों से उसे उठाकर छाती से लगा लिया तथा अपने वक्षस्थल की माला, वस्त्र तथा मणिजटित आभूषण अंगद को पहना दिए और अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर उसे विदा कर दिया।

विशेष—1. 'निज उर माला' देने में व्यंजना यह है कि मेरी दी हुई माला को पहनने वाले का कोई अहित नहीं हो सकता। उन्होंने सुग्रीव को माला पहनाई थी, बालि ने उसकी उपेक्षा की, अतः वह श्रीराम के द्वारा मारा गया। अब यदि सुग्रीव ने अंगद को दी हुई माला की उपेक्षा की तो वह भी मारा जाएगा।

2. बहु प्रकार समुझाइ—(क) तुम्हें सेवक रूप में रखने से अपयश होगा, क्योंकि तुम्हें किष्किंधा का युवराज बना चुके हैं। (ख) युवराज-पद दिया था, वह वचन भी खाली जाएगा। (ग) माता दुःखी होगी। (घ) अपने वस्त्र-आभूषण देकर यह प्रमाणित किया कि किष्किंधा की प्रजा अब समझ जाएगी कि राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी अंगद ही है, सुग्रीव के पुत्र नहीं हो सकते।

दोहा— कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि।

बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि ॥19(क)॥

अस कहि चलेउ बालिसुत फिरि आयउ हनुमंत।

तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत ॥19(ख)॥

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।

चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि ॥19(ग)॥

शब्दार्थ—सुरति = स्मृति। कुलिसहु = वज्र से भी (वज्र या हीरा सर्वाधिक कठोर तथा बहुमूल्य रत्न होता है)। कुसुमहु = पुष्प से भी। खगेस = गरुड़।

व्याख्या—अंगद ने कहा कि हे हनुमान! मैं तुमसे करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि जाते ही श्रीराम से मेरा प्रणाम निवेदित कीजिएगा तथा बार-बार मेरा स्मरण दिलाते रहिएगा। यहाँ व्यंजना यह है कि शायद कभी वह द्रवित होकर अपनी शरण में वापस बुला लें। ऐसा कहकर बालिपुत्र अंगद चल पड़ा और हनुमान श्रीराम के पास वापस आ गए। हनुमान ने आते ही श्रीराम से अंगद की प्रीति का उल्लेख किया, जिसे सुनकर श्रीराम भी स्नेह-मग्न हो गए।

काग भुशुण्डि कहते हैं कि हे गरुड़! श्रीराम का चित्त वज्र से भी अधिक कठोर और पुष्प से भी अधिक कोमल है। ऐसे अद्भुत चित्त को समझना किसके लिए संभव है? अर्थात् कोई भी व्यक्ति उनके चित्त की दशा को समझने में समर्थ नहीं है।

विशेष—श्रीराम बालि के लिए बहुत कठोर थे, उसका वध कर दिया, किंतु उसकी विनती सुनकर इतने द्रवित हुए कि उसे अमरत्व प्रदान करने की घोषणा कर दी। इसी प्रकार अंगद को वापस भेजने में कठोरता दिखाई, किंतु हनुमान द्वारा उसकी विनती सुनकर करुणा से द्रवित भी हो गए।

अलंकार—अंतिम दोहा—प्रतीप, व्याघात तथा विरोधाभास।

तुलनीय— वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।

लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ॥

दोहा— बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।

चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग ॥20॥

व्याख्या—सभी लोग वेदसम्मत वर्ण और आश्रम धर्म का पालन करते हैं तथा वेदमार्ग पर चलते हुए सदा सुखी रहते हैं। वे भय, शोक तथा रोग से मुक्त हैं।

विशेष—तुलसीदास निगमागम पद्धति के कट्टर अनुयायी थे। वर्ण और आश्रम व्यवस्था में उनका अटूट विश्वास था। वे मानते थे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वेदों द्वारा निर्धारित व्यवस्था का अनुसरण करने से ही सुखी रह सकते हैं तथा चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) का पालन भी अनिवार्य है।

दोहा— राम राज नभगेसे सुनुं सचराचर जग माहिं ।

काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं ॥21॥

शब्दार्थ—नभगेस = गरुड़। सचराचर = जड़-चेतन।

व्याख्या—काग भुशुण्डि कहते हैं कि हे गरुड़! सुनो! राम के राज्य में जड़-चेतन किसी भी प्राणी को काल, कर्म, स्वभाव (व्यसनादि) और गुणों से उत्पन्न दुःख व्याप्त नहीं होता है।

चौ.— भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ॥

भुअन अनेक रोम प्रति जासू । यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥

सो महिमा समुझत प्रभु केरी । यह बरनत हीनता घनेरी ॥

सोउ महिमा खेगस जिन्ह जानी । फिरि ऐहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी ॥

सोउ जाने कर फल यह लीला । कहहिं महा मुनिबर दमसीला ॥

शब्दार्थ—मेखला = करधनी। हीनता = तुच्छता। दमसीला = जितेन्द्रिय।

व्याख्या—जिस पृथ्वी के सातों समुद्र मेखला समान हैं अर्थात् जिसके चारों ओर सात समुद्र हैं, रघुवंशी अयोध्या-नरेश उसके ही सम्राट् हैं। तुलसीदास के अनुसार श्रीराम केवल अयोध्या के राजा नहीं हैं, अपितु समग्र पृथ्वी के सम्राट् हैं। समस्त पृथ्वी का नरेश होना भी उनकी प्रभुता का द्योतक नहीं है, क्योंकि उनके एक-एक रोम में अनेक ब्रह्मांड स्थित हैं। उनकी इस महिमा को समझ लेने पर, उन्हें केवल भूमंडल का सम्राट् बताना अत्यंत तुच्छता है। काग भुशुण्डि कहते हैं कि हे गरुड़! उनकी इस महिमा को जो जान लेता है वह प्रभु की सगुण लीला से प्रेम करने लगता है। उपर्युक्त महिमा को जानने का फल है—सगुण लीला में प्रीति। तुलसीदास कहते हैं कि यह मेरी ही मान्यता नहीं है अपितु जितेन्द्रिय महामुनि भी इसका उल्लेख करते हैं।

विशेष—1. सप्त दीप—जम्बू, प्लक्ष, शात्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर। 2. श्रीराम के रोम-रोम में अनेक ब्रह्मांड हैं, यह उनका ऐश्वर्य रूप है, सगुण लीला उनका माधुर्य रूप है। **अगस्त्य, याज्ञवल्क्य, नारद, सनकादि** इन्द्रियजित मुनिश्रेष्ठ उनके ऐश्वर्य रूप से परिचित हैं, फिर भी उनकी सगुण लीला का गान करते हैं। केवल ऐश्वर्य का ज्ञान होने से भव से निष्कृति संभव नहीं है। मुमुक्षु के लिए माधुर्य अवतारी लीला के प्रति प्रेम आवश्यक है।

दोहा— दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।

जीतहु मनहिं सुनिअ अस रामचंद्र के राज ॥22॥

व्याख्या—राजनीति के चार अंग माने गए हैं—साम, दान, दंड और भेद। राम के राज्य में कोई अपराधी नहीं था अतः किसी को दंड देने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। सामान्य जन भी दंड (डंडा) नहीं रखते थे, केवल साधुओं के हाथ में दंड (त्रिदंडी स्वामी आदि) अवश्य दिखाई पड़ता था। इसी प्रकार राम-राज्य में भेद नीति की भी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उनका कोई शत्रु ही नहीं था। भेद का स्वरूप नर्तक-नृत्य समाज में अवश्य दिखाई पड़ता था। विभिन्न वाद्यों की ध्वनियों में भेद रहता था तथा नृत्य-कला के भी अनेक भेद थे। उनके राज्य में किसी को जीतने की भी चर्चा नहीं सुनाई देती थी। केवल मन को जीतने (कामादि पर नियंत्रण रखने) की बात अवश्य होती थी। इस प्रकार राम-राज्य में केवल दो नीतियों—साम, दान का ही प्रयोग होता था।

अलंकार—परिसंख्या-लक्षण—जहाँ किसी वस्तु का निषेध करके पुनः उसकी उपस्थिति दिखाई जाए।

दोहा- बिधु महि पूर मयूखन्हि रवि तब जेतनेहि काज ।

नोट

मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज ॥23॥

शब्दार्थ-बिधु = चंद्रमा। मयूखन्हि = किरणों से। बारिद = मेघ।

व्याख्या-श्री रामचंद्र के राज्य में पृथ्वी चंद्रमा की रश्मियों से परिपूर्ण रहती है। सूर्य आवश्यकतानुसार ही ताप विकीर्ण करता है और मेघ माँगने पर जल प्रदान करते हैं।

दोहा- जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ ।

राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ ॥24॥

व्याख्या-जिनकी कृपा-कटाक्ष की आकांक्षा देवता करते रहते हैं, सीता जी उनकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करती हैं। उनकी दृष्टि सदैव पति पर ही रहती है। यद्यपि श्री (लक्ष्मी) कहीं स्थिर नहीं रहतीं, किंतु सीता जी अपनी इस चंचलावृत्ति को छोड़कर, अपने स्वभाव को छोड़कर सदैव श्रीराम के चरण-कमलों से प्रेम करती रहती हैं। अपने ऐश्वर्य-भाव को छिपाकर पति-सेवा में निरत रहती हैं।

दोहा- ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार ।

सोइ सच्चिदानंद घन कर नर चरित उदार ॥25॥

शब्दार्थ-गिरा = वाणी। गोतीत = इन्द्रियों से परे। पार=परे।

व्याख्या-जो ब्रह्म वाणी और इन्द्रियों से परे है; अजन्मा है; माया, मन गुणों (सत्, रज, तम) से परे है; सत् चित् और आनंद का समूह है; वही ब्रह्म उदार नर लीला कर रहा है।

विशेष-1. गोतीत-उसका कोई रूप नहीं है, गंध नहीं है, शब्द नहीं है, रस नहीं है, शरीर नहीं है, अतः वह क्रमशः नेत्रों, नासिका, कान, जिह्वा तथा स्पर्श द्वारा नहीं जाना जा सकता-

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।

(कठ-2/3/12)

2. गोस्वामी जी जब-जब नर-लीला का विस्तृत वर्णन करते हैं, तब-तब पाठकों को स्मरण दिला देते हैं कि श्रीराम सामान्य नर नहीं हैं, परब्रह्म ही नर-लीला कर रहा है।

दोहा- अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज ।

सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज ॥26॥

व्याख्या-जिस अयोध्या के श्रीराम स्वयं सम्राट् हैं, वहाँ के निवासियों के सुख सम्पत्ति और सामाजिक स्थिति का वर्णन सहस्रों शेष नाग भी नहीं कर सकते।

दोहा- चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ ।

राम चरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चोराइ ॥27॥

शब्दार्थ-चित्रसाला = रंग-बिरंगे सजावट का स्थान। चारु = सुंदर।

व्याख्या-प्रत्येक आवास में सुंदर चित्रशाला हैं, जिनमें श्रीराम का चरित्र लिखा गया है। उनकी सजावट इतनी सुंदर है, जिसे देखकर मुनियों का भी मन मुग्ध हो जाता है।

चौ.- सुमन बाटिका सबहिं लगाई । बिबिध भाँति करि जतन बनाई ॥

लता ललित बहु जाति सुहाई । फूलहिं सदा बसंत कि नाई ॥

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर । मारुत त्रिबिधि सदा बह सुंदर ॥

नाना खग बालकन्हि जिआए । बोलत मधुर उड़ात सुहाए ॥

शब्दार्थ-मधुकर = भ्रमर। मुखर = शब्द। मारुत = पवन। त्रिबिध = शीतल, मंद, सुगंध। खग = पक्षी। जिआए = जिलाया, पालन किया।

व्याख्या-सभी अवधवासियों ने सुंदर उपवन लगा रखा है। ये वाटिकाएँ बहुत प्रयत्नपूर्वक लगाई गई हैं। उनके साथ ही अनेक प्रकार की सुंदर लताएँ भी सुशोभित हैं, जो सदैव वसंत ऋतु के समान पुष्पित रहती हैं। उन पर भ्रमर मधुर शब्दों से गुंजार करते रहते हैं। सुंदर, शीतल, मंद, सुगंध प्रवाहित होता रहता है। बच्चों ने अनेक प्रकार के पक्षियों को पाल रखा है, जिनकी बोली बहुत ही मधुर है तथा वे उड़ते समय बहुत मनोहर प्रतीत होते हैं।

नोट

दोहा— रमानाथ जहाँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ ।

अनिमादिक सुख संपदा रही अवध सब छाइ ॥29॥

शब्दार्थ—रमानाथ = लक्ष्मीपति । अनिमादिक = अष्ट सिद्धियाँ—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व ।

व्याख्या—लक्ष्मीपति ही जिस नगर के राजा हों, उसकी महिमा का वर्णन कैसे किया जा सकता है? ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वहाँ अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ तथा समस्त प्रकार के सुख और वैभव छावनी डालकर बस गए हों ।

दोहा— एहि बिधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान ।

सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान ॥30॥

व्याख्या—इस प्रकार नगर के सभी स्त्री-पुरुष राम के गुणों का गान करते हैं । दयानिधि श्रीराम भी सभी लोगों पर सदैव प्रसन्न रहते हैं ।

दोहा— यह प्रताप रबि जाकेँ उर जब करइ प्रकास ।

पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास ॥31॥

व्याख्या—यह प्रताप रूपी सूर्य जिसके हृदय में जब प्रकाशित होता है, तब जिनका बाद में वर्णन किया गया (अर्थात् धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सुख, संतोष, विवेक, वैराग्य आदि उनकी वृद्धि होती है और जिनका वर्णन पहले किया गया । (अविद्या, पाप, काम, क्रोध, मत्सरादि) उनका विनाश हो जाता है ।

विशेष—यहाँ से राम-राज्य का पूर्व चरित समाप्त हो गया, अब आगे से उत्तरचरित का कथन होगा ।

अलंकार—सांगरूपक ।

दोहा— देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह ।

स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह ॥32॥

व्याख्या—श्रीराम ने जब सनकादि मुनियों को आते देखा तो प्रसन्नतापूर्वक उनको प्रणाम किया । फिर उनका स्वागत-सत्कार करके पीत-वस्त्र बैठने के लिए दिया ।

दोहा— संत संग अपवर्ग कर कामी भव कर पंथ ।

कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ ॥33॥

शब्दार्थ—अपवर्ग = मोक्ष । कोबिद = विद्वान् । श्रुति = वेद ।

व्याख्या—संतों का समागम मोक्ष-प्रदाता है और कामीजनों का संग सांसारिक प्रपंच की ओर ले जाता है । संतों, कवियों, विद्वानों, वेदों, पुराणों तथा उत्तम ग्रंथों का यही कथन है ।

अलंकार—शब्द प्रमाण ।

तुलनीय—बिनु सत्संग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग ।

मोह गए बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ॥

दोहा— परमानंद कृपायतन मनि परिपूरन काम ।

प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम ॥34॥

शब्दार्थ—कृपायतन = कृपा के धाम । अनपायनी = निश्चल, अविचल ।

व्याख्या—हे प्रभु! आप परमानंद स्वरूप हैं—‘आनंदो ब्रह्मोति व्याजानात्’ (तैत्ति.3/6), कृपा के आगार हैं तथा मन से पूर्ण काम हैं अर्थात् आप में कोई इच्छा-कामना नहीं है । अतः हे प्रभु! हम चारों भाइयों को अविचल प्रेमाभक्ति प्रदान कीजिए ।

दोहा— बार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ ।

ब्रह्म भवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ ॥35॥

व्याख्या—इस प्रकार श्रीराम की बार-बार स्तुति करके तथा मनोवांछित वरदान प्राप्त करके सनकादि चारों भाई श्रीराम को प्रणाम करके ब्रह्मलोक चले गए ।

दोहा- नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह ।

नोट

केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह ॥36॥

व्याख्या-भरत जी ने कहा कि हे स्वामी! मुझे न कोई संदेह है, न शोक है और न मोह है। हे कृपानिधि! यह केवल आपके ही अनुग्रह का प्रताप है।

विशेष-श्रीराम ने कह दिया था कि मुझमें और भरत में कोई अंतर नहीं है। भक्त और भगवान् की इस अभेदता के कारण भरत भी पूर्ण ज्ञानी हैं। अतः उनमें शोक-मोहादि कुछ भी नहीं है-‘तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।’ (यजुर्वेदसंहिता, 40/3)

दोहा- ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड ।

अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड ॥37॥

शब्दार्थ-जग बल्लभ = संसार को प्रिय। श्रीखंड = चंदन।

व्याख्या-परिणामस्वरूप चंदन को देवताओं के सिर पर चढ़ाया जाता है और वह संसार को प्रिय होता है। कुठार अपने दुष्ट आचरण के कारण अग्नि में जलाया जाता है, फिर घन पर पीटा जाता है। इस प्रकार उसे दंडित किया जाता है।

अलंकार-दृष्टान्त तथा सम।

दोहा- निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज ।

ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज ॥38॥

शब्दार्थ-उभय = दोनों। सुख = आनंदमग्न।

व्याख्या-जिनके लिए निंदा-प्रशंसा एक समान है, जो मेरे चरण-कमलों के प्रति ममत्व-भाव रखते हैं, सद्गुणों के आगार हैं, सदैव आनंदमग्न रहते हैं, ऐसे संत मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं।

दोहा- पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद ।

ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद ॥39॥

शब्दार्थ-पर दार = दूसरे की स्त्री। रत = प्रेमी। अपबाद = निंदा। पाँवर = नीच। मनुजाद = राक्षस।

व्याख्या-असंत सदैव दूसरों से द्रोह (बैर) रखते हैं, दूसरे की स्त्री और पराए धन को हड़पने का प्रयास करते हैं तथा परनिंदा में ही दत्तचित रहते हैं। ऐसे व्यक्ति नीच और पापी होते हैं तथा मनुष्य रूप में राक्षस ही होते हैं।

दोहा- ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं ।

द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं ॥40॥

व्याख्या-ऐसे दुष्ट और नीच व्यक्ति सत्युग तथा त्रेता में नहीं होते हैं, द्वापर में थोड़ी संख्या में पाए जाते हैं, किंतु कलियुग में झुंड के झुंड मिल जाएँगे।

दोहा- सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक ।

गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक ॥41॥

शब्दार्थ-गुन = लाभ। अविवेक = अज्ञान।

व्याख्या-श्रीराम ने कहा कि हे भ्राता! मायाजन्य गुण और दोष असंख्य हैं। लाभ इसी में है कि दोनों पर दृष्टिपात न किया जाए। उन पर विचार करना एक प्रकार का अज्ञान ही है।

विशेष-गुण विद्या माया कृत हैं और अवगुण अविद्या माया की उपज है-हैं दोनों मायाकृत ही, अतः तत्त्वदृष्टि यही है कि प्राणी प्रभु भक्ति करे, गुण-दोषों के चक्कर में न पड़े। गुण-दोष देखने वाली वृत्ति दृष्टि का दोष है। इसी से इसे अविवेक कहा है।

अलंकार-गुन गुन-यमक।

दोहा- जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान ।

जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान ॥42॥

नोट

व्याख्या—सनकादि मुनि जो जीवनमुक्त हैं तथा ब्रह्म परायण हैं, वे भी ध्यान त्यागकर श्रीराम का चरित-श्रवण करते हैं। ऐसी आनंदमयी प्रभु-लीला से जो प्रेम नहीं करते, उनका हृदय प्रस्तर-तुल्य है।

दोहा— सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ ।

कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ ॥43॥

शब्दार्थ—परत्र (पर + त्र) = परलोक ।

व्याख्या—जो इस शरीर से पुरुषार्थ-चतुष्टय-प्राप्ति की चेष्टा नहीं करता, वह परलोक (अथवा इस लोक और परलोक) में दुःख पाता है, तथा काल, कर्म और ईश्वर को मिथ्या दोष लगाकर सिर धुन-धुन कर पछताता है। कुछ लोग काल को दोष लगाते हैं कि काल अच्छा नहीं था, समय का फेर है; कुछ लोग कहते हैं कि हमारा प्रारब्ध (संचित कर्म) अच्छा नहीं था और कुछ लोग ईश्वर को दोष देते हैं कि उसकी यही इच्छा थी। ज्योतिषी काल को, मीमांसक कर्म को और नैयायिक ईश्वर को दोषी बताते हैं। वे उपर्युक्त तीनों को मिथ्या दोष लगाते हैं; वे यह भूल जाते हैं कि जैसा कर्म किया वैसा फल पाया।

दोहा— जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ ।।

सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ ॥44॥

शब्दार्थ—समाज = सामग्री, साधन। कृतनिंदक = कृतघ्न। आत्माहन = आत्मघाती।

व्याख्या—जो व्यक्ति ऐसे साधन पाकर भी संसार-सागर से पार जाने का प्रयास नहीं करता, वह कृतघ्न और मूर्ख है तथा उसे आत्मघाती अथवा आत्महत्या करने वाले की गति प्राप्त होती है।

तुलनीय—श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है—

नृदेहमाधं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम् ।

मयानुकूलेन नमस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥ (श्रीमद्भागवत-11/20/17)

दोहा— औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि ।

संकर भजन बिना न भगति न पावइ मोरि ॥45॥

व्याख्या—भगवत्-प्राप्ति के लिए प्रथम शर्त है—सत्संग। इसका उल्लेख किया जा चुका है। सत्संग के अतिरिक्त राम-भक्ति की सुलभता की एक अन्य शर्त भी है, और वह है—शिव की भक्ति। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए श्रीराम कहते हैं कि मैं हाथ जोड़कर एक रहस्य का उल्लेख और देना चाहता हूँ। शिव की उपासना के बिना कोई भी व्यक्ति मेरी भक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता।

विशेष—यहाँ शिव-विष्णु की अद्वैतता का प्रतिपादन किया गया है। वस्तुतः मध्यकाल में शैवों और वैष्णवों में काफी विरोध बढ़ गया था। प्रायः दोनों में संघर्ष होते रहते थे। तुलसीदास ने इस विवाद को समाप्त करने के लिए शिव-विष्णु में अविरोध-भाव का प्रतिपादन किया है। राम-कथा के प्रथम वक्ता शिव हैं ही, मानस में अनेक स्थानों पर दोनों की अभिन्नता की, चर्चा की गई है, यथा—

1. बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू ॥
सिवपद कमल जिन्हहिं रति नाहीं। रामहिं ते सपनेहु न सोहाहीं ॥ (उत्तरकाण्ड-104)
2. इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिय न कोटि जोग जप साधे।
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी ॥ (उत्तरकाण्ड-138/7)
3. संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी ॥ (6/2/8)
4. सिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥

दोहा— मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह ।

ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह ॥46॥

शब्दार्थ—गुन ग्राम = गुणों का समूह। रत = ध्यानमग्न। परानंद = वह आनंद जो सबसे परे है अर्थात् पूर्णानंद।

नोट

व्याख्या—जो व्यक्ति मेरे गुणों तथा नाम-जप में सदा लीन रहता है और ममत्व अहंकार तथा मोह का पूर्ण रूपेण परित्याग कर चुका है, वही पूर्णानंद का अनुभव कर सकता है। वह ऐसा सुख है जो अनिर्वचनीय है, अर्थात् उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

दोहा— उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप।

ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप ॥47॥

व्याख्या—शिव जी कहते हैं कि हे पार्वती! अवध के स्त्री-पुरुषों का जीवन कृतार्थ है, धन्य है क्योंकि उन्हें श्रीराम की भक्ति सुलभ हो गई है, जो मोक्ष से बढ़कर है। अवधवासियों के कृतार्थ होने का वास्तविक कारण यह है कि जो ब्रह्म सत्, चित् और आनंद का समूह है, वही अवध का राजा है।

दोहा— तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान।

जा कहूँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन ॥48॥

व्याख्या—तब मैंने हृदय में विचार किया कि जिस परमात्मा की प्राप्ति के लिए योग, यज्ञ, जप, दान आदि कृत्य किए जाते हैं, मुझे उसका सान्निध्य-लाभ होगा। अतः इस पौरोहित्य कर्म के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है।

दोहा— नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।

जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ॥49॥

व्याख्या—इसी प्रेमाभक्ति की याचना करते हुए वशिष्ठ मुनि श्रीराम से कहते हैं कि हे नाथ! मैं आपसे एक ही वरदान माँगता हूँ। हे राम! आप कृपा करके ऐसा वरदान दीजिए जिससे जन्म-जन्मांतर में आपके चरण-कमलों के प्रति स्नेह कभी कम न हो अर्थात् आपके चरणों में अविचल प्रीति सदैव बनी रहे।

दोहा— प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम।

सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम ॥51॥

व्याख्या—इस प्रकार नारद मुनि श्रीराम के गुण-समूह का प्रेम सहित गान करके तथा उनके सौंदर्य-सागर को हृदय में धारण करके ब्रह्म लोक (जहाँ ब्रह्मा का निवास है) चले गए।

विशेष—पार्वती का अंतिम प्रश्न था—

बहुरि कहहु करुयातन कीन्ह जो अचरज राम।

प्रजासहित रघुवंसमनि किमि गवने निज धाम ॥

उपर्युक्त पंक्तियों में इसी प्रश्न का उत्तर है। कुछ विद्वानों के मत से वह सभी भाइयों तथा प्रजासहित परम दिव्य विमानों पर चढ़कर परविभूति को चले गए। अन्य विद्वानों के अनुसार अयोध्या ही प्रभु का नित्यधाम है। अयोध्या में ही उन्होंने नर लीला की और अंततः वह अव्यक्त रूप से वहीं निवास करने लगे। वह अयोध्या को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं रहते हैं।

दोहा— तुम्हरी कृपाँ कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।

जानेउँ राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह ॥52(क)॥

नाथ तवानन ससि स्त्रवत कथा सुधा रघुबीर।

श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर ॥52(ख)॥

शब्दार्थ—कृपायतन = कृपा के आगार। कृतकृत्य = कृतार्थ। चिदानंद = सत्, चित्, आनंद स्वरूप। संदोह = पूर्ण। श्रवन पुटन्हि = कर्ण छिद्र।

व्याख्या—पार्वती कहती हैं कि हे कृपासिंधु। आपकी कृपा से मैं कृतार्थ हो गई। अब मेरा मोह दूर हो गया। हे प्रभु! अब मुझे सत्, चित्, आनंद के समूह श्रीराम के प्रताप का पूर्ण ज्ञान हो गया। हे नाथ! हे मतिधीर! आपके मुख रूपी चंद्रमा से श्रीराम की कथा रूपी अमृत की वर्षा मेरे कर्ण छिद्र रूपी दोनाओं से मन पीकर तृप्त नहीं होता है।

अलंकार—परंपरित रूपक।

दोहा— राम परायन ग्यान रत गुनागार मति धीर।

नाथ कहहु केहि कारन पायउ काक सरीर ॥54॥

नोट

व्याख्या—हे नाथ! मुझे यह बताइए कि राम का सच्चा भक्त, ज्ञान में तत्पर, गुणों का आगार, धीर बुद्धिवाला प्राणी किस कारण से काग-शरीर को पाया? अर्थात् सर्वगुणसंपन्न प्राणी काग (कौआ) कैसे हो गया?

दोहा— ऐसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्ह काग सन जाइ।

सो सब सादर कहिहउँ सुनहु उमा मन लाइ ॥55॥

व्याख्या—इसी प्रकार के प्रश्न गरुड़ ने भी काग के पास जाकर किए थे। मैं उन सभी प्रश्नों का उत्तर दूँगा। हे उमा! मन लगाकर सुनो।

दोहा— सीतल अमल मधुर जल जलज बिपुल बहुरंग।

कूजत कल रव हंस गन गुंजत मंजुल भृंग ॥56॥

व्याख्या—उस सरोवर का जल अत्यंत शीतल और निर्मल था तथा उस पर विविध रंगों के अत्यधिक कमल विकसित थे। उस पर हंसों का समूह मधुर ध्वनि से कूजन कर रहा था तथा सुंदर भ्रमर गुंजार कर रहे थे।

दोहा— तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।

सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास ॥57॥

व्याख्या—तब मैंने हंस का शरीर धारण करके वहाँ निवास किया और श्रीराम का गुणगान आदरपूर्वक सुनकर पुनः कैलाश पर्वत पर आ गया।

दोहा— भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।

खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम ॥58॥

शब्दार्थ—भव बंधन = सांसारिक बंधन। खर्ब = तुच्छ।

व्याख्या—जिस ईश्वर का नाम लेकर मनुष्य सांसारिक बंधन से मुक्त हो जाते हैं, उसे तुच्छ राक्षस ने नागपाश में बाँध लिया। यह कैसे संभव हुआ।

दोहा— अस कहि चले देवरिषि करत राम गुन गान।

हरि माया बल बरनत पुनि पुनि परम सुजान ॥59॥

व्याख्या—इतना कहने पर दो घड़ी बीत गई। अतः नारद श्रीराम का गुणगान करते हुए गरुड़ लोक से चल दिए। परम चतुर नारद बारंबार प्रभु की माया की शक्ति का वर्णन करते हुए चले जा रहे हैं। वह माया से भयभीत हैं। अतः बार-बार उसका गुणगान कर रहे हैं।

विशेष—नारद ने ही गरुड़ को श्रीराम का नागपाश छिन्न करने के लिए भेजा था। अतः वह समाचार जानने के लिए तब तक गरुड़ लोक में ही रुके रहे, जब तक गरुड़ वापस नहीं आ गया।

दोहा— परमातुर बिहंगपति आयउ तब मो पास।

जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास ॥60॥

व्याख्या—तब परम व्याकुल गरुड़ मेरे पास आया। मैं उस समय कुबेर के आवास (अलकापुरी) को जा रहा था और तुम (उमा) कैलास पर्वत पर थीं।

दोहा— बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।

मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ॥61॥

व्याख्या—बिना सत्संग के हरिकथा सुनने को नहीं मिलती, बिना हरिकथा के श्रवण से मोह-भंग नहीं हो सकता और जब तक मोह नहीं समाप्त होता, तब तक श्रीराम के चरणों में अविचल प्रेम नहीं हो सकता। यहाँ क्रमशः यह बताया गया है कि सत्संग से हरिकथा सुनने को मिलती है, हरिकथा से मोह-निवृत्ति होती है और मोह-निवृत्ति से श्रीराम के चरणों में अनुराग उत्पन्न होता है।

अलंकार—कारणामाला।

दोहा— ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान।

ताहि मोह माया नर पावैर करहिं गुमान ॥62(क)॥

नोट

सिव बिरंचि कहूँ मोहड़ को है बपुरा आन ।

अस जियँ जानि भजहिँ मुनि माया पति भगवान ॥62(ख)॥

शब्दार्थ—जान (यान) = सवारी । पाँवर = पामर, तुच्छ । गुमान = अहंकार । बपुरा = बेचारा । आन = अन्य ।

व्याख्या—गरुड़ ज्ञानी और भक्तों में शिरोमणि है तथा त्रैलोक्य स्वामी विष्णु का वाहन है अर्थात् सदैव उनके निकट रहता है । जब ऐसे सद्गुण संपन्न गरुड़ को माया ने अपने वश में कर लिया, तब तुच्छ व्यक्ति व्यर्थ ही अहंकार करते हैं कि उन्होंने माया को जीत लिया । माया ऐसी प्रबल है कि वह शिव और ब्रह्मा तक को मोहित कर लेती है, फिर बेचारे अन्य प्राणियों को क्या कहा जाए? ऐसा समझ कर मुनिजन माया के स्वामी भगवान् की उपासना में निरत रहते हैं ।

अलंकार—दूसरी पंक्ति – काव्यार्थापत्ति ।

दोहा— नाथ कृतारथ भयउँ मैं तव दरसन खगराज ।

आयसु देहु से करौं अब प्रभु आयहु केहि काज ॥63(क)॥

सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस ।

जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस ॥63(ख)॥

व्याख्या—काग ने कहा कि हे नाथ! आज मैं आपके दर्शन से कृतार्थ (धन्य) हुआ । सेवक के घर स्वामी का आना उसे कृतार्थ करना है—‘सेवक सदन स्वामि आगमनू, मंगल मूल अमंगल दमनू ।’ काग ने पुनः कहा कि हे प्रभु! आप किस कार्यवश आए हैं । आप आज्ञा कीजिए, मैं तत्काल वह कार्य संपादित करूँ । तब गरुड़ ने मधुर वाणी में कहा कि आप सदैव कृतार्थ की मूर्ति हैं, अर्थात् आपको देखकर दूसरे लोग कृतार्थ होते हैं । आपकी प्रशंसा स्वयं शिव जी ने की । शिव जी सामान्य जीवों की स्तुति नहीं कर सकते । उनका प्रशंसा करना ही आपके कृतार्थ रूप का प्रमाण है ।

अलंकार—प्रथम दोहा—चित्रोत्तर तथा अर्थातरन्यास ।

दोहा— बालचरित कहि बिबिधि बिधि मन महँ परमक उछाह ।

रिषि आगवन कहेसि पुनि श्रीरघुबीर बिबाह ॥64॥

व्याख्या—शिशु रूप वर्णन (5 वर्ष की अवस्था) करने के पश्चात् उन्होंने श्रीराम की बाललीला (14 वर्ष तक की) का उत्साहपूर्वक वर्णन किया । इसके पश्चात् विश्वामित्र के आगमन तथा श्रीराम (अथवा सीता और राम) के विवाह का वर्णन किया । यह बालकाण्ड तक की कथा है ।

दोहा— कहि बिराध बध जेहि बिधि देह तजी सरभंग ।

बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सतसंग ॥65॥

व्याख्या—महर्षि अत्रि से विदा होकर श्रीराम दंडकारण्य चले । उनकी पहली भेंट बिराध नामक राक्षस से हुई । प्रभु ने तत्काल उसका वध कर दिया । तत्पश्चात् शरभंग ऋषि से भेंट हुई । उन्होंने प्रभु-दर्शन के बिना ब्रह्मलोक जाना स्वीकार न किया था । श्रीराम का दर्शन होते ही उन्होंने योगाग्नि से शरीर भस्म कर लिया । इसके पश्चात् अगस्त्य के शिष्य सुतीक्ष्ण ऋषि और प्रभु के मिलन तथा सुतीक्ष्ण के प्रेम का वर्णन किया । तत्पश्चात् अगस्त्य ऋषि से मिलन की कथा कही ।

विशेष—श्रीराम दंडकारण्य में अनेक ऋषि-मुनियों से मिले थे, किंतु काग ने केवल चार ऋषियों—अत्रि, शरभंग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्य—से मिलन का उल्लेख किया । कारण यह है कि अत्रि से मिलन महत्त्वपूर्ण है; शरभंग का देह-त्याग के कारण महत्त्व है; सुतीक्ष्ण की प्रीति महिमामयी है और अगस्त्य ऐसे ऋषि हैं, जिन्होंने समुद्र का शोषण किया था, विंध्याचल को बढ़ने से रोक दिया था और श्रीराम को राक्षसों के वध का उपाय बताया था । उनके कहने से ही राम पंचवटी में रुके थे ।

दोहा— प्रभु नारद संवाद कहि मारुति मिलन प्रसंग ।

पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्रान कर भंग ॥66(क)॥

कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रबरषन बास ।

बरनन बर्षा सरद अरु राम रोष कपि त्रास ॥66(ख)॥

नोट

व्याख्या—शबरी के आश्रम से श्रीराम सुंदर वन, सरोवर आदि देखते हुए बिरहावस्था में एक वट-वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। तब नारद ने सोचा कि चलकर प्रभु को इस दशा में देखना चाहिए। यह विचार कर नारद प्रभु राम के पास गए। उस समय दोनों में जो संवाद हुआ था, काग ने वह सब गरुड़ को सुनाया। बालि से भयभीत सुग्रीव मुनियों सहित ऋष्यमूक पर्वत पर रहता था। एक दिन उसने दो वीरों (राम-लक्ष्मण) को अपनी ओर आते देखा, अतः उसने हनुमान को उनके पास पता लगाने के लिए भेजा। हनुमान राम के पास बटु रूप में गए। दोनों का परिचय हुआ। काग ने यह वृत्तांत भी सुनाया। श्रीराम हनुमान के साथ सुग्रीव के पास गए, दोनों में मैत्री हुई। सुग्रीव ने अपनी व्यथा सुनाई। श्रीराम ने बालि का वध किया। सुग्रीव किष्किंधा के राजा हुए। काग ने यह घटना भी बताई। इसी समय वर्षा ऋतु आ गई थी। अतः श्रीराम व लक्ष्मण प्रवर्षन पर्वत पर कई मास रुके। सुग्रीव ने सीता का पता लगाने का वादा किया था, किंतु वह राजमद और सुरा-सुंदरी में इतना डूब गया था कि राम को दिए गए वचनों को भूल गया। इस पर राम क्षुब्ध हुए और कहा कि 'जेहि सायक मारा मैं बाली, तेहि सर हतौं मूढ़ कँहु काली।' राम के निर्देशानुसार लक्ष्मण किष्किंधापुरी गए और अपना क्रोध प्रकट किया। इससे सुग्रीव समेत सभी वानर भयग्रस्त हो गए। सुग्रीव तत्काल राम की शरण में आया और सीता का पता लगाने के लिए चारों दिशाओं में वानरों को भेज दिया। काग ने इस पूरे वृत्तांत का उल्लेख किया।

विशेष—श्रीराम-नारद संवाद के बाद अरण्यकाण्ड की समाप्ति हुई और किष्किंधाकाण्ड प्रारंभ हो गया।

दोहा— सेतु बाँधि कपि सेन जिमि उत्तरी सागर पार।

गयउ बसीठी बीरबर जेहि बिधि बालिकुमार ॥67(क)॥

निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिधि प्रकार।

कुंभकरन घननाद का बल पौरुष संधार ॥67(ख)॥

शब्दार्थ—बसीठी = दौत्यकर्म। कीस = वानर। संधार = वध।

व्याख्या—समुद्र पर जिस प्रकार सेतु-बंधन हुआ तथा सेना ने समुद्र पार किया, श्रेष्ठ वीर अंगद जिस प्रकार दौत्यकर्म के लिए रावण के दरबार में गया, वे सारे वृत्तांत भी काग ने सुनाए। अंगद ने रावण-दरबार में पहुँचने के पूर्व ही उसके एक पुत्र का वध कर दिया था तथा रावण-सभा में कोई भी राक्षस उसके पैर को नहीं उठा सका था, इसीलिए अंगद को 'वीरवर' कहा गया है।

अंगद के वापस आने पर युद्ध प्रारंभ हो गया। सर्वप्रथम राक्षसों और वानरों में विविध प्रकार का युद्ध हुआ, काग ने वह सारा वृत्तांत सुनाया। तत्पश्चात् मेघनाद-लक्ष्मण युद्ध तथा कुंभकर्ण-श्रीराम युद्ध, लक्ष्मण के द्वारा मेघनाद-वध तथा श्रीराम के द्वारा कुंभकर्ण-वध का वृत्तांत कहा।

दोहा— सुनि बिहंगपति बानी सहित बिनय अनुराग।

पुलक गात लोचन सजल मन हरषेउ अति काग ॥69(क)॥

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास।

पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास ॥69(ख)॥

शब्दार्थ—गात = शरीर। सुमति = सद्बुद्धिसंपन्न। सुसील = सदाचारी। सुचि = पवित्र। रसिक = प्रेमी। गोप्यमति = रहस्यपूर्ण, छिपाने वाली।

व्याख्या—गरुड़ की विनम्र तथा प्रेमपूर्ण वाणी सुनकर काग भुशुण्डि का शरीर रोमांचित हो गया, नेत्रों में अश्रु आ गए तथा वह मन में बहुत प्रसन्न हुआ। शिव जी कहते हैं कि यदि श्रोता सद्बुद्धिसंपन्न, सदाचारी, पवित्र, कथाप्रेमी तथा भगवद्-भक्त हो तो संतजन अत्यंत गोपनीय रहस्य को भी प्रकाशित कर देते हैं।

दोहा— ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार।

केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार ॥70(क)॥

श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।

मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ॥70(ख)॥

नोट

शब्दार्थ—सूर (शूर) = वीर। कोविद = विद्वान्। बिडंबना = हँसी। श्री मद = प्रभुता, लक्ष्मी अथवा धन का अहंकार। बक्र = टेढ़ा।

व्याख्या—बड़े-बड़े ज्ञानी, तपस्वी, वीर, कवि, विद्वान् आदि गुणों से संपन्न व्यक्तियों में ऐसा कौन है जो लोभ के वशीभूत होकर हँसी का पात्र न बन गया हो? ऐसा कौन धन-संपन्न व्यक्ति है जो अहंकार के वशीभूत न हुआ हो? राजमद ने किसे बधिर नहीं बनाया—‘प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं?’ संसार में ऐसा कौन प्राणी है जिसे सुंदर स्त्री के मृग के समान नेत्र रूपी बाणों ने घायल न कर दिया हो? तात्पर्य यह है कि संसार के सभी प्राणी लोभ, धनमद, वैभव तथा काम के वशीभूत हो ही जाते हैं।

अलंकार—वक्रोक्ति।

दोहा— व्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड।

सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड ॥71(क)॥

सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि।

छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि ॥71(ख)॥

शब्दार्थ—कटक = सेना। भट = योद्धा। सोपि (सोऽपि) = वह भी। पद रोपि = प्रतिज्ञापूर्वक।

व्याख्या—माया की बलिष्ठ सेना पूरे संसार में व्याप्त है। काम, क्रोध, लोभ आदि तथा अहंकार, कपट, पाषंड उसके सेनापति हैं। यह माया श्रीराम की दासी है, वह भी ज्ञान के प्रकाश होने पर मिथ्या प्रतीत होती है। मिथ्या होते हुए भी यह माया श्रीराम के अनुग्रह के बिना छूटती नहीं है। यह मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ।

विशेष—माया का तात्पर्य है—जो नहीं है, भ्रांतिवश उसे समझना। (मा = नहीं + या = जो = जो नहीं है।) जैसे भ्रमवश अंधकार में रज्जु को सर्प समझ लेते हैं, किंतु प्रकाश होने पर वास्तविकता का ज्ञान होता है, उसी प्रकार जीव भ्रमवश असत्य को सत्य समझ लेता है। यह रघुबीर की दासी है, अतः इसमें सत्य की प्रतीति होती है, किंतु जब उनकी कृपा रूपी प्रकाश की प्राप्ति हो जाती है, तब वह असत्य प्रतीत होने लगती है।

अलंकार—तीसरी पंक्ति—विरोधाभास।

तुलनीय— 1. जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया।

× × × ×

जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥ (बाल.—117)

2. विनयपत्रिका में भी कहा गया है—

माधव असि तुम्हारि यह माया।

करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया।

सुनिय गुनिय समुधिय समुझाइय दस हृदय नहिं आवै।

जेहि अनुभव बिनु मोह जनित दारुन भव बिपति सतावै।

(पद—116)

दोहा— काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप।

ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप ॥73(क)॥

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।

सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ ॥73(ख)॥

शब्दार्थ—रत = आसक्त। तम = अंधकार। तमकूप = अंधकूप, अंधा कुआँ।

व्याख्या—जो व्यक्ति काम, क्रोध, अहंकार, लोभ में आसक्त हैं और दुःखदायी गृहस्थी के कार्यों में लिप्त हैं, वस्तुतः वे अंधकूप में पड़े हैं। ऐसे लोग प्रभु श्रीराम के मर्म को समझ ही नहीं सकते। जिस प्रकार अंधे कुएँ में पड़ा व्यक्ति कुछ भी देख नहीं पाता, उसी प्रकार ब्रह्म के दो रूप हैं—निर्गुण-सगुण। निर्गुण रूप को समझना सरल है, किंतु सगुण को कोई समझ नहीं पाता। सगुण रूप के चरित दो प्रकार के होते हैं—कुछ सुगम और कुछ अगम, जिन्हें सुनकर मुनिजनों का भी मन भ्रम में पड़ जाता है।

नोट

दोहा— जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर ।

ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर ॥74(क)॥

तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि ।

तुलसीदास ऐसे प्रभुहि कर न भजहु भ्रम त्यागि ॥74(ख)॥

व्याख्या—यद्यपि फोड़े को चिराते समय शिशु को बहुत कष्ट होता है और वह व्याकुल होकर रोता है। किंतु माता जानती है कि फोड़े को चिराने से ही बच्चे का क्लेश दूर होगा। अतः उस रोग के नाश के लिए माता बच्चे की आपरेशनजन्य पीड़ा की परवाह नहीं करती है। उसी प्रकार प्रभु अपने भक्त के अभिमान को उसके हित के लिए निर्मम होकर नष्ट कर देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे भक्तवत्सल समस्त भ्रम त्याग कर प्रभु की उपासना क्यों नहीं करते?

दोहा— लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाउँ ।

जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ ॥75(क)॥

एक बार अतिसय सब चरित किए रघुबीर ।

सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भयउ सरीर ॥75(ख)॥

शब्दार्थ—अजिर = आँगन। अतिसय (अतिशय) = अत्यधिक, अद्भुत।

व्याख्या—शिशुराम हाथ में पक्वान्न लेकर आँगन में इधर-उधर घूमते हैं, काग भी उन्हीं के साथ-साथ उड़ता रहता है और आँगन में उनकी जो जूठन गिरती है, काग उसे उठाकर खा लेता है। एक बार श्रीराम ने अत्यंत अद्भुत लीला की। उसका स्मरण करते ही काग का शरीर रोमांचित हो गया।

दोहा— रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गँभीर ।

उर आयत भ्राजत बिबिध बाल बिभूषन चीर ॥76॥

शब्दार्थ—आयत = विशाल। भ्राजत = सुशोभित। चीर = वस्त्र।

व्याख्या—पेट पर तीन सुंदर रेखाएँ (त्रिबली) हैं, नाभि बहुत सुंदर और गहरी है। विशाल वक्षस्थल पर अनेक प्रकार के सुंदर आभूषण और वस्त्र सुशोभित हैं।

दोहा— आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं ।

जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं ॥77(क)॥

प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह ।

कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह ॥77(ख)॥

व्याख्या—जब मैं प्रभु के निकट जाता था, तब वे प्रसन्न हो जाते थे और जब मैं भागता था तब रोने लगते थे। उनके रुदन को देखकर जब मैं उनके चरणों को पकड़ने के लिए निकट जाता था, तब मेरी ओर बार-बार देखकर भाग जाते थे। पीछे मुड़कर देखने में भाव यह है कि वह देखते थे कि मैं उनके समीप आ रहा हूँ कि नहीं। इस प्रकार उनकी सामान्य बालक के समान क्रीड़ा देखकर मुझे मोह उत्पन्न हो गया। मैंने सोचा कि जो प्रभु चित्-आनंद-धन है, वह इस प्रकार की लीला क्यों कर रहा है?

विशेष—श्रीराम का काग को पकड़ने के लिए दौड़ना, भागने पर पूँप दिखाना, निकट आने पर हँसना, भागने पर रोना आदि बाल-लीलाओं को देखकर काग को मोह हो गया। उसको यह भ्रम हुआ कि सच्चिदानंद प्रभु को इस प्रकार का आचरण नहीं करना चाहिए। गरुड़ को भी उनकी इसी प्रकार की माधुर्य लीला देखकर मोह हुआ था—‘चिदानंद संदोह राम विकल कारन कवन।’

दोहा— ब्रह्मलोक लागि गयऊँ मैं चितयऊँ पाछ उड़ात ।

जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात ॥79(क)॥

सप्तावरन भेद करि जहाँ लगे गति मोरि ।

गयऊँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयऊँ बहोरि ॥79(ख)॥

शब्दार्थ—ब्रह्मलोक—भू, भव, स्व, जन, तप, सत्य इन छः लोगों को पार कर सातवाँ ब्रह्मलोक है। जुग = दो। सप्तावरन—आवरण नौ माने गए हैं—गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति और शुद्ध सत्व। जीव की गति केवल सात आवरण तक है। दूसरे मत से सात आवरण ये हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, अहंकार और महत्त्व।

नोट

व्याख्या—काग कहता है कि मैं ब्रह्मलोक तक गया। पृथ्वी से ब्रह्मलोक तक पहुँचने के लिए भू, भव, स्व, जन, तप, सत्य इन छः लोगों को पार करना पड़ता है। ब्रह्मलोक तक जाने के पश्चात् उसने पीछे मुड़कर देखा। राम की भुजा तब भी उसका पीछा कर रही थी। केवल दो अँगुल की दूरी थी। अतः वह पुनः उड़ा और सात आवरणों को भेदकर गया। आवरण नौ माने गए हैं—गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति और शुद्ध सत्व। जीव की गति यहीं तक है। अब, प्रकृति और शुद्ध सत्व दो आवरण शेष थे। यही दो अँगुल का अंतर था। दूसरे मत से अहंता और ममता दो अँगुल हैं। यही शेष थे। इनको पार करने पर ही प्रभु का सान्निध्य प्राप्त होता है। सप्तावरण भेद करने पर उसने पुनः पीछे मुड़कर देखा, किंतु राम की भुजा अब भी उसका पीछा कर रही थी। अतः वह त्रस्त हो गया। अन्य मत से सप्तावरण ये हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, अहंकार और महत्त्व। जहाँ ब्रह्मांड समाप्त होते हैं, यहाँ से ये सात आवरण प्रारंभ होते हैं।

विशेष—सामान्यतः जीव परमात्मा से विमुख हो जाता है। वह भागता है, किंतु परमात्मा उस पर अनुग्रह करना चाहता है। राम-भुजा का काग के पीछे-पीछे जाने का यही रहस्य है। दो अँगुल की दूरी प्रकृति और शुद्ध सत्वो गुण की है। इसको पार करने पर ही परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त होता है। अविद्या माया प्रभु से वियोग करा देती है और विद्या माया भक्त-भगवान के संबंध को दृढ़ कराती है। दो अँगुल का भेद दिखाकर कवि ने यह स्पष्ट किया है कि प्रभु ने काग का साथ कभी नहीं छोड़ा। काग भेद-भगति का उपासक है, इसलिए भी यह अंतर बना हुआ है।

दोहा— जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।

सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ ॥80(क)॥

एक एक ब्रह्मांड महुँ रहउँ बरष सत एक।

एहि बिधि देखत फिरउँ मैं अंड कटाह अनेक ॥80(ख)॥

शब्दार्थ—अंड कटाह = ब्रह्मांड।

व्याख्या—मैंने जो पूरे जीवन में न देखा था और न सुना था तथा जो मन से परे है, मन में समा नहीं सकता अर्थात् कल्पनातीत है। ऐसे अद्भुत दृश्य मेरे द्वारा देखे गए। उनका वर्णन करना संभव नहीं है। मैं एक-एक ब्रह्मांड में सौ-सौ वर्ष तक रहा। इस प्रकार अनेक ब्रह्मांडों में अद्भुत दृश्य देखता हुआ घूमता रहा।

विशेष—एक-एक ब्रह्मांड में एक सौ वर्ष रहे। मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक दिन होता है और देवताओं के एक हजार वर्ष का एक कल्प होता है। ऐसे-ऐसे सौ कल्पों तक काग विचरण करते रहे।

दोहा— भिन्न भिन्न में दीख सबु अति बिचित्र हरिजान।

अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन ॥81(क)॥

सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर।

भुवन भुवन देखत फिरउँ प्रेरित मोह समीर ॥81(ख)॥

शब्दार्थ—हरिजान (सं. हरियान) = विष्णु की सवारी, गरुड़। आन = अन्य। समीर = पवन।

व्याख्या—हे गरुड़! मैंने सभी लोकों में भिन्न-भिन्न तथा विचित्र दृश्य देखे। इस प्रकार मैं असंख्य लोकों में विचरण करता रहा, किंतु अन्य प्रभु राम को नहीं देखा। सभी लोकों में राम ही थे, उसी प्रकार की शिशुता थी, वैसा ही सौंदर्य था और वही उदारता थी। इस प्रकार मैं मोह रूपी पवन के द्वारा प्रेरित एक लोक से दूसरे लोक तक विचित्र दृश्य देखते हुए विचरण करता रहा।

दोहा— देखि कृपाल बिकल मोहि बिहँसे तब रघुबीर।

बिहँसतहीं मुख बाहेर आयउँ सुनु मतिधीर ॥82(क)॥

सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम।

कोटि भाँति समुझावउँ मनु न लहइ विश्राम ॥82(ख)॥

व्याख्या—मुझे व्याकुल देखकर दयालु प्रभु हँसे। उनके हँसने पर उनका मुख खुल गया। अतः मैं बाहर आ गया। श्रीराम पुनः मुझसे यथापूर्व बालक्रीड़ा करने लगे। मैं अपने मन को बार-बार समझाता था कि ये मेरे इष्टदेव ही हैं, स्वामी ही हैं, किंतु मन को शांति नहीं मिलती थी।

नोट

विशेष—1. यहाँ गोस्वामी जी समझाते हैं कि ज्ञानी, भक्तशिरोमणि, सर्वज्ञ काग भुशुण्डि के मन में जब संदेह पैदा हो गया और वह अपनी बुद्धि से उसका निवारण करने का प्रयत्न करने लगे, तब उनको सफलता नहीं मिली। अतः सामान्य व्यक्ति प्रभु के रहस्य को कैसे समझ सकता है।

2. भक्त जब व्याकुल होता है, तब प्रभु हँस देते हैं। हँसी के द्वारा उसके मोह का निवारण करते हैं, जैसे—

(i) देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर-मुसुकानी ॥

(ii) निज माया बल देखि बिसाला। हिय हँसि बोले दीनदयाला ॥

दोहा— सुनि सप्रेम मम बानी देखि दीन निज दास।

बचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास ॥83(क)॥

काकभसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।

अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि ॥83(ख)॥

शब्दार्थ—अनिमादिक = अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व—ये आठ सिद्धियाँ मानी गई हैं। सिधि = सिद्ध। अपर = अन्य। रिधि = रिद्धि, निधि।

व्याख्या—मेरी प्रेम और विनम्रता पूर्ण कर्णा सुनकर तथा अपना भक्त देखकर रमापति (राम) सुखदायी, मधुर और गंभीर वाणी में बोले कि हे काग! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम अणिमादि आठों सिद्धियाँ, नौ निधियाँ तथा समस्त सुखों की राशि मोक्ष आदि कुछ भी वरदान में माँगो।

दोहा— अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।

जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव ॥84(क)॥

भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपासिंधु सुख धाम।

सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ॥84(ख)॥

शब्दार्थ—अबिरल भगति = अचल, एकरस भक्ति। जोगीस = योगीश्वर। प्रनत हित = शरणागत का कल्याण करने वाले।

व्याख्या—काग ने कहा कि हे भक्तों के लिए कल्पवृक्ष, शरणागत हितकारी, कृपा के आगार और सुख के धाम प्रभु! मुझे वह अविचल एकरस भक्ति प्रदान कीजिए जिसका उल्लेख वेदों और पुराणों में है, जिसको बड़े-बड़े योगीश्वर मुनि भी खोजते रहते हैं, किंतु प्रभु के अनुग्रह से कोई-कोई ही जिसे पाते हैं। हे राम! मुझे वही एकरस भक्ति प्रदान कीजिए।

दोहा— माया संभव भ्रम सब अब न ब्यापिहहिं तोहि।

जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि ॥85(क)॥

मोहि भगत प्रिय संतत अस बिचारि सुने काग।

कायँ बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग ॥85(ख)॥

शब्दार्थ—संभव = उत्पन्न। अगुन = सत्, रज, तम गुणों से परे। गुनाकर = असंख्य कल्याणकारी गुण। संतत = निरंतर। काय = शरीर।

व्याख्या—हे काग! अब माया से उत्पन्न कोई भ्रम तुझमें व्याप्त नहीं होंगे। संभव भ्रम का तात्पर्य है—स्वरूप में भ्रम, प्रकृति में भ्रम, चरित्र में भ्रम, राम को सामान्य मानव समझना आदि। तुम मुझे परब्रह्म, अनादि तत्त्व, अजन्मा, सत्, रज, तम गुणों से अतीत तथा समस्त कल्याणकारी गुणों की राशि समझते रहना।

हे काग! तुम यह समझकर कि मुझे भक्त सदैव प्रिय होते हैं, शरीर, वाणी और मन से एकनिष्ठ भाव से मेरे चरणों में प्रीति बनाए रखना।

अलंकार—अगुन गुनाकर—विरोधाभास।

तुलनीय—अंतिम पंक्ति—गीता में भी इसी प्रकार कहा गया है—

मन्मना भव मद्भक्तों मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्परायणः॥ (9/34)

दोहा- सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग ।

नोट

श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग ॥86॥

व्याख्या-श्रीराम कहते हैं कि हे काग! ध्यानपूर्वक इस तथ्य का श्रवण करो। सदाचारी, पवित्र और परमार्थ बुद्धिवाला भक्त किसे प्रिय नहीं होता है अर्थात् ऐसे सेवक पर सभी प्रसन्न रहते हैं। वेदों और पुराणों का भी यही मत है।

विशेष-यहाँ गोस्वामी जी ने वेदमत और लोकमत दोनों का समन्वय कर दिया है।

चौ.- एक पिता के बिपुल कुमारा । होहिं पृथक गुन सील अचारा ॥

कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता । कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ॥

कोउ सर्वग्य धर्मरत कोई । सब पर पितहि प्रीति सम होई ॥

व्याख्या-प्रभु को सेवक सर्वाधिक प्रिय होता है, इस तथ्य का स्पष्टीकरण गोस्वामी जी एक लौकिक दृष्टान्त के द्वारा देते हैं। वह कहते हैं कि एक पिता के कई पुत्र होते हैं। उनका गुण, स्वभाव तथा आचरण एक-दूसरे से भिन्न होता है। उनमें कोई विद्वान् होता है, कोई तपस्वी और ज्ञानी होता है, कोई धनाढ्य, कोई वीर और कोई दानी होता है, कोई सर्वज्ञ और कोई धर्मपरायण होता है। किंतु पिता सभी पुत्रों से समान-भाव से प्रेम करता है।

अलंकार-दृष्टान्त।

दोहा- पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।

सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ॥87(क)॥

सोरठा- सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय ।

अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब ॥87(ख)॥

शब्दार्थ-सर्व भाव = अनन्य भाव से।

व्याख्या-पुरुष, नपुंसक और स्त्री अथवा कोई भी जड़-चेतन जो प्राणी अनन्य भाव से निष्कपट रूप से मेरी उपासना करता है, वह मुझे परम प्रिय है। हे गरुड़! मैं तुमसे सत्य वचन कहता हूँ कि पवित्र सेवक मुझे प्राणों के समान प्रिय है। ऐसा विचार कर समस्त लौकिक-पारलौकिक आशाओं का परित्याग कर मेरी उपासना करो।

तुलनीय- अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं ब्रह्महम् ॥

× × ×

यह विनती रघुबीर गुँसाई।

और आस बिस्वास भरोसो हरौ जिय की जड़ताई ॥

चहैं न सुगति सुमति संपति कछु रिधि सिधि बिपुल बड़ाई ॥

हेतु रहित अनुराग नाथ पद बढ़ो अनुदिन अधिकाई ॥103॥ (विनयपत्रिका)

दोहा- बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु ।

गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥89(क)॥

कोउ विश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु ।

चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥89(ख)॥

व्याख्या-क्या सद्गुरु के बिना ज्ञान संभव है? और क्या वैराग्य के बिना भी ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है? उत्तर है-नहीं। यहाँ ज्ञान-प्राप्ति की दो आवश्यक शर्तें बताई गई हैं-सद्गुरु का सान्निध्य और वैराग्य। वस्तुतः जब तक तत्त्वदर्शी गुरु का साक्षात्कार नहीं होता तब तक आत्मस्वरूप की उपलब्धि असंभव है। गुरु का अर्थ ही है-अंधकार को नष्ट करने वाला। यदि गुरु से ज्ञान प्राप्त भी हो गया तो वैराग्य न होने पर वह कुछ काल के बाद समाप्त हो जाएगा। इसी प्रकार भगवद्-भक्ति के बिना वास्तविक सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह केवल कवि-कथन ही नहीं है, वेद-पुराण इसके प्रमाण हैं। इसी प्रकार जब तक सहज संतोष न हो जाए, तब तक स्थायी शांति नहीं मिल सकती। असंतोष ही समस्त दुःखों का मूल है। सहज संतोष का तात्पर्य है-हर्ष-विषाद से मुक्ति। 'सहज

नोट

संतोष' और 'हरि-भक्ति' सच्चे सुख के लिए उसी प्रकार अनिवार्य हैं, जिस प्रकार नौका-चालन के लिए जल। अर्थात् जिस प्रकार जल के बिना, केवल थल पर नौका नहीं चल सकती, वैसे ही 'संतोष' के बिना शांति नहीं प्राप्त हो सकती। कोई भी व्यक्ति चाहे कितना ही परिश्रम करते-करते थक जाए।

अलंकार—1. पहली पंक्ति—कारणमाला।

2. अंतिम पंक्ति—दृष्टांत।

3. वक्रोक्ति।

दोहा— बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।

राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह विश्रामु ॥90(क)॥

सो.— अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।

भहजु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद ॥90(ख)॥

व्याख्या—बिना विश्वास के भक्ति का उद्रेक नहीं होता। वस्तुतः श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। तुलसीदास ने कहा भी है कि परिचय के बिना विश्वास नहीं होता, विश्वास के बिना प्रेम नहीं होता और प्रेम के बिना भक्ति में दृढ़ता नहीं आती—'जाने बिनु न होइ परतीति, बिनु परतीति होइ नहिं प्रीति; प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई, जिमि खगपति जल कै चिकनाई।' जब तक भक्ति का उद्रेक नहीं होता, तब तक राम द्रवित नहीं होते अर्थात् भगवान् का अनुग्रह भक्ति से ही होता है। और जब तक राम का अनुग्रह प्राप्त नहीं होता, तब तक जीव स्वप्न में भी शांति नहीं प्राप्त कर सकता। काग कहता है कि हे गरुड़! इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए समस्त कुतर्कों और संदेहों को त्यागकर करुणानिधान तथा सुख प्रदान करने वाले श्रीराम की उपासना करो।

विशेष—गरुड़ में दो ही दोष आ गए थे—कुतर्क और संशय। उसका कुतर्क था— 'चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन।' तथा उसका संदेह था—'देखि चरित अति नर अनुसारी, भयउ हृदय मम संसय भारी।' अतः काग भुशुण्डि ने इन दो दोषों का निवारण किया।

अलंकार—कारणमाला तथा विनोक्ति।

दोहा— मरुत कोटि सत बिपुल बल रवि सत कोटि प्रकास।

ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास ॥91(क)॥

काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत।

धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत ॥91(ख)॥

शब्दार्थ—मरुत = पवन। समन (सं. शमन) = शांत करने वाले। दुस्तर = 1. जिसे पार पाना कठिन हो, 2. विकट, कठिन। दुर्ग = जिसमें पहुँचना कठिन हो, दुर्गम। दुरंत = 1. जिसका अंत जल्दी न मिले, अपार 2. प्रचंड, भीषण। धूमकेतु = अग्नि। दुराधरष = प्रबल, प्रचंड।

व्याख्या—भगवान् में करोड़ों पवन के समान बल है। पवन सर्वाधिक बलवान माना गया है। सैकड़ों करोड़ सूर्यों के समान उनमें प्रकाश है। सैकड़ों करोड़ चंद्रमा के समान संसारजन्य भय का दमन करने वाली शीतलता है। वे सैकड़ों करोड़ काल के समान विकट, दुर्गम और प्रचंड हैं तथा सैकड़ों करोड़ अग्नि के समान शक्तिशाली हैं।

दोहा— रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।

संतन्ह सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहि सुनायउँ सोइ ॥92(क)॥

सो. भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।

तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन ॥92(ख)॥

व्याख्या—काग कहता है कि श्रीराम अनंत गुणों के सागर हैं, उनके सम्यक् गुणों की जानकारी संभव नहीं। जैसे समुद्र की थाह लगाना दुष्कर है, वैसे ही श्रीराम के गुणों का पूर्ण ज्ञान संभव नहीं है। मैंने जो कुछ संतों (शिव जी तथा लोमश आदि) से सुना था, उसका वर्णन कर दिया।

भगवान् षट् ऐश्वर्य युक्त हैं, सुख के आगार हैं, करुणा की मूर्ति हैं। अतः ममत्व, अहंकार तथा अभिमान त्यागकर उनकी उपासना करनी चाहिए।

दोहा- ताहि प्रसंसि बिबिधि बिधि सीस नाइ कर जोरि ।

नोट

बचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि ॥93(क)॥

प्रभु अपने अबिबेक ते बूझउँ स्वामी तोहि ।

कृपासिंधु सादर कहहु जानि दास निज मोहि ॥93(ख)॥

व्याख्या—इस प्रकार गरुड़ ने काग की अनेक प्रकार से प्रशंसा की तथा हाथ जोड़कर प्रमाण किया और प्रेमपूर्वक मधुरवाणी में पुनः विनम्रतापूर्वक कहा कि हे स्वामी! मैं अपने अज्ञानवश आपसे पुनः पूछता हूँ। हे दयानिधि! मुझे अपना सेवक समझकर मेरी जिज्ञासा का समाधान कीजिए।

सो.- तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन ।

मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल ॥94(क)॥

दोहा- प्रभु तव आश्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग ।

कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग ॥94(ख)॥

व्याख्या—ऐसा सर्वभक्षी, अनुलंघनीय, विकराल काल का भी आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसका कारण आपका परम ज्ञानी होना है अथवा यह आपके योग का बल है? अखंड ज्ञान संपन्न व्यक्ति कालातीत होते हैं, उसी प्रकार अष्टांग योग की साधना के बल से लोग देह-सिद्ध प्राप्त कर लेते हैं, योगी योग बल से काल पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

गरुड़ का एक प्रश्न और है। वह कहता है कि हे स्वामी! आपके आश्रम में प्रवेश करते ही मेरा समस्त मोह और भ्रम भंग हो गया। इसका क्या कारण है? हे नाथ! मुझे ये सारे तथ्य प्रेमपूर्वक समझाइए।

विशेष—यहाँ गरुड़ ने काग से चार प्रश्न किए हैं—

(क) राम-भक्त होते हुए भी तुम्हें काग-शरीर क्यों मिला?

(ख) रामचरितसर की प्राप्ति कहाँ हुई?

(ग) महाप्रलय में भी आपका नाश क्यों नहीं होता है?

(घ) आपके आश्रम में प्रवेश करते ही मेरा मोह-भंग क्यों हो गया?

दोहा- पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं ।

अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित ॥95(क)॥

पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर ।

कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम ॥95(ख)॥

शब्दार्थ—पन्नगारि = सर्पों के शत्रु, गरुड़। पाट = रेशम। पाटंबर = रेशमी वस्त्र। कृमि = कीड़ा।

व्याख्या—काग का कथन है कि हे गरुड़! वेद और लोकमत दोनों दृष्टियों से यह नीति-सम्मत माना गया है कि यदि अत्यंत नीच प्राणी से अपना कल्याण होता हो तो उससे भी प्रेम करना चाहिए। सामान्यतः यह नीति है कि 'बुध नहीं करहिं अधम कर संग', किंतु यदि अपना हित होता हो तो उससे भी प्रेम करने में दोष नहीं है। यही लोक रीति है।

अपने कथन की पुष्टि के लिए वह एक दृष्टांत देते हैं कि रेशम कीड़े से बनता है, उसी रेशम से सुंदर रेशमी वस्त्र बनाए जाते हैं। यद्यपि वह कीड़ा बहुत गंदा होता है, फिर भी लोग उसे बहुत प्यार से पालते हैं।

अलंकार—1. दृष्टांत ।

2. परम अपावन प्रान सम—दृष्टांत ।

दोहा- प्रथम जन्म के चरित अब कहउँ सुनहु बिहगेस ।

सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस ॥96(क)॥

पूरुब कल्प एक प्रभु जुग कलियुग मल मूल ।

नर अरु नारि अधर्मरत सुकल निगम प्रतिकूल ॥96(ख)॥

नोट

व्याख्या—काग कहता है कि हे गरुड़! अब मैं अपने प्रथम जन्म का वर्णन करता हूँ। उसे सुनकर तुम्हारे पंच क्लेश समाप्त हो जाएँगे और प्रभु के चरणों में प्रेम भी उत्पन्न होगा। सत्ताईस कल्पों पूर्व (काग-शरीर 27 कल्पों से है) कलियुग था, जो समस्त विकारों का मूल है। उस कलियुग में सभी स्त्री-पुरुष अधर्म परायण थे तथा वैदिक रीतियों के प्रतिकूल आचरण करते थे।

दोहा— असुभ वेष भूषण धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं ।

तेइ जोगी तेइ सिद्ध न पूज्य ते कलियुग माहिं ॥98(क)॥

सो.— जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ ।

मन क्रम बचन लबार तेइ बक्ता कलिकाल महुँ ॥98(ख)॥

शब्दार्थ—भूषण = आभूषण, गहने। भच्छाभच्छ = अभक्ष्य का भक्षण करने वाले। अपकारी = दूसरों का अहित करने वाले। चार = चुगलखोर, पिशुन। बक्ता = वक्ता।

व्याख्या—जो अमंगल वेष और आभूषण धारण करते हैं, वे ही कलियुग में सिद्ध और योगी माने जाते हैं। अघोर पंथी मद्य-माँस, मल-मूत्र आदि खाते थे तथा नरमुंड माला, हड्डियाँ, चिता की भस्म आदि शरीर पर लगाते थे। ऐसे लोगों को योगी और सिद्ध समझा जाता था। जो दूसरों की निंदा करते थे, चुगलखोर थे, उनकी पूजा होती थी। जो मन, वाणी और कर्म से झूठे थे, रोचक कथाओं द्वारा श्रोताओं को प्रसन्न करने में निपुण थे, उन्हें वक्ता माना जाता था। सत्य-कथन करने वालों की उपेक्षा होती थी।

विशेष—मध्यकाल में ऐसे तथाकथित साधुओं की भीड़ देखी जा सकती थी, जिनकी वेश-भूषा साधुओं के समान थी, किंतु आचरण निम्न कोटि का था। छल-प्रपंच, झूठ-फरेब, पाषंड-धूर्तता आदि उनकी जीवनचर्या थी। धर्म के नाम पर शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन, बौद्ध, शैवों में पाशुपत, कापालिक, लकुलीश, वीर शैव, अघोरपंथी आदि मतावलम्बी विद्यमान थे। शाक्तों में आनंद भैरवी, भैरवी, भैरवी चक्र, सिद्धि मार्ग जैसी गुह्य साधनाओं का प्रचलन था। बौद्ध धर्म महायान, हीनयान, मन्त्रयान, सहजयान, वज्रयान आदि के रूप में विकसित हो रहा था। समाज में ऐसे साधुओं की भीड़ देखी जा सकती थी, जो अध्यात्म-चिंतन के लिए विरक्त नहीं हुए थे अपितु मठाधीश बनकर शिष्यों की अपार मंडली बनाकर ऐश्वर्य-भोग में ही लिप्त रहते थे। उनकी सारी चतुराई सांसारिक भोग तक ही सीमित थी। इनमें कुछ लोग सदैव नग्न रहते थे, कुछ साधु मयूर पिच्छ धारण करते थे, कुछ मस्ती के लिए सुरापन करते थे। शैव मत में तांत्रिक क्रिया और श्मशान-साधना प्रचलित थी। कापालिक वामाचारी थे। शव-साधना, कपाल-साधना, पशु-बलि, नर-बलि इनके साधना-सम्मत विधान थे। कालामुख संप्रदाय में कपाल-पात्र-भोजन, शव-भस्म-स्नान, सुरा-कुम्भ-स्नान आदि विधियाँ प्रचलित थीं। कौल-साधना में असामाजिक एवं दूषित कार्य चरम सीमा पर पहुँच गए थे। माँस भक्षण, मदिरा सेवन आदि अनेक प्रकार के निषिद्ध कार्य इनकी साधना के अंग बन गए थे। वे कीचड़ और चंदन में, श्मशान और भवन में अंतर नहीं मानते थे। मद्य, माँस, मंत्र, मैथुन और मुद्रा वज्रयान के मूल आधार थे। प्रत्येक साधक के लिए एक मुद्रा (स्त्री) रखना अनिवार्य था। कबीरदास ने भी इसी प्रकार उस युग के तथाकथित साधुओं एवं उनके द्वारा अपनाई गई समाज-विरोधी गतिविधियों का इन शब्दों में उल्लेख किया है—

इक जगम जटा धार, इक अंग बिभूति करै अपार ।

इक मुनियर एक मनहुँ लीन, ऐसे होत होत जग जात खीन ।

इक आराधैं सकति सीव, इक परदा दे दे बधैं जीव ।

इक कुलदेवी को जपहिं जाप, त्रिभुवनपति भूले त्रिविध ताप ॥ (पद-332)

दोहा— ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात ।

कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात ॥99(क)॥

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि ।

जानइ ब्रह्मा सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि ॥99(ख)॥

शब्दार्थ—बिप्र = ब्राह्मण। घात = हत्या। बादहिं = विवाद करते हैं।

व्याख्या—कलियुग में स्त्री व पुरुष ब्रह्म ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई बात नहीं करते और एक कौड़ी के लालच में ब्राह्मण तथा गुरु की हत्या तक कर डालते हैं।

नोट

शूद्र ब्राह्मणों से विवाद करते हैं कि क्या वे उनसे कुछ छोटे हैं? शूद्रों के अनुसार जो ब्रह्म को जानता है, वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है। उनका अभिप्राय है, क्योंकि वे भी ब्रह्म को जानते हैं इसलिए वे उनसे कम नहीं हैं। यह कहकर वे ब्राह्मणों को डाँटकर आँखें दिखाते हैं।

दोहा— भए बरनं संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग ।

करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग ॥100(क)॥

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक ।

तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ॥100(ख)॥

शब्दार्थ—बरन संकर = वर्णसंकर, दो भिन्न जातियों के स्त्री-पुरुषों से उत्पन्न व्यक्ति। सेतु = पुल, मार्ग, पंथ, संप्रदाय। रुज = रोग। संजुत = संयुक्त। बिरति = वैराग्य।

व्याख्या—जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि गुण-कर्माश्रित वर्ण-व्यवस्था समाप्त हो गई थी। उनका स्थान जातियों ने ले लिया था। इनमें से अनेक जातियाँ ऐसी थीं जो व्यभिचार तथा अनुलोम-प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न हुई थीं। इस प्रकार वर्ण संकर (दो भिन्न जातियों के स्त्री-पुरुषों से उत्पन्न) जातियों का बाहुल्य हो गया था। ऐसे लोग प्राचीन धर्म-ग्रंथों पर आधारित व्यवस्था का तिरस्कार करके भिन्न-भिन्न मार्ग (सेतु) पर चलते थे। उनका कहना था कि वह जिस मार्ग (सेतु) पर चल रहे हैं, वह भव-सागर पार करने का सर्वोत्तम साधन है। ऐसे तथाकथित 'सेतु' प्रायः अनाचाराश्रित होते थे, लोग धर्म के नाम पर पाप-कर्म करते थे। परिणामतः वे दुःख, भय, रोग, शोक, वियोग आदि विपत्तियों में पड़ जाते थे।

शास्त्रों में निरूपित ज्ञान-वैराग्य सम्मत भगवद्-भक्ति का मार्ग त्यागकर प्रायः ऐसे लोग मोह के वशीभूत होकर नाना प्रकार के पंथों और संप्रदायों का प्रवर्तन कर रहे थे।

विशेष—कबीरदास ने भी पंथ-निर्माता तथाकथित साधुओं की निंदा की है। उनका एक पद इस प्रकार है—

ऐसा जोग न देखा भाई, भूला फिरै लिए गफिलाई।

महादेव को पंथ चलावै, ऐसो बड़ो महंत कहावै ॥

हाट बजारै लावै तारी, काचे सिद्धहि माया प्यारी।

कब दत्ते मावासी तोरी, कब सुखदेव तोपची जोरी ॥

नारद कब बंदूक चलाई, व्यासदेव कब बंब बजाई।

करहिं लराई मति के मंदा, ई अतीत की तरकस बंदा ॥

भए बिरक्त लोभ मन ठाना, सोना पहिरि लजावै बाना।

घोरा घोरी कीन्ह बटोरा, गांव पाय जस चले करोरा ॥(रमैनी-69)

दोहा— सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड ।

मान मोह मारादि मढ ब्यापि रहे ब्रह्मंड ॥101(क)॥

तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान ।

देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान ॥101(ख)॥

व्याख्या—काग कहते हैं कि हे गरुड़! सुनो। कलियुग में छल-कपट, हठ (दुराग्रह), अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष, पाषंड, मिथ्याभियान, मोह, कामादि विकार पूरे ब्रह्मंड में परिब्याप्त हो जाएँगे। व्यक्ति सत्वगुण अथवा रजोगुण के स्थान पर तामसी वृत्तियों को बढ़ावा देने वाले जप, तप, यज्ञ, व्रत, दान आदि करेंगे। तात्पर्य यह है कि शास्त्रोक्त विधि से धार्मिक कृत्यों का दिखावा करेंगे। देश में प्रायः सूखा पड़ेगा, वर्षा कम होगी अथवा नहीं होगी। परिणामतः धान आदि वर्षा पर आश्रित अन्न नहीं पैदा होंगे।

दोहा— सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार ।

गुनउँ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार ॥102(क)॥

कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अऊ जोग ।

जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग ॥102(ख)॥

शब्दार्थ—ब्यालारि = सर्पों के शत्रु, गरुड़। मल = पाप। निस्तार = उद्धार। कृतयुग = सतयुग।

नोट

व्याख्या—काग कहता है कि हे गरुड़! सुनिए। यद्यपि कलियुग पापों और अवगुणों की खान है, फिर भी उसमें अनेक गुण भी हैं। इस युग में बहुत प्रयास के बिना ही भव-सागर से उद्धार हो जाता है। सतयुग, त्रेता और द्वापर में पूजा-पाठ, यज्ञ तथा योग-साधना से जो सद्गति प्राप्त होती है, वही गति कलियुग में केवल भगवन्नाम के स्मरण से प्राप्त हो जाती है।

तुलनीय— कृते यद् ध्यायते विष्णुं त्रेतायां यजतो मरुतैः।

द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्तनात् ॥52॥

(भागवत-12/3)

दोहा— कलियुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।

गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥103(क)॥

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।

जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्याण ॥103(ख)॥

व्याख्या—इसके पूर्व कलियुग के दोष गिनाए गए हैं। यहाँ कलियुग का गुण बताते हुए कहा गया है कि कलियुग के समान दूसरा कोई युग नहीं है, यदि मनुष्य इस तथ्य पर विश्वास करे, क्योंकि इस युग में श्रीराम के निर्मल गुणों का गान मात्र करने से बिना अन्य प्रयास (यज्ञ, जप, तप आदि) के ही भव-सागर से पार हो जाता है। धर्म के चार चरण माने गए हैं, वे हैं—सत्य, दया, तप और दान। इसी प्रकार अधर्म के भी चार चरण माने गए हैं—असत्य भाषण, हिंसा, असंतोष और द्वेष। इनमें से कलियुग में केवल दान की ही प्रतिष्ठा है। किसी भी विधि से दिए गए दान से सर्वथा कल्याण ही होता है।

तुलनीय—तमः कृते प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानकर्म च द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।

(सृष्टिखण्ड, अध्याय-18/37)

दोहा— हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।

भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं ॥104(क)॥

तेहिं कलिकाल बरष बहु बसेउँ अवध बिहगेस।

परेउ दुकाल बिपति बस तब मैं गयउँ बिदेस ॥104(ख)॥

व्याख्या—सभी प्रकार के गुण और दोष भगवान् की माया की उपज हैं। दोष और गुण दोनों मायाकृत हैं। वे भगवद्-भक्ति के बिना नहीं जाते। यह समझकर निष्काम भाव से ईश्वर की आराधना करनी चाहिए। यहाँ से कलिधर्म-निरूपण समाप्त हुआ।

काग पुनः कहता है कि हे गरुड़! उस कलियुग में मैं अनेक वर्षों तक अवध में रहा। कुछ समय के पश्चात् दुर्भिक्ष अथवा अकाल पड़ा। तब मैं विपत्तिवश अवध को छोड़कर विदेश चला गया। अकाल पड़ने पर भोजनादि का अभाव हो जाता है और लोग अकाल ही काल-कवलित होने लगते हैं।

दोहा— मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह।

हरिजन द्विज देखें जरउँ करउँ विष्णु कर द्रोह ॥105(क)॥

सो.— गुर नित मोहि प्रबोध दुखित देखि आचरन मम।

मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति कि भावई ॥105(ख)॥

शब्दार्थ—खल = दुष्ट। मल संकुल मति = दोष तथा विकारग्रस्त बुद्धि। हरिजन = भगवद्-भक्त। जरउँ = ईर्ष्या करता था। प्रबोध = उपदेश देना।

व्याख्या—मुझमें दुष्टता, विकारग्रस्त बुद्धि, नीचता, मोह आदि अनेक अवगुण थे। अतः मैं भगवद्-भक्तों तथा ब्राह्मणों को देखकर उनसे ईर्ष्या करता था। विष्णु का द्रोही था, वैष्णवों से वाद-विवाद करता था।

गुरु मेरे इस अनैतिक आचरण को देखकर बहुत दुःखी होते थे तथा सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देते थे। किंतु मुझ पर उनके वचनों का विपरीत प्रभाव पड़ता था। गुरु पर भी मुझे बहुत क्रोध आ जाता था, क्योंकि दंभी व्यक्ति को नीति अथवा नैतिक वचन कभी भी अच्छे नहीं लगते हैं।

दोहा— एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।

गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम ॥106(क)॥

नोट

सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस ।

अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस ॥106(ख)॥

व्याख्या—एक दिन मैं शिव-मंदिर में उनके नाम का जप कर रहा था, उसी समय मेरे गुरु आ गए। मैंने अभिमानवश उठकर उनको प्रणाम नहीं किया। गुरु अत्यंत दयालु थे, अतः उन्होंने कुछ भी नहीं कहा और उनके हृदय में रंचमात्र का भी क्रोध नहीं आया। किंतु गुरु का अपमान जघन्य पाप था। अतः शिव जी उसे सहन नहीं कर सके।

दोहा— हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप ।

कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप ॥107(क)॥

करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि ।

बिनय करत गदगद स्वर समुझि घोर गति मोरि ॥107(ख)॥

व्याख्या—शिव जी के भयंकर शाप को सुनकर गुरु शोक से चीत्कार कर उठे तथा मुझे काँपता हुआ देखकर उनके हृदय में असीम वेदना उत्पन्न हो गई। उन्होंने शिव जी को साष्टांग प्रणाम किया और उनके सम्मुख हाथ जोड़कर गदगद वाणी में विनती करने लगे, क्योंकि वह मेरी अधोगति सुनकर बहुत दुःखी हो गए थे।

दोहा— सुनि बिनती सर्वग्य सिव देखि बिप्र अनुरागु ।

पुनि मंदिर नभबानी भइ द्विजबर बर मागु ॥108(क)॥

जौं प्रसन्न प्रभु मो पर नाथ दीन पर नेहु ।

निज पद भगति देइ प्रभु पुनि दूसर बर देहू ॥108(ख)॥

व्याख्या—सर्वज्ञ शिव ने विप्र की विनती सुनकर और उसका प्रेम देखकर, मंदिर में पुनः आकाशवाणी की कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! वरदान माँगो। तब विप्र ने कहा कि हे प्रभु! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और इस दीन पर स्नेह है तो कृपा करके मुझे अपने चरणों में भक्ति प्रदान कीजिए, तत्पश्चात् दूसरा वरदान यह दीजिए।

दोहा— तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान ।

तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान ॥108(ग)॥

संकर दीनदयाल अब एहि पर होहु कृपाल ।

साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल ॥108(घ)॥

व्याख्या—विप्र ने कहा कि हे प्रभु! यह जड़ जीव आपकी माया के वशीभूत होकर निरंतर भटकता रहता है। अतः हे दयानिधि भगवान्! इस शिष्य पर क्रोध न कीजिए। हे दीन दयाल शिव जी! अब इस पर ऐसी दया कीजिए कि आपके शाप का अंत अल्प काल में ही हो जाए अर्थात् यह दस हजार वर्षों तक सर्प योनि में न पड़ा रहे।

दोहा— सुनि सिव बचन हरषि गुर एवमस्तु इति भाषि ।

मोहि प्रबोधि गयउ गृह संभु चरन उर राखि ॥109(क)॥

प्रेरित काल बिंदि गिरि जाइ भयउँ मैं ब्याल ।

पुनि प्रयास बिनु सो तनु तजेउँ गाँ कछु काल ॥109(ख)॥

व्याख्या—शिव जी की उपर्युक्त वाणी सुनकर गुरु बहुत प्रसन्न हुए और कहा—‘एवमस्तु’ अर्थात् ऐसा ही होगा। तत्पश्चात् मुझे उपदेश देकर, शिव के चरणों को हृदय में धारण करके गुरु अपने घर चले गए।

काल की प्रेरणा से मैं विंध्याचल में जाकर सर्प हो गया। कुछ कालोपरांत मैंने बिना प्रयास के अर्थात् बिना कष्ट के ही उस शरीर को त्याग दिया।

दोहा— जोइ तनु धरउँ तजेउँ पुनि अनायास हरिजान ।

जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान ॥109(ग)॥

सिवैं राखी श्रुति नीति अरु मैं नहिं पावा क्लेस ।

एहि बिधि धरेएँ बिबिधि तनु ग्यान न गयउ खगेस ॥109(घ)॥

नोट

व्याख्या—काग कहते हैं कि हे हरि के वाहन अर्थात् गरुड़ जी! इस प्रकार मैं जो शरीर धारण करता था, बिना जन्म-मरण के कष्ट के ही सरलतापूर्वक उसे त्याग देता था। मेरा शरीर-परिवर्तन उसी प्रकार सहज ढंग से होता था, जिस प्रकार कोई व्यक्ति पुराने वस्त्र त्यागकर नए वस्त्र धारण कर लेता है।

इस प्रकार शिव जी ने वेद-नीति की रक्षा की और मुझे भी जन्म-मरण संबंधी क्लेश का अनुभव नहीं हुआ। इसी प्रकार मैंने अनेक योनियों में शरीर धारण किया, किंतु शिव जी के अनुग्रह से मेरा ज्ञान बना रहा।

अलंकार— उदाहरण।

तुलनीय— द्वितीय पंक्ति—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यानि संयाति नवीन देही ॥

(गीता-2.22)

दोहा— गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग।

रघुपति जस गावत फिरउँ छन छन नव अनुराग ॥110(क)॥

मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन।

देखि चरन सिरु नायउँ बचन कहेउँ अति दीन ॥110(ख)॥

व्याख्या—मुझे गुरु के इन वचनों का स्मरण करके कि तुम्हारे हृदय में भी राम के चरणों में अविरल प्रीति होगी ('अविरल भगति राम पद होई' तथा 'राम भगति उपजिहि उर तोरे'), मेरे मन में सगुण राम के चरण-कमलों में प्रेम बढ़ता जा रहा था। मैं दशरथ-सुत श्रीराम के पावन यश का गान करता हुआ विचरण कर रहा था और उनके प्रति निरंतर नित-नूतन प्रेम में वृद्धि हो रही थी।

भ्रमण करते हुए मैं सुमेरु पर्वत पर पहुँच गया। उसके शिखर पर वट-वृक्ष की छाया में लोमश ऋषि विराजमान थे। उनको देखकर मैंने उनके चरणों में प्रमाण किया और अत्यंत विनम्र वाणी में उनसे निवेदन किया।

विशेष—लोमस (लोमश ऋषि)—ये ब्रह्मा जी के पुत्र हैं तथा चिरंजीवी हैं। एक ब्रह्मा के मरने पर ये अपना एक रोम (बाल) उखाड़कर फेंक देते हैं। इसीलिए इनका नाम लोमश (लोम अथवा रोम तोड़ने वाला) पड़ा।

दोहा— सुनि मम बचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज।

मोहि सादर पूँछत भए द्विज आयहु केहि काज ॥110(क)॥

तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सबग्य सुजान।

सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान ॥110(ख)॥

व्याख्या—हे खगराज! मेरे अत्यंत विनम्र और कोमल वचनों को सुनकर दयालु लोमश ऋषि ने मुझसे आदरपूर्वक पूछा कि हे विप्र! तुम यहाँ किस प्रयोजन से आए हो? तब मैंने कहा कि हे दयानिधि! आप सर्वज्ञ और सुजान हैं, अतः आप कृपा करके मुझे सगुण ब्रह्म की आराधना का उपदेश दीजिए।

दोहा— बारंबार सकोप मुनि करइ निरूपन ग्यान।

मैं अपने मन बैठ तब करउँ बिबिधि अनुमान ॥111(क)॥

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान।

मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान ॥111(ख)॥

शब्दार्थ—परिछिन्न = घिरा हुआ, सीमित। जड़ = अज्ञानोपहित।

व्याख्या—विप्र तथा लोमश मुनि में वाद-विवाद हो जाने पर, वह क्रोधपूर्वक बार-बार अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने लगे और विप्र के मन में अन्य अनेक प्रकार के प्रश्न उठने लगे। वह विचार करने लगा कि द्वैतभाव के बिना क्रोध कैसे और किस पर आएगा, बिना अज्ञान के द्वैत-बुद्धि कैसे आ सकती है तथा माया से आवृत्त, सीमित तथा अज्ञानोपहित जीव ईश्वर के समान कैसे हो सकता है?

विशेष—जब तक व्यक्ति दूसरे को अपने से पृथक् नहीं मानेगा, तब तक क्रोध किस पर करेगा? अज्ञान से द्वैत होता है और द्वैत से क्रोध। द्वैत नानात्व दृष्टि से होता है। नानात्व दृष्टि ही अज्ञान है। लोमश मुनि ने उसे उपदेश दिया था कि 'सो तैं ताहि तोहि नहि भेदा', अर्थात् तुम ईश्वर हो—तत्त्वमसि। तुम्हारे और ईश्वर में कोई भेद नहीं

नोट

है-अयमात्मा ब्रह्म। तात्पर्य यह है कि जब सभी प्राणी ईश्वर ही हैं-‘देख ब्रह्म समान सब माहीं’, तब कौन किस पर क्रोध करेगा? अतः लोमश के कथन में विरोधाभास है। विप्र यह भी सोचता है कि ईश्वर स्वतंत्र है, जीव माया के वश में और परतंत्र है। ईश्वर सर्वज्ञ है, जीव अल्पज्ञ है। अतः वह ईश्वर कैसे हो सकता है? इस प्रकार उसे ईश्वर-जीव के भेद स्मरण हो आए।

यहाँ ईश्वर, जीव और माया-तीनों की स्थिति पृथक्-पृथक् दिखाई गई है। इस प्रकार अद्वैतवाद का खंडन और विशिष्टाद्वैतवाद का प्रतिपादन किया गया है।

अलंकार—प्रत्यक्षप्रमाण, वक्रोक्ति तथा विनोक्ति।

दोहा— तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ।

सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ ॥112(क)॥

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ॥112(ख)॥

व्याख्या—मुनि के शाप से मैं तुरंत काग हो गया। शापवश वही शरीर काग का शरीर हो गया, शरीर को त्यागकर गर्भवास के उपरान्त दूसरा शरीर धारण की आवश्यकता न पड़ी। काग होने पर मैंने लोमश ऋषि को पुनः प्रणाम किया। यह बिदाई का प्रणाम था। तत्पश्चात् रघुवंश शिरोमणि श्रीराम का स्मरण करते हुए प्रसन्न-भाव से उड़ चला। पुनः प्रणाम करने में यह व्यंजना भी हो सकती है कि आप धन्य हैं। बनते थे अभेदवादी और व्यवहार किया भेदवादियों जैसा।

संभवतः इस घटना को सुनकर पार्वती को आश्चर्य हुआ होगा। अतः शिव जी कहते हैं कि हे उमा! जो एकनिष्ठ भाव से राम की भक्ति करते हैं तथा काम, अहंकार, क्रोध से रहित हैं, वे सभी प्राणियों में अपने प्रभु का अस्तित्व मानते हैं—‘सीयराम मय सब जग जानी।’ अतः वे किससे विरोध करें? तात्पर्य यह है कि उनकी दृष्टि में किसी भी व्यक्ति का विरोध करना, राम का ही विरोध करना होगा।

तुलनीय—ईशावास्योपनिषद् में भी कहा गया है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥6॥

दोहा— सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान।

कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान ॥113(क)॥

जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत।

ब्यापिहि तैंह न अबिद्या जोजन एक प्रजंत ॥113(ख)॥

शब्दार्थ—अमान = अभिमान रहित। कामरूप = इच्छानुसार रूप परिवर्तन करने की क्षमता। निधान = खजाना। प्रजंत = पर्यंत, तक।

व्याख्या—लोमश ने यह भी आशीर्वाद दिया कि तुम सदैव राम के प्रिय रहोगे। श्रीराम तुमसे प्रेम करते रहेंगे और तुम श्रीराम से प्रेम करते रहोगे। तुम समस्त गुणों से संपन्न तथा अभिमान रहित रहोगे। तुम इच्छानुसार अपना रूप-परिवर्तन कर सकोगे। मृत्यु तुम्हारे वश में रहेगी अर्थात् जब तुम्हारी इच्छा होगी तभी तुम्हारी मृत्यु होगी, प्रलय काल में भी तुम्हारा विनाश नहीं होगा। तुम ज्ञान और वैराग्य की निधि बनोगे। तुम श्रीभगवान का ध्यान करते हुए जिस आश्रम में निवास करोगे, उसके चतुर्दिक एक योजन (चार कोस अथवा 12 किलोमीटर) तक अविद्या माया का प्रवेश नहीं हो सकेगा।

दोहा— ताते यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह।

निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल संदेह ॥114(क)॥

भगति पछ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप।

मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप ॥114(ख)॥

नोट

व्याख्या—मुझे यह काग शरीर इसलिए प्रिय है, क्योंकि मुझे इसी शरीर से श्रीराम के चरणों में स्नेह पैदा हुआ, अपने प्रभु का दर्शन मिला तथा मेरे समस्त संदेह समाप्त हो गए।

भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए वह कहता है कि मैंने हठपूर्वक भक्ति का पक्ष ग्रहण किया, जिससे लोमश ऋषि ने मुझे शाप दिया, किंतु अंततः मुझे ऐसे वरदान प्राप्त हुए, जो मुनियों को भी दुर्लभ हैं। यह भक्ति की ही महिमा है।

दोहा— पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर।

न तु कामी बिषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर ॥115(क)॥

सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि।

बिबस होइ हरिजान नारि बिघ्नु माया प्रगट ॥115(ख)॥

व्याख्या—जो वैराग्य संपन्न और धीर बुद्धि के पुरुष हैं, वही स्त्री का त्याग कर सकते हैं, किंतु जो भगवद्-भक्त नहीं हैं तथा कामी और विषयी हैं, वे स्त्री का त्याग नहीं कर सकते। किंतु हे गरुड़ जी! जो वैराग्य संपन्न और धीर बुद्धि हैं, वे भी मृग के समान सुंदर नेत्रों वाली और चंद्रमुखी स्त्री को देखकर उसके प्रति आकृष्ट हो जाते हैं क्योंकि विश्व में माया स्त्री रूप में ही प्रकट है। स्त्री माया का ही रूप है और माया के वश में बड़े-बड़े ज्ञानी और विरागी भी हो जाते हैं, जैसे—नारद और विश्वामित्र।

विशेष—जो वैराग्य संपन्न हैं तथा जिनमें स्त्री-त्याग की शक्ति है, यदि वह भक्त नहीं हैं तो वे नारी को देखकर विकल हो जाते हैं। भक्तों पर नारी (माया) का प्रभाव नहीं पड़ता है। स्त्रियाँ यद्यपि अबला कही जाती हैं, फिर भी वे अपने रूपाकर्षण से बड़े-बड़े मुनियों को भी अपने वश में कर लेती हैं, क्योंकि विश्व को रचने वाली माया स्त्री रूप में सर्वत्र प्रकट है। नारी माया का स्थूल रूप है।

अलंकार—1. विभावना (क्योंकि स्त्री अबला होते हुए भी सबल पुरुषों को अपने वश में कर लेती है)।

2. नारि बिघ्नु माया प्रगट-निदर्शना।

3. तीसरी पंक्ति—अर्थांतरन्यास।

दोहा— यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ।

जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ ॥116(क)॥

औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन।

जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन ॥116(ख)॥

व्याख्या—श्री रघुनाथ का यह गुप्त चरित जल्दी किसी की समझ में नहीं आता। यदि कोई व्यक्ति श्रीराम के अनुग्रह से उसे जान ले, तब उसे स्वप्न में भी मोह नहीं होता। ज्ञान और भक्ति के दो भेद ऊपर बताए गए हैं—1. ज्ञानादि पुरुष हैं और माया तथा भक्ति स्त्री हैं, 2. भक्ति श्री रघुनाथ को प्रिय है, माया नर्तकी है। इनके अतिरिक्त ज्ञान और भक्ति में एक अंतर और है। हे चतुर गरुड़ जी! उस अंतर को भी समझ लीजिए। उसके सुनने से श्रीराम के चरणों में अविरल, कभी न क्षीण होने वाली भक्ति सुलभ हो जाएगी।

दोहा— जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।

बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाए ॥117(क)॥

शब्दार्थ—लाइ = लगाकर। सिरावै = ढंडा करें।

व्याख्या—मक्खन निकाल लेने पर उसे योगाग्नि प्रकट करके उसमें शुभ और अशुभ कर्मों (सात्विक तथा राजस-तामस कर्मों) का ईंधन लगाकर अग्नि को प्रज्वलित करें। इस प्रक्रिया से मक्खन से घृत निकल आएगा और ममत्व रूपी मल (छाँछ) जल जाएगा। शुभाशुभ दोनों प्रकार के कर्म जलाने के लिए कहा गया है, क्योंकि ये स्वर्ग-नरक आदि में घुमाते रहते हैं। इनके जलने पर ही मुक्ति हो सकती है। अतः इनको जला देना चाहिए। अष्टांग योग ही अग्नि को प्रकट करना है। उसमें दोनों प्रकार के कर्म रूप ईंधन को लगाने से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है।

अलंकार—सांगरूपक।

दोहा- तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।

नोट

चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ। ॥117(ख)॥

शब्दार्थ—विषद = शुद्ध। दिआ = दीपक। दिअटि = दीपाधार, जिस पर दीपक रखा जाता है।

व्याख्या—घी दीपक में रखा जाता है, दीपक दीवट पर रखा जाता है, जिससे वह गिरे नहीं। तात्पर्य यह है कि विज्ञान रूपी बुद्धि अर्थात् विज्ञान का निरूपण करने वाला बुद्धि को शुद्ध घृत (ज्ञान) प्राप्त हो गया, उसे चित्त रूपी दीपक में भरकर समत्व-भाव रूपी दृढ़ दीपाधार पर दीपक को रख दें। समत्व का तात्पर्य यह है चित्त में वैषम्य-भाव न आने पाए। दीपक को सुरक्षित स्थान पर रख दिया। वह बाह्य समाधि हुई।

विशेष—जब शुद्ध आत्म तत्व की पहचान हो गई, ज्ञान-घृत मिल गया, तब विज्ञान का निरूपण करने वाली अर्थात् आत्मा-परमात्मा की वृत्ति एक में मिलाने वाली बुद्धि का काम आया, उस पर समता रूपी दीअट को आधार बनाकर चित्त रूपी दीपक में ज्ञान भरकर रख दिया। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार वृत्ति एक में मिलाकर स्थिर होना ही समता रूपी दीपाधार है।

दोहा- तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।

तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि ॥117(ग)॥

शब्दार्थ—तीनि अवस्था = जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। तीनि गुन = सत्, रज, तम। तूल = रुई। तुरीय = तुरीयावस्था (यह शब्द + चतुर ईयट् के योग से बना है, 'च' और 'ट्' का लोप हो गया; इस प्रकार तुरीय शेष रह गया)। सुगाढ़ि = स्थूल और मोटी।

व्याख्या—दीपक हो गया, घृत हो गया। अब बत्ती चाहिए, जिससे दीपक को जलाया जा सके। बत्ती के लिए रुई चाहिए। रुई कपास में होती है, उससे निकालना होता है।

यहाँ तीन अवस्थाएँ कपास के फाल अथवा बोड़री पर के छिलके हैं और तीन गुण भीतर के बिनौले हैं। तुरीयावस्था रुई है। कपास में तीन फाल होते हैं, जिनके ऊपर छिलका होता है। तीनों फालों में बिनौला होता है। जाग्रत सत्व प्रधान है, स्वप्न रजः प्रधान है और सुषुप्ति तम प्रधान है। तीनों गुणों और तीनों अवस्थाओं के निकल जाने पर यह ज्ञान होगा कि हम ब्रह्मस्वरूप चिन्मय अविनाशी हैं। तुरीयावस्था आत्म-स्वरूप की उपलब्धि की अवस्था है। यही रुई है। उसे भी सँवारकर अर्थात् तुरीयावस्था के संस्कारों को भली प्रकार से घनीभूत कर, यही बाती है, उसे दीपक में रख दे।

सो.- एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय।

जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब ॥117(घ)॥

शब्दार्थ—लेसै = जलावे, प्रज्वलित करे। बिग्यानमय = अपरोक्ष ज्ञान से युक्त। सलभ (सं. शलभ) = पतिंगे।

व्याख्या—उपर्युक्त विधान से ज्ञान रूपी दीपक को प्रज्वलित कर दें। यह ज्ञान-दीप तेजोमय तथा अपरोक्ष ज्ञान-संपन्न होता है। इसके निकट पहुँचते ही मद, मात्सर्य आदि पतिंगे जल जाएँगे।

विशेष—इस ज्ञान-दीपक प्रसंग में ज्ञान की सात भूमियाँ बताई गई हैं। योगवाशिष्ठ में ज्ञान की सात भूमियों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहता।

विचारणा द्वितीया स्यात्तृतीया तनुमानसा ॥

सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनाभिका।

पदार्थाथः विनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृताः ॥

1. शुभेच्छा—परम तत्व की इच्छा, सत्य को पाने की कामना।

2. विचारणा—गुरु द्वारा प्राप्त उपदेश का चिंतन-मनन।

3. तनुमानसा—मन का क्षीण होना।

4. सत्त्वापत्ति—शुद्ध अंतःकरण, जिसमें सत्वगुण प्रधान हो जाए।

5. असंसक्ति—विषयों से सारी आसक्ति का हट जाना।

नोट

6. परार्थाभाविनी—जो ज्ञानभूमि परब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी की भावना नहीं करती।

7. तुर्यगा—यहाँ जीव तुरीयावस्था में पहुँच जाता है। उसे सब ब्रह्ममय प्रतीत होता है।

यही सात भूमियाँ ज्ञानदीपक प्रसंग में इस प्रकार बताई गई हैं—

1. सात्त्विक श्रद्धा.....अचारा—शुभेच्छा।

2. तेइ तृन.....निजदासा—विचारणा।

3. परमधर्ममय.....जमावै—तनुमानसा।

4. मुदिता.....सुपुनीता—सत्वापत्ति।

5. जोग अगिनि.....जरिजाइ—असंसक्ति।

6. तब विज्ञान रूपिनी.....बनाइ—परार्थाभाविनी।

7. एहि बिधि.....सलभ सब—तुर्यगा।

दोहा— तब फिर जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति क्लेश।

हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस ॥118(क)॥

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।

होइ घुनाच्छर न्याय जौ पुनि प्रत्यूह अनेक ॥118(ख)॥

शब्दार्थ—संसृति = जन्म, जरा, मरण आदि। दुस्तर = कठिन। घुनाच्छर न्याय = लकड़ी में बैठे घुन के द्वारा लकड़ी काटते-काटते दैवयोग से अक्षर बन जाना। प्रत्यूह = बाधा।

व्याख्या—ज्ञान विमुख हो जाने पर जीव विषयी (बद्ध) ही रह जाता है। परिणामतः वह जन्म, जरा, मरण आदि संबंधी क्लेश भोगता रहता है। इस प्रकार हे पक्षिराज! भगवान् की माया अत्यंत कठिन है, उससे पार पाना दुष्कर है, और ज्ञान-मार्ग कहने में, समझने में तथा साधना में बहुत कठिन है। तात्पर्य यह है कि जीव-ब्रह्म एक ही हैं, यह कहना कठिन है। यदि कोई समझाने का प्रयत्न करे तो उसे समझना और भी कठिन है। यदि किसी प्रकार से समझ में भी आ जाए तो उसकी साधना अत्यंत कठिन है। यदि किसी प्रकार घुनाक्षर न्याय से ज्ञान-प्राप्ति हो भी जाए, तब भी उस मार्ग में अनेक विघ्न-बाधाएँ हैं। जैसे घुन द्वारा लकड़ी काटते-काटते दैवयोग से कोई अक्षर बन जाए तो इसका तात्पर्य यह नहीं कि घुन जान-बूझकर अक्षर बना रहा था। अक्षर का बनना संयोगमात्र है। उसी प्रकार यदि कदाचित् ज्ञान-मार्ग से सिद्धि प्राप्त हो भी जाए तो अनेक बाधाएँ हैं, क्योंकि माया अनेक प्रकार के उपद्रव करती रहती है, वह ऋद्धि-सिद्धि को प्रेरित करती है, बुद्धि को अनेक प्रकार के प्रलोभन देती है, आँचल की वायु से ज्ञान-दीपक को बुझाने की चेष्टा करती है और अंततः इन्द्रियों के देवता विघ्न उपस्थित करते हैं। यही ज्ञान-मार्ग की बाधाएँ हैं।

तुलनीय— हरि माया अति दुस्तर न जाइ बिहगेस—

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा

यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः। (मानस, बाल., श्लोक—61)

दोहा— सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।

भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि ॥119(क)॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।

अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य ॥119(ख)॥

व्याख्या—सेवक-स्वामी के भाव के बिना संसार-सागर से पार पाना संभव नहीं है। हे उरगारि! इस सिद्धांत को ध्यान में रखकर श्रीराम के चरण-कमलों की उपासना कीजिए।

श्रीराम में इतनी शक्ति है कि वह चेतन को जड़ और जड़ को चेतन करने की क्षमता रखते हैं। ऐसे समर्थ श्रीराम की जो उपासना करते हैं, वे धन्य हैं।

विशेष—1. सेवक सेव्य भाव—भक्ति के चार भाव माने गए हैं—दास्य, सख्य, माधुर्य और वात्सल्य। तुलसीदास दास्य भाव के उपासक थे। इसी की पुष्टि इस कथन द्वारा की गई है।

नोट

2. जो चेतन कहँ जड़ करइ-चेतन जीव है-‘चेतन अमल सहज सुखरासी’, किंतु माया के वशीभूत होने पर वह जड़वत् आचरण करने लगता है और माया जड़ है-‘जड़-चेतनहि ग्रंथि परि गई’ में ‘जड़’ शब्द माया के लिए ही आया है। वह चेतन जीव को बाँध लेती है। दूसरा उदाहरण है-नारद चेतन हैं, किंतु वह इतने जड़ हो गए कि अपने स्वामी ईश्वर पर ही क्रोध कर बैठे, और उनको शाप दे दिया। ध्रुव पाँच वर्ष के अज्ञानी (जड़) बालक थे। वह प्रभु की स्तुति करना चाहते थे, किंतु उनको ज्ञान ही नहीं था। भगवान् विष्णु ने अपने शंख से उनके गाल का स्पर्श कर लिया अतः वह सर्वशास्त्रों के ज्ञाता हो गए।



नोट्स

ध्रुव पाँच वर्ष के अज्ञानी (जड़) बालक थे। वह प्रभु की स्तुति करना चाहते थे, किंतु उनको ज्ञान ही नहीं था। भगवान् विष्णु ने अपने शंख से उनके गाल का स्पर्श कर लिया अतः वह सर्वशास्त्रों के ज्ञाता हो गए।

दोहा- ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।

कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं ॥120(क)॥

बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।

जय पाइअ से हरि भगति देखु खगेस बिचारि ॥120(ख)॥

शब्दार्थ-ब्रह्म - यहाँ वेद से तात्पर्य है। पयोनिधि = क्षीरसागर। मंदर = मंदराचल। बिरति = वैराग्य। चर्म = ढाल। असि = तलवार।

व्याख्या-वेद-पुराणादि क्षीरसागर हैं, ज्ञान मंदराचल है, संत देवता हैं। जिस प्रकार समुद्र-मंथन के द्वारा देवताओं ने उससे अमृत निकाला था, जिसे पीकर वे अमर हो गए और राक्षसों से युद्ध किया, उसी प्रकार संत जन वेद-पुराणादि से कथा रूपी अमृत निकालते हैं, जिसकी भक्ति ही मधुरता है। तात्पर्य यह है कि राम-कथा वेदों का सार है। वैराग्य रूपी ढाल और ज्ञान रूपी तलवार के द्वारा मद, लोभ, मोह आदि शत्रुओं का वध करके जो विजय प्राप्त होती है, वही हरि की भक्ति है।

विशेष-1. यहाँ मोह-विवेक युद्ध की व्यंजना है। एक ओर मोह राजा है, कामादि उसके सहायक हैं; दूसरी ओर विवेक राजा है, वैराग्यादि उसके सहायक हैं। दोनों पक्षों में अनादि काल से युद्ध हो रहा है। इसी द्वन्द्व में ज्ञानेन्द्रियाँ-कर्मेन्द्रियाँ, प्राण आदि प्रजा पीड़ित रहती है। जब कथामृत-पान से विवेक का पक्ष दृढ़ होता है, तब मोहादि मार डाले जाते हैं। विवेक रूपी राजा की विजय होती है। उसका अकंटक राज्य स्थापित होता है।

2. इसी तथ्य की व्यंजना ‘विनयपत्रिका’ में सांगरूपक के द्वारा की गई है। मोह रावण है, उसका भाई कुंभकर्ण अहंकार है तथा मेघनाद काम है। लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर, क्रोध देवान्तक, द्वेष दुर्मुख, दंभ खर, कपट अकंपन तथा दर्प, मद आदि अन्य राक्षस हैं। विभीषण जीव है, जो इन दुष्टों के मध्य चिंताग्रस्त निवास करता है। श्रीराम ने इसीलिए दशरथ-कौशल्या के यहाँ जन्म लिया। यहाँ विवेक दशरथ हैं, शुभ भक्ति ही कौशल्या हैं तथा ज्ञान सुग्रीव है। इनकी सहायता से मोह पक्ष का विनाश हुआ-

मोह दसमौलि, तद्भ्रात अहंकार, पाकारिजित काम विस्रामहारी।

लोभ अतिकाय, मत्सर महोदय दुष्ट, क्रोधपापिष्ठ विबुधांतकारी ॥

द्वेष दुर्मुख, दंभ खर, अकंपन कपट दर्प मनुजाद, मद-सूलपानी।

अमितबल परमदुर्जय, निसाचर-निकर सहित षड्वर्ग गो-जातुधानी ॥

×

×

×

×

ग्यान-अवधेस-गृह, गोनिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभार-हर्ता।

भक्त-संकष्ट अवलोकित पितु-वाक्य-कृत गमन किय गहन वैदेहि-भर्ता ॥ (पद-58)

अलंकार-सांगरूपक।

नोट

तुलनीय—सचित विराग विवेक नरेसू। बिपिन सोहावन पावन देसू ॥

भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदरि रानी ॥

दोहा— एक व्याधि बस न मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।

पीड़हिं संतत जीव कहूँ सो किमि लहै समाधि ॥121(क)॥

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।

भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान ॥121(ख)॥

शब्दार्थ—असाधि = असाध्य, जिनका उपचार न हो। संतत = निरंतर। समाधि = अष्टांग योग की अंतिम अवस्था, मन का एकाग्र होकर प्रभु में लगना। भेषज = दवा।

व्याख्या—रोग तीन प्रकार के माने गए हैं—सुसाध्य, कष्टसाध्य और असाध्य। ऊपर जिन मानसिक रोगों (मोह, काम, क्रोध, लोभ विषय मनोरथ, ममता, ईर्ष्या, हर्ष-विषाद, जलन, मन की कुटिलता, दुष्टता, अहंकार, दंभ, कपट, पाषंड, तृष्णा, त्रिविध एषणा, मत्सर, अविवेक) को गिनाया गया है, वे सभी असाध्य रोग हैं। इनमें से किसी एक रोग का वशीभूत व्यक्ति भी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, जबकि यहाँ तो अनेक असाध्य रोग हैं जो जीव को निरंतर यातना देते रहते हैं। अतः वह समाधि दशा (मन का एकाग्र होकर प्रभु में लगना) को कैसे प्राप्त हो सकता है? और जब तक मन एकाग्र होकर प्रभु में नहीं लगता, तब तक सुख कैसे प्राप्त हो सकता है?

उपर्युक्त मानसिक रोगों के उपचार हेतु नियम, धर्म, सदाचार, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान आदि करोड़ों औषधियाँ हैं। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास, दर्शन आदि में इन औषधियों के विवरण भरे पड़े हैं, फिर भी हे हरि के वाहन गरुड़ जी! रोग समाप्त नहीं हो रहे हैं।

अलंकार—अंतिम पंक्ति—विशेषोक्ति (कारण के होते हुए भी कार्य का न होना)।

दोहा— बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।

बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ॥122(क)॥

शब्दार्थ—बारि = जल। सिकता = बालू। अपेल = अटल।

व्याख्या—जल मथने से घी भले ही निकल आवे और बालू से तेल भले ही निकल आवे (जो असंभव है), किंतु भगवद्-भक्ति के बिना मुक्ति संभव नहीं है। यह सिद्धांत अटल है।

विशेष—यहाँ तक नौ असंभव दृष्टांत दिए गए हैं। नौ संख्या की सीमा है।

अलंकार—1. भुशुण्डि ने अपने अनुभव से प्रमाण दिया है, अतः यहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण अलंकार हुआ।

2. असंभव बातें स्वयं सिद्ध हैं, अतः प्रौढोक्ति अलंकार हुआ।

दोहा— मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।

अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रवीन ॥122(ख)॥

श्लोक— विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।

हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥122(क)॥

शब्दार्थ—मसकहि = मच्छड़ को। बिरंचि = ब्रह्मा। अजहि = ब्रह्मा को। विनिश्चितं = निश्चय किया हुआ। वदामि = कहता हूँ। वचांसि = वचन। दुस्तरं = कठिनाई से पार जाने योग्य।

व्याख्या—काग कहता है कि प्रभु में इतना सामर्थ्य है कि वह मच्छर को ब्रह्मा बना दें और ब्रह्मा को मच्छर से भी छोटा बना दें। मच्छर सभी जीवों में सबसे छोटा है और सृष्टि रचयिता ब्रह्मा सबसे बड़े हैं। तात्पर्य यह है कि प्रभु असंभव को भी संभव कर सकते हैं। वह 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः' हैं। ऐसा विचार कर समस्त संदेहों को त्यागकर चतुर जन श्रीराम की उपासना करते हैं।

मैं आपसे निश्चयपूर्वक कहता हूँ। मेरी वाणी अन्यथा नहीं हो सकती, अर्थात् मेरा कथन अक्षरशः सत्य है। जो व्यक्ति भगवान् की उपासना करते हैं, वे अति दुस्तर भवसागर को पार कर लेते हैं, अर्थात् मुक्त हो जाते हैं।

दोहा- आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब बिधि हीन ।

नोट

निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन ॥123(क)॥

नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कसु गोइ ।

चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोई ॥123(ख)॥

व्याख्या-यद्यपि मैं जाति, धर्म, ज्ञानादि से सर्वथा रहित था, फिर भी आज मेरा जीवन धन्य हो गया, सार्थक हो गया। मैं चिरंजीवी बन गया और मेरा अहर्निश श्रीरामोपासना में व्यतीत होता है। हे नाथ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार श्रीरामचरित कहा, कुछ भी गोपन नहीं रखा तथापि उसका सम्यक् वर्णन नहीं कर सका, क्योंकि प्रभु का चरित समुद्र के समान अथाह और गंभीर है। कोई भी व्यक्ति उसकी थाह नहीं पा सकता।

दोहा- जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल ।

सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल ॥124(क)॥

सुनि भुसुंड़ि के बचन सुभ देखि राम पद नेह ।

बोलेउ प्रेम सहित गिरा गरुड़ गित संदेह ॥124(ख)॥

शब्दार्थ-भेषज = औषध। त्रय सूल = दैहिक, दैविक, भौतिक ताप।

व्याख्या-जिनका नाम सांसारिक रोगों की औषधि तथा दैहिक, दैविक, भौतिक घोर तापों का हरण करने वाला है, ऐसे दयालु प्रभु मुझ पर तथा आप पर सदैव प्रसन्न रहें। भुशुण्डि के ऐसे शुभ वचनों को सुनकर तथा श्रीराम के चरणों में उसकी अगाध प्रीति देखकर गरुड़, जिसके संदेह का निवारण हो चुका था, प्रेममयी वाणी में बोला।

व्याख्या-गरुड़ ने कहा कि हे भुशुण्डि जी! आपकी राम-भक्तिमय वाणी सुनकर मैं सफल मनोरथ हो गया तथा श्रीराम के चरणों में नूतन प्रेम का अभ्युदय हो गया तथा अविद्या माया से उत्पन्न अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश—ये चारों क्लेश समाप्त हो गए।

चौ.- मोह जलधि बोहित तुम्ह भए। मो कहैं नाथ बिबिध सुख दए ॥

मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदउँ तव पद बारहिं बारा ॥

व्याख्या-मैं मोह रूपी समुद्र में डूब रहा था। आपने जहाज रूप होकर मेरा उद्धार कर दिया। मेरा मोह समाप्त कर दिया तथा मुझे ज्ञान, वैराग्य, विज्ञान तथा मुनि दुर्लभ गुण प्रदान किए। यही गुण सुख के आधार हैं। मैं आपका प्रत्युपकार करने में असमर्थ हूँ। तात्पर्य यह है कि आपने मुझे जो अमूल्य भक्ति-चिंतामणि प्रदान की है, उसके बदले मैं आपको देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं आपका ऋणी हूँ। अतः मैं आपके चरणों की पुनः पुनः वंदना करता हूँ।

अलंकार-मोह जलधि-रूपक।

चौ.- पूरन काम राम अनुरागी। तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी ॥

संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी ॥

व्याख्या-अब मेरी सभी कामनाएँ पूर्ण हो गई हैं, किसी प्रकार की कामना शेष नहीं है तथा मैं श्रीराम के चरणों का प्रेमी हो गया हूँ। वस्तुतः संत, वृक्ष, नदियाँ, पर्वत और पृथ्वी इन सभी के कार्य परोपकार के लिए ही होते हैं। संत स्वभाव से परोपकारी होते हैं, वृक्षों के फल दूसरे लोग ही खाते हैं, नदियों का जल सर्वजन सुलभ है, पर्वतों से ही नदियाँ निकलती हैं, अनेक प्रकार की औषधियाँ प्राप्त होती हैं तथा पृथ्वी का नाम ही क्षमा है।

चौ.- संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना ॥

निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता ॥

शब्दार्थ-नवनीत = मक्खन। परिताप = गर्मी। द्रवइ = पिघलता है।

व्याख्या-प्रायः कवियों ने संतों की तुलना मक्खन से की है, किंतु यह उपमा ठीक नहीं है। मक्खन अपने ताप से पिघलता है। उसे दूसरों के सुख-दुःख से कुछ भी लेना-देना नहीं, किंतु संत दूसरों के दुःख को देखकर द्रवित हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि संत पराए कष्ट का निवारण करने के लिए तत्पर रहते हैं।

अलंकार-व्यतिरेक (लक्षण-उपमान से उपमेय में उत्कर्ष का दिखाया जाना)।

नोट

तुलनीय— सज्जनस्य हृदयं नवनीतं यद्वान्ति कवयस्तदलीकम् ।

अन्यदेहविलसत्परितापात्सज्जनो द्रवति नो नवनीतम् ॥

(सुभषित)

चौ.— जीवन जन्म सुफल मम भयऊ । तव प्रसाद संसय सब गयऊ ॥

जानेहु सदा मोहि निज किंकर । पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर ॥

व्याख्या—शिव जी पार्वती से कहते हैं कि गरुड़ ने काग से कहा कि मेरा जीवन और जन्म सार्थक हो गया । आपके अनुग्रह से मेरा संदेह पूर्णरूप से समाप्त हो गया । मुझे सदैव अपना दास समझते रहिएगा । इसके पूर्व उसने कहा था कि आपने जो मेरा उपकार किया है, उसके बदले में देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है । मैं आपका चिरऋणी हूँ । उसी की पुष्टि के लिए वह कहता है कि मैं सदा-सदा के लिए आपका दास बन गया । इस प्रकार के वचन वह बार-बार कहता है ।

दोहा— तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर ।

गयउ गरुड़ बैकुंठ तब हृदयँ राखि रघुबीर ॥125(क)॥

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन ।

बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान ॥125(ख)॥

व्याख्या—इस प्रकार संतुष्ट होकर स्थिरबुद्धि गरुड़ प्रेमपूर्वक काग भुशुण्डि के चरणों में प्रणाम करके और श्रीराम को अपने हृदय में धारण करके बैकुंठ लोक को चला गया । शिव जी कहते हैं कि हे पार्वती ! संत के समागम के समान संसार में कुछ भी लाभदायक नहीं है, किंतु सत्संग बिना भगवद्-कृपा के सुलभ नहीं होता । वेद और पुराणों का भी यही कथन है ।

दोहा— मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास ।

जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास ॥126॥

व्याख्या—जो व्यक्ति इस राम-कथा को निरंतर और विश्वासपूर्वक सुनते हैं, वे बिना प्रयास के ही वह ईश्वर-भक्ति प्राप्त कर लेते हैं, जो मुनियों को भी दुर्लभ है ।

दोहा— सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत ।

श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत ॥127॥

व्याख्या—शिव जी कहते हैं कि हे पार्वती ! वह कुल धन्य है, जगत-पूज्य है और परम पवित्र है, जिसमें श्रीराम का भक्त और विनम्र व्यक्ति जन्म लेता है ।

दोहा— राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बाण ।

भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान ॥128॥

व्याख्या—यदि कोई व्यक्ति श्रीराम के चरणों में प्रेम की कामना रखता है अथवा मोक्ष प्राप्त करना चाहता है, उसे यह कथा प्रेम और श्रद्धापूर्वक कान रूपी दोने (पात्र) के द्वारा पान करना चाहिए । जिस प्रकार पात्र से जल मुख द्वारा पेट में जाता है, उसी प्रकार श्रवण रूपी पात्र के द्वारा कथा रूपी अमृत हृदय में जाता है ।

दोहा— मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस ।

उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल क्लेश ॥129॥

व्याख्या—पार्वती ने कहा कि हे जगत के स्वामी । आपके अनुग्रह से मैं कृतकृत्य (धन्य) हो गई हूँ, मेरे हृदय में दृढ़ राम-भक्ति का अभ्युदय हो गया है और मेरे समस्त क्लेश समाप्त हो गए हैं ।

विशेष—क्लेश (क्लेश)—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश—ये पाँच क्लेश माने गए हैं—‘अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः’ (योगसूत्र) । ये क्लेश दूर हो गए ।

दोहा— मो सम दीन हित तुम्ह समान रघुबीर ।

अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर ॥130(क)॥

नोट

व्याख्या—श्रीराम के अनुपम गुणों का उल्लेख करने के पश्चात् अब गोस्वामी जी आर्त भाव से अपने प्रभु से निवेदन करते हैं कि हे रघुवंश शिरोमणि! मेरे समान संसार में दूसरा कोई व्यक्ति दीन (साधन हीन) नहीं है और न कोई अन्य आपके समान दीनों का हितैषी है। यह विचार करके हे रघुकुल की मणि श्रीराम जी! आप मुझे भवसंकट (आवागमन के चक्र) से मुक्त कीजिए। मैं भयभीत होकर आपकी शरण में आया हूँ।

तुलनीय—

तुम सम दीनबंधु, न दीन कोउ मोसम, सुनहु नृपति रघुराई।
मोसम कुटिल-मौलिमन नहिं जग, तुमसम हरि न हरन कुटिलाई ॥
हैं मन बचन करम पातक-रत, तुम कृपालु पतितन-गतिदाई।
हैं अनाथ प्रभु! तुम अनाथ-हित, चित यहि सुरति कबहुँ नहिं जाई ॥
हैं आरत, आरति-नासक तुम, कीरति निगम पुराननि गाई।
हैं सभीत, तुम हरन सकल भय, करन कवन कृपा बिसराई ॥
तुम सुखधाम राम स्म-भंजन, हैं अति दुखित त्रिविध स्म पाई।
यह जिय जानि दासतुलसी कहँ, राखहु सरन समुझि प्रभुताई ॥ (विनयपत्रिका-242)

दोहा— कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।

तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥130(ख)॥

व्याख्या—जिस प्रकार कामी पुरुष को स्त्री प्रिय होती है और लोभी व्यक्ति को धन से प्रेम होता है, उसी प्रकार हे रघुनाथ! आपमें मेरी निरंतर अनुरक्ति बनी रहे। कामी पुरुष अपनी प्रेमिका पर सर्वस्व, प्राण तक न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहता है, उसके कारण माता-पिता, भाई आदि से भी संबंध तोड़ लेता है, भूख-प्यास भी भूल जाता है; मेरा श्रीराम पर उसी प्रकार का प्रेम बना रहे।

स्त्री का जब तक यौवन रहता है, तभी तक उसके प्रति आसक्ति रहती है; उसके वृद्ध हो जाने पर कामी पुरुष का प्रेम घट जाता है। राम के प्रति प्रेम नैरंतर्य बना रहे, इसके लिए वह दूसरा उदाहरण देते हैं—जैसे लोभी व्यक्ति धन के प्रति आसक्ति रहता है, धन के प्रति उसकी आसक्ति किसी भी अवस्था में कम नहीं होती, इसी प्रकार यावद् जीवन राम के प्रति प्रेम बना रहे।

अलंकार—उदाहरण।

श्लोक—यत्पूर्व प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं,
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम् ॥
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥1॥

शब्दार्थ—दुर्गम = दुरूह, कठिन। पदाब्ज = चरण-कमल। अनिशं = निरंतर। निरतम् = तत्पर। तमः = अंधकार, यहाँ तात्पर्य है—अज्ञान।

व्याख्या—जिस दुरूह रामायण को सर्वप्रथम सर्वसमर्थ श्रेष्ठ कवि श्रीशिव जी ने श्रीराम के चरण-कमलों में निरंतर भक्ति प्राप्त होने के लिए रचा था, तुलसीदास ने भी उसी नाम के द्वारा कृतार्थ होकर, उसी राम नाम के विभव को विस्तार करने वाले चरित को अपने अंतःकरण के अंधकार (अज्ञान) का विनाश करने के लिए भाषाबद्ध किया।

विशेष—यहाँ रामचरितमानस का उपसंहार है। अतः यहाँ तुलसीदास उसका प्रयोजन स्पष्ट करते हैं। मानस के बालकाण्ड में उनका संकल्प था कि जो राम-कथा नानापुराण, निगमागम तथा रामायण में वर्णित है, उसे 'स्वान्तः सुखाय' वह भाषा में लिखेंगे। अंत में उसी की पुनरावृत्ति करते हैं कि जो राम-चरित पूर्व में सुकवि श्री शम्भु द्वारा रचित हुआ, उसी को अपने हृदय के अंधकार को दूर करने के निमित्त मैंने भाषाबद्ध किया है।

यह सर्वविदित है कि रामचरित के प्रथम सृष्टा शिव जी हैं—'रचि महेस निज मानस राखा, पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा।' यह ग्रंथ 'शिवरामायण' अथवा 'अध्यात्मरामायण' के नाम से विख्यात है। रामचरितमानस पर इसी का सर्वाधिक प्रभाव है। इसी की रचना से गोस्वामी जी को परम विश्राम, स्वांतः सुख की प्राप्ति हुई।

नोट

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम् ।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दहन्ति नो मानवाः ॥२॥

शब्दार्थ—शिवकरं = कल्याण करने वाला । प्रदं = प्रदान करने वाला । मलापहं = पापनाशक । प्रेमाम्बुपूरं = प्रेमजल से परिपूर्ण । अवगाहन्ति = डुबकी लगाते हैं, अवगाहन करते हैं । पतंग = सूर्य । दहन्ति = जलते हैं ।

व्याख्या—रामचरित्रमानस की फलश्रुति बनाते हुए गोस्वामी जी इसका समापन करते हैं । वह कहते हैं कि यह रामचरित्रमानस पुण्य प्रदान करने वाला, पापनाशक, कल्याण करने वाला, विज्ञान तथा भक्ति देने वाला, माया और मोहजन्य सभी पापों का विनाशक, श्रेष्ठ निर्मल प्रेम-जल से परिपूर्ण और मंगलकारी है । जो लोग भक्तिपूर्वक इस रामचरित रूपी सरोवर में स्नान करते हैं, वे संसार रूपी प्रखर सूर्य की रश्मियों में नहीं जलते हैं ।

विशेष—मानस के प्रत्येक काण्ड के अंत में फलश्रुति दे दी गई है, जैसे—

- | | | |
|-------------------|---|-----------------------|
| 1. बालकाण्ड | — | सुख-संपादन, |
| 2. अयोध्याकाण्ड | — | प्रेम-वैराग्य संपादन, |
| 2. अरण्यकाण्ड | — | विमल-वैराग्य संपादन, |
| 4. किष्किंधाकाण्ड | — | विशुद्ध संतोष संपादन, |
| 5. सुंदरकाण्ड | — | ज्ञान-संपादन, |
| 6. लंकाकाण्ड | — | विज्ञान-संपादन, |
| 7. उत्तरकाण्ड | — | अविरल भक्ति-संपादन । |

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. शिवजी राम के गुणों का वर्णन करके प्रसन्नतापूर्वक अपने निवास पर्वत पर चले गए ।
2. हनुमान के साथ सुग्रीव के पास गए, दोनों में मैत्री हुई ।
3. स्त्रियां यद्यपि कही जाती हैं, फिर भी वे अपने रूपाकर्षण से बड़े-बड़े मुनियों को भी अपने में कर लेती हैं ।

7.2 सारांश (Summary)

भगवत्-प्राप्ति के लिए प्रथम शर्त है—सत्संग । सत्संग के अतिरिक्त राम-भक्ति की सुलभता की एक अन्य शर्त भी है, और वह है—शिव की भक्ति ।

जो वैराग्य संपन्न हैं तथा जिनमें स्त्री-त्याग की शक्ति है, यदि वह भक्त नहीं हैं तो वे नारी को देखकर विकल हो जाते हैं भक्तों पर नारी (माया) का प्रभाव नहीं पड़ता है ।

7.3 शब्दकोश (Keywords)

1. मेखला: करधनी ।
2. बिद्यु: चंद्रमा ।

7.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

नोट

1. 'रामचरितमानस तुलसीदास द्वारा रचित अद्वितीय कृति है'—इस कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
2. जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोई।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोई।।
उपरोक्त पंक्तियों की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।
3. तुलसीदास के अनुसार भगवत् प्राप्ति की प्रथम शर्त का उल्लेख कीजिए।

उत्तर-स्वमूल्यांकन (Answer-Self Assessment)

1. कैलाश
2. श्रीराम
3. अबला, वश

7.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



- पुस्तकें
1. रामचरितमानस-साहित्यिक मूल्यांकन—पाण्डेय सुधाकर, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली।
 2. गोस्वामी तुलसीदास—मीना मनिशिखा, प्रभात प्रकाशन।
 3. तुलसी दास—शिवसरन राम, एस.राम, वेदाम बुक्स।

नोट

इकाई 8

तुलसीदास की भक्ति-भावना**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

8.1 तुलसीदास की भक्ति-भावना

8.2 सारांश (Summary)

8.3 शब्दकोश (Keywords)

8.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

8.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- तुलसीदास की भक्ति-भावना को समझने में।
- तुलसीदास की दास्य-भाव की भक्ति के रूप को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

हिन्दी साहित्य में तुलसीदास को राम भक्ति काव्य का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। इनके द्वारा रचे 12 ग्रंथों को प्रमाणिक माना जाता है, जिनमें शामिल हैं—रामचरितमानस, रामलला नहछू, जानकी मंगल, दोहावली, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली, विनय-पत्रिका आदि। इसमें तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस- विश्वभर में अत्यंत लोकप्रिय है। इसमें दास्यभाव की भक्ति दिखती है। इसमें मर्यादा का प्रमुख स्थान है। राम का चरित्र ही मर्यादा पुरुषोत्तम का स्वरूप है। रामकाव्य में सर्वत्र मर्यादा का पालन करने का प्रयास किया गया है। राम के अतिरिक्त हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदि प्रमुख भ्रातृ मर्यादा में बंधे हैं। रामकाव्य का दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक है। यद्यपि तुलसीदास जी रामभक्त थे, किन्तु उन्होंने शिव, पार्वती, गणेश आदि देवताओं की भी स्तुतियां की हैं। उनके राम ने रामेश्वरम् में शिवलिंग की स्थापना की, सीता ने भी गौरी-पूजन किया। तुलसी ने राम के मुख से कहलवाया है—

‘शिवद्रोही मम दास कहावा, सो नर मोहि सपनेहु नहिं भावा।’

धार्मिक समन्वय के अतिरिक्त ज्ञान, भक्ति और कर्म का दार्शनिक समन्वय भी तुलसीदास के रामकाव्य में उपलब्ध है।

8.1 तुलसीदास की भक्ति-भावना

गोस्वामी तुलसीदास भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा के अन्तर्गत आने वाली रामकाव्य धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। उन्होंने अपने सभी काव्य-ग्रन्थों में राम के प्रति अनन्य भक्ति-भाव व्यक्त किया है, इसलिए उन्हें राम का एकनिष्ठ एवं अनन्य भक्त कहा गया है। वे चातक को प्रेम और भक्ति का परम आदर्श मानते हुए कहते हैं।

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।

एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास ॥

नोट

अपने इष्टदेव राम के प्रति उनके मन में अनन्य प्रेम, भक्ति-भाव, श्रद्धा, विश्वास एवं भरोसा व्याप्त है। श्रद्धा और विश्वास ही तुलसी की भक्ति के मेरुदण्ड हैं। रामचरितमानस एवं विनय-पत्रिका—दोनों ही काव्य-ग्रन्थों में तुलसी की भक्ति-भावना अभिव्यक्त हुई है। तुलसी की भक्ति दास्य भाव की भक्ति है। वे अपने प्रभु राम के प्रति पूर्ण समर्पित थे और राम को अपना स्वामी तथा स्वयं को राम का सेवक मानते थे। रामचरितमानस में वे स्पष्ट घोषणा करते हैं कि ‘सेवक-सेव्य’ भाव के बिना कोई व्यक्ति इस संसार-सागर से तर नहीं सकता:

सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।

विनय-पत्रिका में तुलसी की भक्ति पद्धति की अधिक स्पष्टता से अभिव्यक्ति हुई है। वे स्पष्ट घोषणा करते हैं:

ब्रह्म तू है जीव हों तू ठाकुर हों चरो।

तात-मात गुरु सखा तू सब विधि हितु मेरो ॥

तुलसी की भक्ति में ‘दैत्य’ की प्रधानता है। इस दैत्य के कारण वे अपने इष्टदेव राम को महान एवं सर्वगुण सम्पन्न तथा स्वयं को तुच्छ, छोटा, खोटा और पापी मानते हैं। ‘आत्म निवेदन’ की इस प्रवृत्ति के कारण वे कहते हैं:

“राम सौं बड़ो है कौन मोसो कौन छोटी?”

राम सौं खरो है कौन मोसो कौन खोटी?”

तुलसी की भक्ति पद्धति में ‘नवधा भक्ति’ का पूर्ण स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। नवधा भक्ति के अन्तर्गत श्रवण, कीर्तन, पाद सेवन, अर्चना, वन्दना, दास्य, नाम स्मरण और आत्म निवेदन आते हैं। तुलसी ने राम नाम की महिमा का प्रतिपादन स्थान-स्थान पर किया है। वे कहते हैं:

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे

घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे ॥



क्या आप जानते हैं? तुलसी के राम विष्णु के अवतार हैं जो भक्तों की रक्षा के लिए, धर्म की रक्षा के लिए तथा दुष्टों का विनाश करने के लिए बार-बार अवतार लेते हैं।

वे शक्तिशाली हैं, अत्यन्त शीलवान हैं और करोड़ों कामदेव से भी अधिक सौन्दर्य सम्पन्न हैं। इस प्रकार तुलसी के राम शक्ति, शील एवं सौन्दर्य के भण्डार हैं। वे सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं तथा ईश्वर (परमात्मा) रूप में अनादि, अविकारी, अजन्मा, परब्रह्म हैं।

तुलसी की भक्ति पद्धति में विनय की सातों भूमिकाएं— दैन्य, मानमर्षता, भयदर्शना, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य एवं विचारणा का समावेश है।

दैत्य नामक प्रथम भूमिका में भक्त अपने को तुच्छ एवं प्रभु को महान मानते हुए प्रभु से प्रार्थना करता है कि वह अपने भक्त को शरण में ले ले। जब भक्त अभिमान शून्य होकर अपने इष्ट देव के समीप जाने का निश्चय करता है तो उसे मानमर्षता कहा जाता है। जीव को भय दिखाकर प्रभु की शरण में जाने के लिए प्रेरित करना भयदर्शना है। यथा:

राम कहतु चलु राम कहतु चलु राम कहतु चलु भाई रे।

नाहि तौ भव बंगार में परिहै छूटन अति कठिनाई रे ॥

मन को डांट-डपटकर सही मार्ग पर लाने का प्रयास जब भक्त करता है तो उसे ‘भर्त्सना’ कहा जाता है। यथा

ऐसी मूढ़ता या मन की।

परिहरि राम भगति सुर सरिता आस करत ओसकन की।

हे प्रभु मेरे मन की यह ऐसी मूर्खता है कि क्या बताऊँ? यह मूर्ख राम भक्ति रूपी गंगा नदी से अपनी प्यास न बुझाकर ओस चाटता फिर रहा है। सांसारिक विषय भोग रूपी ओस कणों से कहीं प्यास बुझती है?

प्रभु के गुणों पर विश्वास करते हुए भक्त तुलसीदास अपने मन को जहाँ आश्वस्त करते दिखाई पड़ते हैं वहाँ आश्वासन नामक भूमिका है और जहाँ मन की कामनाओं की अभिव्यक्ति है वहाँ मनोराज्य नामक भूमिका दिखाई पड़ती है। यथा:

नोट

कबहुँकि हों यह रहनि रहौंगो?

श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तैं संत स्वभाव गहौंगो ।

जथा लाभ संतोष सदा काहू सौं कहू न चहौंगो ।

संसार के माया जाल की जटिलता दिखाकर संसार से विरक्त होकर जब कोई भक्त भक्ति-भावना में लीन दिखाया जाता है, तब वहाँ विचारण नामक अन्तिम भूमिका होती है। विनय-पत्रिका के निम्न पद में इसी भूमिका को देखा जा सकता है। यथा:

केसव कहि न जाइ का कहिए ।

देखत तब रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये ।

सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे ।

धोये मिटे न मरै भीति दुख पाइय यहि तनु हेरे ॥

तुलसी ने विनय-पत्रिका में अपने दैन्य, विषाद, विवशता, पीड़ा का निरूपण करने के साथ-साथ प्रभु राम के सामर्थ्य, प्रभुत्व एवं महानता का वर्णन किया है। सगुणोपासक मोक्ष प्राप्त नहीं करते, वे तो प्रभु से भक्ति की भावना करते हैं। संसार में उन्हें और कुछ नहीं चाहिए एकमात्र भक्ति ही उनका प्राप्य है:

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहौं निरबान ।

जनम-जनम रति राम पद यह वरदान न आन ॥

तुलसी ने भक्ति की प्राप्ति के लिए सत्संग को महत्त्व दिया है। वे कहते हैं:

बिनु सतसंग विवेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥

बिना सत्संग विवेक नहीं होता और बिना विवेक जाग्रत हुए भक्ति नहीं होती। सत्संग राम की कृपा से ही सुलभ हो पाता है। ज्ञान और वैराग्य को तुलसी भक्ति का साधन मानते हैं। रामचरितमानस के 'ज्ञान-भक्ति' प्रसंग में वे भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं। तुलसी ने भक्ति-मार्ग को ज्ञान-मार्ग की तुलना में सरल एवं सहज बताया है। तुलसी की भक्ति-भावना में उन एकादश आसक्तियों को भी स्थान मिला है जिनका उल्लेख 'नारद भक्ति सूत्र' में किया गया है। इन आसक्तियों के नाम हैं—रूपासक्ति, कान्तासक्ति, तन्मयतासक्ति, परम विरहासक्ति, शरणागत, वत्सलता, गुण महात्म्यासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति। इनमें से कुछ के उदाहरण इस प्रकार हैं—काव्यासक्ति—निरखि-निरखि रघुवीर छवि बाढ़ै प्रीति न थोरि।



नोट्स

ज्ञान और वैराग्य को तुलसी भक्ति का साधन मानते हैं। रामचरितमानस के 'ज्ञान-भक्ति' प्रसंग में वे भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं।

रूपासक्ति—कोटि मनोज लजावनिहारे ।

सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे ॥

तन्मयतासक्ति—रामहिं देखि एक अनुरागे ।

चितवत चले जाहिं मग लागे ॥

शरणागत वत्सलता—

है है कहा विभीषन की गति रही सोक भरि छाती ।

तुलसी की भक्ति पद्धति में शरणागत के छः प्रकार भी उपलब्ध होते हैं जिनके नाम हैं—अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, गौप्तृत्व वरण, रक्षा का विश्वास, कारुण्य और आत्म निक्षेप।

विनय-पत्रिका के निम्न पद में तुलसी ने यह संकल्प व्यक्त किया है कि मेरी अब तक की आयु तो व्यर्थ में बीत गई किन्तु शेष आयु का मैं सदुपयोग करूँगा, राम के चरणों में मन-मधुकर को बसाऊँगा:

नोट

अब लौं नसानी अब न नसैहौं ।**राम कृपा भव निसा सिरानी जागे फिरि न डसैहौं ।**

यहां 'अनुकूल के प्रति संकल्प' नामक शरणागति का प्रकार व्यंजित है। इसी प्रकार जो बातें प्रभु से दूर ले जाती हैं, उनके त्याग का संकल्प ही प्रतिकूल का परित्याग है। तुलसी जैसे भक्त को प्रभु की शक्ति एवं सामर्थ्य पर पूरा विश्वास रहता है। वे जानते हैं कि प्रभु हर हाल में उनकी रक्षा करेंगे। इसे रक्षा का विश्वास कहा जाता है, यथा:

कौन की आस करै तुलसी जो पै राखिहै राम तो मारिहै को रे?

इस विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तुलसी अप्रतिम भक्त हैं। उनकी भक्ति दास्य भाव की है जिसमें दैन्य की प्रधानता है। उन्हें प्रभु राम की शक्ति एवं सामर्थ्य पर पूरा विश्वास है। वे राम के प्रति अटल श्रद्धा एवं परम विश्वास से युक्त हैं। वे संसार को त्यागकर प्रभु की शरण में जाने के लिए मन को बार-बार समझाते हैं। तुलसी की भक्ति पद्धति में राम के प्रति अनन्यता दिखाई पड़ती है। चातक को वे प्रेम और भक्ति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मानते हैं। उन्हें मुक्ति की आकांक्षा नहीं है। वे प्रभु से अद्वैत भाव के आकांक्षी नहीं हैं क्योंकि भक्ति के लिए द्वैत की आवश्यकता रहती है। वे सच्चे अर्थों में राम के परम भक्त कहे जा सकते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी की भक्ति पद्धति पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—“गोस्वामी जी की भक्ति पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है—उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है। न उसका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से। धर्म तो उसका नित्य लक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं।”

सगुण भक्ति करने वाले लोग ईश्वर को भीतर और बाहर सर्वत्र मानकर उसकी छटा व्यक्त जगत के बीच देखते हैं। प्रेम के वशीभूत होकर भगवान कहीं से भी प्रकट हो सकते हैं, ऐसी उनकी मान्यता है। इसी से गोस्वामी जी कहते हैं :

पैज परे प्रह्लादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिए तें ।

तुलसी की भक्ति साधना गुह्य नहीं है और न वह केवल उच्च वर्ण तक सीमित है। ऊंच-नीच, छोटे-बड़े सब उस प्रभु की भक्ति के अधिकारी हैं क्योंकि वह 'ईश्वर' केवल प्रेम को पहचानता है :

रामहिं केवल प्रेम पियारा । जानि लेहु सो जाननि हारा ॥

भक्ति के लिए मन, वचन एवं कर्म की शुद्धता, सत्यता एवं निश्छलता चाहिए। तुलसी भक्ति मार्ग को ऐसा सीधा-सादा स्वाभाविक मार्ग बताते हैं जो सबके के लिए समान रूप से खुला है। इस पर न किसी का एकाधिकार है और न यह किसी के लिए प्रतिबन्धित है। भक्ति की चरम सीमा पर पहुंचने पर भी तुलसी ने भक्ति के लोक-पक्ष का त्याग नहीं किया था। आचार्य शुक्ल के अनुसार—“लोक संग्रह का भाव उनकी भक्ति का एक अंग था।.. ...यही कारण है कि इनकी भक्ति रस भरी वाणी जैसी मंगलकारिणी मानी गई वैसी और किसी की नहीं।”

तुलसीदास जी ने ज्ञान-भक्ति का विशद निरूपण रामचरितमानस में किया है। उत्तरकाण्ड में वे ज्ञानमार्ग को 'कृपाण की धार' के समान कठिन तथा भक्तिमार्ग को सहज, सरल एवं सुगम बताते हैं। यद्यपि ईश्वर को दोनों मार्गों से पाया जा सकता है किन्तु भक्तिमार्ग अपनी सरलता एवं सुगमता के साथ अधिक लोकप्रिय है। तुलसी ने अपनी भक्ति पद्धति में इसी भक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया है। उनकी भक्ति में एक ओर तो शास्त्रोक्त विधियों का पूर्ण समावेश है तो दूसरी ओर वह जनसाधारण में भी अपनी सरलता के कारण लोकप्रिय हुई है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने को तुलसीदास की भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता बताई है।
2. तुलसीदास के राम के अवतार हैं।
3. मन को डांट-डपटकर सही मार्ग पर लाने का प्रयास जब भक्त करता है, तो उसे कहा जाता है।

8.2 सारांश (Summary)

तुलसी की भक्ति में 'दैन्य' की प्रधानता है। इस दैन्य के कारण वे अपने इष्टदेव राम को महान एवं सर्वगुण सम्पन्न तथा स्वयं को तुच्छ, छोटा, खोटा और पापी मानते हैं। तुलसी की भक्ति पद्धति में 'नवधा भक्ति' का पूर्ण स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। नवधा भक्ति के अन्तर्गत श्रवण, कीर्तन, पाद सेवन, अर्चना, वन्दना, दास्य, नाम स्मरण और आत्म निवेदन आते हैं। तुलसी के राम विष्णु के अवतार हैं जो भक्तों की रक्षा के लिए, धर्म की रक्षा के लिए तथा दुष्टों का विनाश करने के लिए बार-बार अवतार लेते हैं। तुलसी की भक्ति पद्धति में राम के प्रति अनन्यता दिखाई पड़ती है। चातक को वे प्रेम और भक्ति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मानते हैं। तुलसी की भक्ति साधना गुह्य नहीं है और न वह केवल उच्च वर्ण तक सीमित है। तुलसीदास जी ने ज्ञान-भक्ति का विशद निरूपण रामचरितमानस में किया है।

8.3 शब्दकोश (Keywords)

- मंगलाचरण:** कार्यारम्भ के पूर्व की जाने वाली मंगल स्तुति, मांगलिक मंत्र, ग्रंथ के आरंभ में लिखा जाने वाला मांगलिक पद।
- आसक्ति:** मन का लगाव, प्रेम, अनुराग, लिप्तता।

8.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

- तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' विश्वभर में प्रसिद्ध है, इस कथन के समर्थन में अपने मत प्रस्तुत कीजिए।
- तुलसीदास रामभक्त हैं। ज्ञान और वैराग्य उनकी भक्ति के साधन हैं। स्पष्ट कीजिए।
- तुलसीदास की भक्ति पद्धति में शरणागत के कितने प्रकार उपलब्ध हैं?
- तुलसीदास की राम भक्ति की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर-स्वमूल्यांकन (Answer-Self Assessment)

- सर्वांगपूर्णता
- विष्णु
- भर्त्सना

8.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



- पुस्तकें
- रामचरितमानस-साहित्यिक मूल्यांकन-पाण्डेय सुधाकर, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली।
 - गोस्वामी तुलसीदास-मीना मनिशिखा, प्रभात प्रकाशन।
 - तुलसी दास-शिवसरन राम, एस.राम, वेदाम बुक्स।

इकाई 9

नोट

मीरा मुक्तावली (व्याख्या भाग)**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

9.1 मीरा मुक्तावली

9.2 सारांश (Summary)

9.3 शब्दकोश (Keywords)

9.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

9.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- व्याख्या के माध्यम से मीराबाई के पदों के भाव को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भक्तिकालीन कवियों में सूर, तुलसी के साथ मीराबाई का नाम भी विशेष महत्त्व रखता है। मीरा की काव्यकृति मीरा मुक्तावली सबसे अलग है। सामंती समाज व्यवस्था में मीरा का कृष्ण के प्रति प्रेम अनुपम है। मीरा का काव्य भी उनके प्रेम की तरह सहज, सरल है। यहाँ मीरा मुक्तावली के कुछ प्रमुख पदों को व्याख्या सहित प्रस्तुत किया जा रहा है।

9.1 मीरा मुक्तावली

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ ॥टेक॥
 गिरधर म्हारो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।
 रैण पड़ै तब ही उठि जाऊँ, भोर गये उठि आऊँ॥
 रैण दिन बाके संग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ॥
 जो पहिरावै सोई पहिरूँ जो दे सोई खाऊँ।
 मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ॥
 जहाँ बैठावे तितही बैठूँ बेचे तो बिक जाऊँ।
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार बार वलि जाऊँ ॥17॥

शब्दार्थ—म्हारो=हमारा, मेरा। साँचो=सच्चा, वास्तविक। प्रीतम=प्रियतम,प्यारा। लुभाऊँ=मुग्ध हो जाती हूँ। रैण=रात। भोर=सवेरा। रैणदिन=रात-दिन। बाके=उसके। वाहि=उसे। रिझाऊँ=प्रसन्न करूँ। दे=दे देवे। पल=एक क्षण भी। रहाऊँ=रह सकती हूँ।

व्याख्या—मैं गिरधर श्रीकृष्ण के घर जाऊँगी। वह श्रीकृष्ण ही वास्तव में मेरा सच्चा प्रियजन है। उसकी रूप छटा को देखते ही मैं उस पर लुभा (मोहित हो) जाती हूँ। रात्रि के आते ही, (होते ही) मैं वहाँ से उठ जाती हूँ और प्रातःकाल होते ही पुनः वहाँ पहुँच जाती हूँ अथवा रात होते ही वहाँ पहुँच जाती हूँ और प्रातः होते ही वहाँ से आ जाती

नोट

हूँ। रात-दिन उसी के साथ खेलती हूँ, नित्यप्रति उसी की जीवन संगिनी बन गई हूँ। जैसे भी बनेगा उसे प्रसन्न करूँगी। रिझाऊँगी। मेरा प्रियतम जो कुछ भी पहनने के लिए देगा, वही पहनूँगी और जो कुछ भी खाने के लिए देगा, वही खाऊँगी। मेरा तथा उनका परस्पर प्रेम बहुत पुराना है। उनके बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकती। वह प्रियतम मुझे जहाँ बैठाएगा वहीं मैं बैठूँगी और यदि वह मुझे बेचना चाहे तो मैं बिक भी जाऊँगी। मीरा के प्रभु तो (स्वामी, प्रियतम) गिरिधर नागर श्रीकृष्ण हैं। मीरा उन पर बार-बार बलिहारी जाती है।

विशिष्ट—इस पद में समर्पण की पराकाष्ठा है। रहस्यवादी काव्य की परम्परा के अनुसार पहली स्थिति के अनन्तर दूसरी स्थिति की अभिव्यंजना इसमें है परन्तु मीरा तो भक्तमयी हैं अतः इस पद में पुष्टिमार्गीय भक्तिपद्धति के अनुसार समर्पण की भावना प्रकट है। तथा तनुजा, वित्तजा और मनसा भक्ति की भावना भी अपने चरमोत्कर्ष के साथ व्यक्त है।

कबीर ने भी अपने पदों में राम बहुरिया होने का भाव व्यक्त किया है। एक स्थान पर तो उन्होंने अपने को राम का कुत्ता ही मान लिया है। माया मोह की रस्सी मान ली है और स्वामी रस्सी से कुत्ते को जिधर खींचता है, कुत्ता उधर ही चलता जाता है। वैसी भावना भी यहां द्रष्टव्य है।

कबिरा कूता राम का मुतिया मेरा नाऊँ।

गले में मेरे जेवरी जित खींचे तित जाऊँ॥

सखि म्हारो सामरिया रगे, देखवाँ कराँ री ॥टेक॥

सांवरो उमरण सांवरो सुमरण, साँवरो ध्यान धराँ री।

ज्यों ज्यों चरण धराँ धरणी घर त्याँ त्याँ निरत कराँ री।

मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, कुँजा गैल फिराँ री ॥18॥

शब्दार्थ—सामरिया=सांवरिया, सांवरा, श्याम रंग का। करां=कराँ। उमरण=चिन्तन। सुमरण=याद करना। धरां=धारण कराँ धरणी=पृथ्वी। निरत=नृत्य, नाच। लता=कुंजलता। गैला= साथ, फिराँ=फिराँ।

व्याख्या—हे सखी! मैं तो अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को नित्यप्रति देखा करूँगी। उन के दर्शनों के बिना किसी दिन भी नहीं रहती हूँ। मेरे चिन्तन और स्मरण का विषय भी केवल श्रीकृष्ण ही हैं। उस श्यामवर्ण वाले श्रीकृष्ण का ध्यान ही धारण किये रहती हूँ। श्रीकृष्ण जहां-जहां, भी धरती पर अपने चरणों को रखते हैं। वहां-वहां ही मैं अपना नृत्य करती हूँ। मेरे प्रभु तो गिरधर नागर श्रीकृष्ण हैं मैं उनके साथ ही लताकुंजों में साथ-साथ फिरूँगी उनके साथ ही रहती हूँ। उनसे पृथक् कभी नहीं रहूँगी।

विशिष्ट—इस पद में कोई अलंकार नहीं है। पद की तीसरी पंक्ति में अनुप्रास अथवा उपमालंकार का अन्वेषण केवल भ्रान्ति है। 'र' अक्षर के बहु प्रयोग से यहां अनुप्रासलंकार नहीं माना जा सकता। क्योंकि यह तो मीरा की कथन-शैली है। इस प्रकार तो मीरा के सभी पदों में अनुप्रासलंकार मानना पड़ जाएगा।

माई री म्हा लियाँ गोविन्दाँ मोल ॥टेक॥

थें कह्याँ छारगे म्हाँ काँ चौड्डे लियाँ बजन्ताँ ढोल।

थें कह्याँ मुहोंघो म्हाँ कह्याँ सस्तो, लिया री तराजाँह तोल।

तण वाराँ म्हाँ जीवण वाराँ, वाराँ अमोलक मोल।

मीरा कूँ प्रभु दरसन दीज्याँ, पूरव जन्म को कोल ॥19॥

शब्दार्थ—थें=तुम। कह्याँ=कहती हो। छारगे=छिप कर। म्हां का=मैं कहती हूँ। चौड्डे=चौड़े, खुले आम सबके सामने। बजन्ता=बजाते हुए। ढोल=ढोल बजाकर, स्पष्ट रूप से, मुहोंघो=मंहंगो, मंहंगा। तराजाँ=तराजू में। तन=शरीर। वारां=अर्पित करती हूँ, न्योछावर करती हूँ। अमोलक-मोल=अमूल्य मानकर। पूरव-जन्म=पूर्वजन्म, पहला जन्म। कोल=कौन, वचन, वायदा, प्रतिज्ञा।

व्याख्या—हे सखी! मैंने तो गोविंद (श्रीकृष्ण) को मोल ले लिया है। तू कहती है कि छिप कर मोल लिया है, परन्तु मैं कहती हूँ कि मैंने सब के सामने प्रकट रूप से ढोल बजाकर (सबको सुना-दिखाकर) मोल लिया है। तुम कहती हो कि यह मोल लेना बहुत मंहंगा पड़ा है, पर मेरा कहना है कि मैंने सस्ते में ही ले लिया है क्योंकि तराजू में तोलकर

नोट

ठीक ढंग से खरीदा है। मैं इस श्रीकृष्ण पर अपना शरीर और जीवन न्योछावर कर सकती हूँ। मैं अमूल्य पदार्थ भी इस पर न्योछावर कर सकती हूँ। मीरा कहती है कि उसे भगवान् दर्शन दें क्योंकि उसके प्रति भगवान् का पूर्वजन्म का दिया हुआ वचन है कि प्रति जन्म में उसे (मीरा को) दर्शन देंगे।

विशिष्ट—यह उक्ति प्रसिद्ध है कि भगवान् ने गोपियों को अगले जन्म में दर्शन देने का वचन दिया था, मीरा भी उन गोपियों में प्रधान थी अतः वह उसी प्रतिज्ञा का स्मरण करके अपने प्रभु को भी प्रतिज्ञापूर्ति के लिए स्मरण दिलाती है।

नाभादास की भक्तमाल में भी इसी प्रकार का घटनासम्बद्ध संकेत मिलता है।

सदरिस गोपिन प्रेम प्रकट कलयुगहिं दिखायो।

निर अंकुस अतिनिडर, रसिक जन रसना गायो॥

अलंकार—इस पद में प्रश्नोत्तरलंकार है। मीरा स्वयं ही सखी से उक्ति कह कर अपना उत्तर दे रही है।

माई म्हाँ गोविंद लीनो मोल।

कोई कहे सस्तो, कहे मुहोंघ, लीनों तराजू तोल।

कोई कहै घर में, कोई कहै वन में, राधा के संग किलोल।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर आवत प्रेम के मोल॥

म्हां गिरधर रंग राती सैयां म्हां॥टेक॥

पंचरंग चोला पहरया सखी म्हां, झिरमिट खेलण जाती।

वां झिरमिट मां मिल्यो सविरो, देख्यां तन मन राती।

जिण रो पियाँ परदेस बस्यां री लिख लिख भेज्यां पाती।

म्हारा पियां म्हारे हीयड़े वस्यां णा आवां णा जाती।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मग जोवां दिन राती ॥ 20 ॥

पाठान्तर—सखी री मैं तो गिरधर के रंग राती।

पंचरंग मेरा चोला रंगा दे, मैं झुरमुट खेलन जाती।

झुरमुट में मेरा साई मिलेगा, खोल अडम्बर गाँती।

पवन पानी दोनों ही जायेंगे, अटल रहे अविनासी।

सुरत निरत का दिवला संजोले, मनसा की कर बाती।

प्रेम हरी को तेल बनाले, जगा करे दिन राती।

जा के पिया परदेस बसत हैं, लिख लिख भेजें पाती।

मेरे पिया मो माँहि बसत हैं कहुं न आती जाती।

पीहर बसूँ न बसूँ सास घर, सतगुर शब्द संगीती।

ना घर मेरा ना घर तेरा, मीरा हरि रंग राती।

शब्दार्थ—रंग=रंग, प्रेम। पंचरंग=पाँच रंगों का, पाँच तत्वों का (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश)। चोला = कुर्ता, शरीर। पहरया=पहना। झिरमिट=एक खेल, जिसमें व्यक्ति अपने को लम्बे कपड़े में ऐसे लपेट लेता है कि दूसरा शीघ्रता से पहचान न सके। यहाँ तात्पर्य है कि कर्मानुसार योनि से प्राप्त शरीर। राती=अनुरक्त, मुग्ध। पाती=पत्र। पिया=प्रिय। मग=मार्ग, रास्ता। जोवां=देखती हूँ।

व्याख्या—हे सखि! मैं श्रीकृष्ण के रंग में रंगी हुई हूँ। उन में ही पूर्णरूप से अनुरक्त हूँ। मैं पंच रंगा चोला पहनकर झिरमिट का खेल खेलने जाती हूँ। तात्पर्य यहाँ यह है कि अपने पाँच तत्वों से बने कर्मानुसार प्राप्त इस शरीर से भगवान् को प्राप्त करने के लिए माया से आधृत होने के कारण एक खेल को खेल रही हूँ। वास्तविकता मैं जानती हूँ। इस झिरमिट के खेल में मुझे श्रीकृष्ण के, दर्शन प्राप्त हो गये। उन्हें देखकर मैं शरीर और मन से उन पर अनुरक्त

हो गयी। जिन नारियों का पति परदेश में रहता है। वे तो पत्र लिख लिखकर संदेश भेजती हैं; परन्तु मेरा प्रियतम तो मेरे हृदय में ही रहता है। इसलिए मैं कहीं आती-जाती नहीं, मुझे पत्र लिखने की आवश्यकता नहीं है। मीरा के स्वामी (प्रभु) तो गिरधर नागर श्रीकृष्ण हैं जिनके लिए वह दिन रात रास्ता देखती रहती हैं। प्रतीक्षा करती रहती है।

विशिष्ट—इस पद में “पंचरंग चोला” तथा “झिरमिट” शब्द का प्रयोग किया गया है जो निर्गुणी सन्तों के सम्प्रदाय के शब्द हैं। इन प्रतीकों का प्रयोग मीरा ने अपने युग के सन्तों के प्रभाव वश किया है। अन्यथा शरीर को चोला कहना तथा पंचरंगी चोला कहना भक्ति-क्षेत्र की एक सामान्य परम्परा का बोधक है।

अलंकार—“पंचरंग चोला” पदों में श्लेष का प्रयोग है। कुर्ता तथा शरीर दोनों पक्षों में इन पदों का अर्थ जा सकता है। पंचरंग से भी पाँच तत्त्वों एवं पाँच रंगों से रंग गया चोला अर्थ लिया जा सकता है। पाँच तत्त्व के अतिरिक्त लोभ, क्रोध, शोक, हर्ष और मोह पाँच विकारों से युक्त शरीर का अर्थ भी लिया जा सकता है इस पद का पाठान्तर भी मिलता है जो राजस्थानी भाषा मिश्रित है। अन्य भाषाओं के अन्तर से भी पाठान्तर मिलते हैं।

बड़े घर ताला लागां री, पुरबला पुन्न जगांवाँ री।
झीलरयां री कामणा म्हाँरों डाबरां कुण जावाँरी।
गंगा जमणा काम णा म्हारे, म्हां जावां दरियां वारी।
हेल्या मेल्या कामणा म्हारे, पेठ्या मिल सरदारां री।
कामदाराँ सूँ काम णा म्हारे, जावाँ जाव म्हा दरवाराँ री।
काथ कथीर सूँ काम णा म्हारे, चड़स्यां घणरी सारयां री।
सोणा रूपां सू काम णा म्हारे, म्हारे हीरां रो बीपाराँ री।
भाग म्हारो जाग्यां रे, रतणाकर म्हारी सीरया री।
अम्रत प्यालो छाँड्याँ रे, कुण पीवाँ कड़वां नीरा री।
भगत गणा प्रभु परचा पावां, जावां गजतां दूरयाँ री।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, मणरथ करस्यां पूरयां री।

शब्दार्थ—ताला लागाँ=सम्बन्ध हो गया। लगन लग गई। परस्पर आकर्षण हो गया। पुरबला=पहला। पुन्न=पुण्य। झीलरयां=झील से। डाबराँ=छोटा तालाब। कुण=क्यों, कौन। जावाँ=जावें। दरियाव=समुद्र। हेल्या मेल्या, हेली मेली = सम्बन्ध। कामदारां = कर्मचारी, प्रबन्धक। जाव=जाऊँगी। दरवारा में। स्वामी या मालिक के दरबार में। काथ=कांच। कथीर=रांगा। सारयाँ=लोहे पर। हीरा री=हीरों का। बीपार=व्यापार। रतणाकर=रत्नाकर, सागर। सीरयाँ=सम्बन्ध से, निकट से, मेल से। अम्रत=अमृत। कड़वां=कड़वा। नीरा=नीर, पानी। परचा=परिचय। पावां=पाया, प्राप्त किया। दूरयां=दूर। मणरथ=मनोरथ, इच्छा।

व्याख्या—मीरा कहती है कि बड़े घर में ताला लग गया है। एक अर्थ तो यह कि अब भगवान् के घर से सम्बन्ध हो गया है। दूसरा यह कि लौकिक रूप से राजगृह में मेरे लिये ताला लग गया है। राजगृह से सम्बन्ध छूट गया है और भगवान् के पक्ष में यह कि उस बड़े घर से मेरा सम्बन्ध हो गया है। मेरे पहले जन्म में किए हुए पुण्यों का उदय हो गया है। झील से मेरा कोई काम नहीं; सम्बन्ध नहीं, तब छोटे तालाब पर कौन जावे। गंगा-यमुना से भी मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। मैं तो सागर की ओर जाती हूँ। तात्पर्य यह कि सागर के समान अनन्त शक्ति वाले से मेरा सम्बन्ध नहीं है। मेरा कर्मचारियों, अधिकारियों अथवा प्रबन्धकों से कोई काम नहीं। मैं तो सीधी दरबार में ही जाती हूँ। मेरा सीधा सम्बन्ध भगवान् श्रीकृष्ण से है। अतः दरबारियों के पास जाने की आवश्यकता ही नहीं। कांच और रांगे से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं तो लोहे की घन पर चढ़ चुकी हूँ। तपकर पार उतर चुकी हूँ। मेरा सोना-चाँदी से भी कुछ सम्बन्ध नहीं है। मैं तो हीरे का व्यापार करती हूँ। मेरा तो अब भाग्य जाग गया है। मेरा सम्बन्ध अब रत्नाकर से है। क्योंकि रत्नाकर के पास सब कुछ होता है। वहाँ सोने-चाँदी का कुछ मूल्य नहीं रहता। अमृत का प्याला छोड़कर कड़वा पानी कौन पीएगा। भक्त लोगों के द्वारा मैंने भगवान का परिचय प्राप्त कर लिया है। अतः तुच्छ, नीच व्यक्तियों से अब मैं दूर ही रहती हूँ। मीरा के प्रभु तो गिरधर नागर श्रीकृष्ण हैं जो कि उसके मन की सब इच्छाओं को पूरा करेंगे।



टास्क बड़े घर में ताला लगने से मीरा का क्या अभिप्राय है?

नोट

तुलना—सूरदास ने भी लौकिक आधार पर इष्टदेव के सामने अन्य पदार्थों को तुच्छ ठहराया था।

सूरदास—जिन मधुकर अम्बुज रस चाख्यो क्यों करील फल खावै।

सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै।

अलंकार—इस पद में परिसंख्यालंकार है। क्योंकि सब स्थानों से वृत्ति हटाकर केवल श्रीकृष्णाश्रित कर दी गई है। अतः परिसंख्यालंकार है।

विशिष्ट—इस पद में मीरा ने राजगृह तथा लोक व्यवहार-वर्णन के माध्यम से भक्ति भावना की अभिव्यक्ति की है। राजगृह में कर्मचारियों एवं अधिकारियों की अपेक्षा राजदरबार में सीधा पहुँचना लाभकारी है तथा लोक व्यवहार में हीरों का व्यापारी होना श्रेष्ठ है। निम्न स्थिति पर रहना किसी भी दशा में उचित नहीं। अतः मीरा ने भी सभी को त्याग कर भगवान् श्रीकृष्ण का ही आश्रय ले लिया है। उसके दरबार में जाने के बाद किसी अन्य से सम्बन्ध रखने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

मीरा लागो रंग हरी, और न रंग अंटक परी ॥टेक॥

चूड़ी म्हांरे तिलक अरु माला सील बरत सिणगारो।

और सिंगार म्हांरे दाय न आवैं, यों गुर ग्यान हमारो।

कोई निन्दो कोई बिन्दो म्हेँ तो, गुण गोविन्दे का गास्यां।

जिण मारग म्हांरा साध पधारे, उन मारग म्हे जास्याँ।

चोरी न करस्यां जिव न सतास्यां काँई करसी म्हारों कोई।

गज से उतर के खर नहीं चढ़स्यां ये तो बात न होई ॥ 21 ॥

पाठान्तर—एक अन्य पाठ में पारिवारिक-जनों का व्यवहार भी मीरा ने प्रस्तुत किया है। जो निम्नलिखित पद में व्यक्त है।

मीरा रंग लायो नांम हरी और रंग अटकि परी।

गिरिधर साजस्याँ सखी ये न होस्या मोह्यो गिरधारी।

जेठ बहू का नाती नहीं छै, राणा थे सेवक म्हेँ स्वामी।

चूड़ो देवड़ो तिलक जपमाला, सील बरत सो भारी।

चोरी करौं नहीं जीव सतावां कोई करै लो म्हारो कोई।

गज चढ़ खर न चढ़ा हो राणा ये तो बातों सरी।

गिरधर धनी गोविंद कडू वो साधसन्त म्हारा अरी।

थें थाके म्हेँ म्हां के हो राणा जी यूँ कहै मीरा खरी।

शब्दार्थ—रंगहरी=हरि, श्रीकृष्ण का रंग। श्रीकृष्ण के रंग में लीन, हरा रंग। अंटक=बाधा, रुकावट। चूड़ी=चूड़ियाँ। सील बरत=शील एवं व्रत। आचार=व्यवहार। सिणगारो=शृंगार। दाय=पसन्द, अनुकूल। गुरग्यान=गुरु ज्ञान, गुरु का दिया हुआ ज्ञान। निन्दो=निन्दा करो। बिन्दो=वन्दना करो, प्रशंसा करो। गास्याँ=गाऊँगी। मारग=मार्ग, रास्ता। म्हांरा=हमारा। जास्याँ=जाऊँगी। जिव=जीव, प्राणी। सतास्याँ=सताऊँगी। गज=हाथी। खर=गधा। चढ़स्याँ=चढ़ूँगी।

व्याख्या—मीरा कहती है कि उसे श्रीकृष्ण का रंग लग गया है। अब और रंग बाधा नहीं पहुँचा सकते। और किसी का रंग मीरा पर प्रभाव नहीं जमा सकता। श्रीकृष्ण के प्रेम को छोड़कर मीरा अन्य किसी देवता से प्रेम नहीं कर सकती। मेरा शृंगार चूड़ियाँ, तिलक, माला तथा आचार-व्यवहार के अनुसार व्रतादि रखना है। गुरु ने मुझे यह ज्ञान दिया है इसलिये और किसी प्रकार का शृंगार मुझे पसन्द नहीं आता है। चाहे कोई मेरी निन्दा करे अथवा प्रशंसा करे, मुझे तो श्रीकृष्ण के गुणों का ही गान करना है। जिस रास्ते से हमारे साधुजन चलेंगे। उसी मार्ग से ही मुझे भी जाना है।

नोट

मैं न तो चोरी करती हूँ, न ही प्राणियों को सताती हूँ। हाथी से उतरकर कोई भी गधे पर नहीं चढ़ता है। यदि कोई ऐसा करता है तो यह अच्छी बात नहीं होगी। मीरा के कहने का अभिप्राय यह है कि मैं एक बार कृष्ण को अपना लेने के अनन्तर उनसे विमुख नहीं होऊँगी। उस मार्ग से विचलित न होऊँगी।

विशिष्ट—इस पद में अभिधा शक्ति का सशक्त प्रयोग है। परन्तु अन्तिम पंक्ति में लक्षण द्वारा मीरा ने अपनी मनोवृत्ति प्रकट की है कि वह भक्ति मार्ग से किसी प्रकार अपना पाँव पीछे न हटाएगी।

1. अन्तिम पंक्ति में दृष्टान्त अलंकार है।

आवो सहेल्या रली करौं हे, पर घर गवण निवारि।

झूठा माणिक मोतिया री, झूठी जगमग जोती।

झूठा सब आभूषण री, साँची पिया जी री पोति।

झूठा पाठ पटवर रे, झूठा दिखणी चीर।

साँची पियाजी री गूदड़ी, जामे निरमल रहैं सरीर।

छप्पन भोग बुहाइ दे हे, इन भोगनि में दाग।

लूण अलूणो ही भलो हे, अपने पिया जी को साग।

देखि विराणै निवांण कूँ हे, क्यूँ उपजावै खीज।

कालर अपणो ही भलो हे, जामे निपजै चीज।

छैल विराणो लाख को हे, अपणो काज न होई

ताके संग सीधारताँ हे, भला न कहसी कोइ।

वर हीणों अपणों भलो हे, कोढ़ी कुष्टी कीइ।

जा के संग सीधारताँ है, भला कहै सब लोइ।

अविनासी सुं बालवाँ हे, जिनसूँ सांचो प्रीत।

मीरा कूँ प्रभु मिल्या हे, एही भगति की रीत॥२७॥

शब्दार्थ—सहेल्या=सखियों, सहेलियों। रली करां=मिलकर खेलें, केलि करें, आनन्द मनाएँ। पर घर=दूसरों के घर। गवण=जाना। निवारि=छोड़ कर, रोककर। माणिक=मणियाँ। जगमग=जगमगाती, चमकीली। जोती=ज्योति, चमक, रोशनी। आभूषण=आभूषण, गहने। साँची=सच्ची। पिया जी री=प्रियतम की। पोति=माला, नाम लेना। पाटपटम्बर=रेशमी कपड़े। दिखणी=दक्षिण क्षेत्रीया। चीर=वस्त्र। साँची=सच्ची है। गुदड़ी=साधारण वस्त्र फटे पुराने वस्त्र। निरमल=पवित्र। छप्पन भोग=छप्पन प्रकार के खाद्य पदार्थ। बुहाइ दे=बहा दे, फेंक दे। भोगनि में=भोग योग्य व्यंजनों, पदार्थों में। दाग=दोष, कालिमा, धब्बा। लूण=नमकवाला। अलूणा=बिना नमक के। विराणै=विराने, पराये। निवांण=नीची उपजाऊ भूमि। उपजावें=पैदा करें। खीज=क्रोध, मन के बुरा मानने की जलन, द्वेष, डाह। कालर=ऐसी भूमि जो बहुत कम उपजाऊ हो। निपजै=उत्पन्न होती है। चीज=पदार्थ, अच्छे अन्न, अच्छी वस्तु। छैल=सुन्दर। विराणी=पराया, दूसरा। लाख को=लाख का, बहुमूल्य। सिधारतां=जाने पर। हीणो=हीन तुच्छ, साधारण। वर=पति, स्वामी। लोइ=लोग। सूँ=समान, सहर्ष। बालेमाँ=वल्लभ, प्रियतम। ऐहो=ऐसी।

व्याख्या—हे सहेलियो! आओ, दूसरे के घर जाना छोड़ कर आनन्द करें। श्रीकृष्ण को ही अपना एकमात्र आश्रय मानकर प्रसन्नता से रहें। इस संसार में मिलने वाले मणियाँ और मोती भी झूठे हैं और इनकी जगमगाहट भी झूठी है। तात्पर्य यह कि संसार में जो पदार्थ बहुत आकर्षण वाले हैं वे भी सब झूठे हैं। नष्ट होने वाले हैं। गहने भी सब झूठे हैं। इनमें भी कोई सार नहीं है। नारियों का गहनों की ओर आकृष्ट होना भी सारहीन है। केवल प्रियतम का प्रेम ही सच्चा है। पहने जाने वाले रेशमी वस्त्र भी झूठे हैं। (राजाओं के घरों में रेशमी वस्त्र पहनने का रिवाज था ही, मीरा ने उन वस्त्रों की ओर संकेत किया है कि यह आडम्बर दिखावे से भरे वस्त्र पहनना भी बेकार है) दक्षिण क्षेत्र में बने हुए वस्त्र भी व्यर्थ हैं। दक्षिणी रेशमी साड़ियाँ इत्यादि पहनावे या दक्षिणी रेशमी कपड़े भी निस्सार हैं। प्रियतम रेशमी साड़ियाँ इत्यादि पहनावे या दक्षिणी रेशमी कपड़े भी निस्सार हैं। प्रियतम की गुदड़ी ही अच्छी है। जिसमें सारा शरीर पापों से छूटा रहता है, पवित्र रहता है। इन छप्पन प्रकार के खाद्य पदार्थों को त्याग दो। इनसे तो कलंक

नोट

लगने की सम्भावना है। अपने प्रियतम का दिया हुआ नमक वाला या नमक रहित सागपात (व्यंजन) खाने में ही भला है, दूसरों की उपजाऊ भूमि को देखकर अपने में क्यों ईर्ष्या-द्वेष पैदा करती हो। अपनी अनुपजाऊ भूमि भी अच्छी है जिसमें तुम्हारे काम योग्य पदार्थ तो उत्पन्न होते ही हैं। दूसरे की सुन्दर वस्तु चाहे लाखों रुपयों की भी क्यों न हो। वह अपने काम की नहीं है। (यहाँ छैल शब्द विवेच्य है। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने छैला शब्द का अर्थ रसिक व्यक्ति दिया हुआ है, वह अशुद्ध है क्योंकि छैल शब्द, पंजाबी भाषा का है; जिसका अर्थ सुन्दर है, यह विशेषण पद है। संज्ञा नहीं) उसके साथ चलने पर कोई भला नहीं कहता। (लगता है कि दूसरी पंक्ति के कारण ही छैल शब्द का अर्थ रसिक युवा कर दिया है ताकि दूसरी पंक्ति का अर्थ यह ठीक बैठ जाए कि उस रसिक युवक के साथ जाने पर कोई भी भला नहीं कहेगा परन्तु वास्तव में यह अर्थ है कि अत्यन्त भड़कीले (बने-ठने) रूप से जाने वाले को कोई भला नहीं कहता है। यहाँ छैल का तात्पर्य अपने को अत्यन्त भड़कीला और चंचल बनाने से है। रसिक युवा अर्थ किसी भी दशा में ग्राह्य नहीं है। हाँ! छैल से छैला अर्थ ले लिया जाए, जो कि सम्भव है तब होगा कि दूसरे का रसिक पति चाहे कितना ही अमूल्य हो, लाखों का हो, परन्तु उससे अपना काम नहीं चलता। उस छैला (भड़कीले व्यक्तित्व वाले व्यक्ति) के साथ चलने पर भला नहीं होगा। जग हँसाई ही होगी। अपना पति चाहे हीन, कोड़ी भी क्यों न हो, वह ही अच्छा है। उसके साथ चलने पर सब लोग अच्छा ही कहेंगे। कोई बुराई न कहेगा। अतः अपना प्रियतम अविनाशी भगवान को ही मानना उचित है। जिनसे हमारी सच्ची प्रीति है। मीरा कहती हैं कि उसे भगवान् (स्वामी-पति) मिल गया है। अतः यही भक्ति की रीति ठीक है।

विशिष्ट—इस पद में सांसारिक पदार्थों की असारता के साथ ही लोक व्यवहार की पद्धति का वर्णन भी है। यहाँ लौकिक पदार्थों के ग्रहण या अग्रहण की नीति दिखाई गई है।

अलंकार—इस पद में परिसंख्यालंकार है क्योंकि सब पदार्थों से हटा कर भक्ति में ही मन को लीन किया गया है।



क्या आप जानते हैं

मीरा की भाषा राजस्थानी एवं ब्रज मिश्रित भाषा है। इसके अतिरिक्त गुजराती, पंजाबी, बांग्ला, फ़ारसी आदि के शब्द भी उनके पदों में प्रयुक्त हुए हैं।

माई म्हाणो सुपणा माँ परण्याँ दीनानाथ।
छप्पण कोटाँ जणाँ पधारयाँ दुल्हो सिरी ब्रजनाथ।
सुपणा माँ तोरण बंध्या री सुपणामाँ गह्या हाथ।
सुपणाँ माँ म्हारे परण गया पायाँ अचल सोहाग।
मीरा रो गिरधर भिल्या री, पुरब जणम रो भाग॥28॥

पाठान्तर—

माई री म्हाँने सपणे माँ परणी गोपाल।
राती पी की चुनरी पहरी, मँहदी पान रसाल।
काँई कराँ और संग भाँवर, म्हाँने जग जंजाल।
मीरा प्रभु गिरधर लाल सँ, करी सगाई हाल।

इस पद के कई पाठान्तर प्राप्त हैं। उसका कारण पाठों में प्रयुक्त भिन्नार्थक शब्द नहीं है। अपितु विभिन्न लेखकों ने अपनी मतभिन्नता प्रदर्शित करने के लिये पद के शब्दों तथा शब्दरूपों में हेरफेर कर दिया है। इससे कई पाठान्तर प्राप्त होने लगे हैं।

शब्दार्थ—म्हाणो=मेरा। सुपणा=स्वप्न। मां=में। परण्यां=परिणय कर लिया, विवाह कर लिया। छप्पण कोटाँ=छप्पन करोड़। जणाँ=जन, मनुष्य, बराती। पधारियाँ=पधार, आये। दुल्हो=दूल्हा, वर। सिरी=श्री। तोरण=द्वार बन्धन। बंध्यारी= बाँध दिया। गह्या=पकड़ा। परण=परिणय, विवाह या प्रतिज्ञा। अचल=अटल। सुहाग=सौभाग्य। पुरब=पूर्व, पहले। भाग=भाग्य।

नोट

व्याख्या—हे सखि! स्वप्न में श्रीकृष्ण दीनानाथ ने मेरा विवाह अपने साथ कर लिया। (स्वप्न में मेरे साथ दीनानाथ श्री कृष्ण का विवाह हो गया) मेरे विवाह की बारात में छप्पन करोड़ मनुष्य आये। उनमें दूल्हा के रूप में श्री ब्रजनाथ श्रीकृष्ण थे। मेरे स्वप्न में ही मुख्य द्वार पर आमों के पत्तों की मंगल मालाओं का बन्धन बंध गया। स्वप्न में ही श्रीकृष्ण ने मेरा हाथ पकड़ लिया, अर्थात् पाणि-ग्रहण संस्कार हो गया। इस प्रकार स्वप्न में ही मेरा विवाह हो गया (अथवा मेरी श्रीकृष्ण से विवाह करने की प्रतिज्ञा पूरी हो गई)। मैंने अटल सौभाग्य प्राप्त कर लिया है। मीरा कहती है कि पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण अथवा पहले जन्म में किये कर्मों से प्राप्त भाग्य के कारण ही मुझे श्रीकृष्ण पति के रूप में प्राप्त हो गए हैं।

विशिष्ट—भक्ति पद्धति में स्वप्न की स्थिति भी इष्टदेव के मिलन के लिए मानी गई है।

थे मत बरजाँ माइड़ी, साधाँ दरसण जावाँ।
स्याम रूप हिरदाँ बसाँ, म्हारे ओर णा भावाँ।
सब सोवाँ सुख नीदड़ी म्हाणे नेण जगावाँ।
ग्याण नंसा जग बावरा ज्याकूँ स्याम णा भावाँ।
माँ हिरदाँ वस्या साँवरो म्हारे णींद न आवाँ।
चौमास्याँ री बावड़ी ज्याँ कूँ नीर णा पीवाँ।
हरि निर्झर अमृत झरया, म्हारी प्यास दुझावाँ।
रूप सुरंगा साँवरो, मुख निरखण जावाँ।
मीरा व्याकुल बिरहिणी अपनी कर ल्यावाँ ॥29॥

शब्दार्थ—थे=तुम। बरजाँ=रोको। माइड़ी=माँ। दरसण=दर्शन। हिरदाँ=हृदय में। बसाँ=बसा हुआ है। ओर=और। भावाँ=अच्छा लगता। चौमास्याँ की बावड़ी=चौमासे या वर्षा ऋतु में भर जाने वाली बावरी। नीर=जल। निर्झर=झरना। भर्या=भरा। रूप सुरंगा=सुन्दर। निरखण=देखने।

व्याख्या—हे माँ अथवा सखि! तुम मुझे मत रोको। मैं साधुओं के दर्शन के लिए जाती हूँ। श्रीकृष्ण का सुन्दर रूप मेरे हृदय में बसा हुआ है। मुझे और कोई अच्छा नहीं लगता। श्रीकृष्ण के रूप के अतिरिक्त किसी दूसरे का रूप नहीं भाता। सब लोग सुख की नींद सोते हैं। परन्तु मेरे नयन जागते रहते हैं। नींद ही नहीं आती। जगत् में जिन्हें श्रीकृष्ण प्रिय नहीं हैं। उनका ज्ञान नष्ट हो चुका है। वह जगत् (वे लोग) ही पागल हो गया है, जिसे श्रीकृष्ण अच्छा नहीं लगता। मेरे हृदय में श्रीकृष्ण बसा हुआ है। इसलिए मुझे नींद नहीं आती। मेरे लिए (मीरा के लिये) श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य सब देवता गण चौमासे के (वर्षा ऋतु) जल से भरी बावड़ी के समान हैं। मैं उनकी पूजा नहीं कर सकती। न ही वे मुझे प्रिय हैं। क्योंकि वर्षा ऋतु का जल कोई नहीं पीता। ऐसे ही मैं श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी देव को अपना इष्ट प्रिय नहीं मान सकती। श्रीकृष्ण अमृत को देने वाले झरने के समान हैं। इस झरने के अमृतजल से ही मेरे हृदय की प्यास बुझ सकती है। श्रीकृष्ण का रूप मोहक एवं सुन्दर हैं। सांवला रूप मनभाता है। मैं उसी का सुन्दर मुख देखने के लिए जी रही हूँ। मीरा कहती है कि मैं श्री कृष्ण के वियोग में बेचैन हूँ। इसलिए हे श्रीकृष्ण! हे प्रिय! मुझे अपना लो, अपनी प्रिय मान लो।

विशिष्ट—इस पद में “चौमास्याँ री बावड़ी ज्याँ कूँ नीर णा पीवाँ” पद्यांश में दृष्टान्त अलंकार है। क्योंकि वर्षा ऋतु के जलवाली बावड़ी के जल के समान ही अन्य देवों की पूजा को माना गया है।

“हरि निर्झर अमृत झरया” पद्यांश में रूपकालंकार की छटा है। हरि (भगवान, इष्टदेव) को ही मीरा ने निर्भर मान लिया है। हरि पर अमृत वाले निर्झर का आरोप किया गया है। झरने के जल पर अमृत का आरोप है। अतः रूपकालंकार सुन्दर रूप में समन्वित है।

बरजी री म्हां स्याम विणा न रह्याँ ॥टेक॥
साधाँ संगत हरि सुख पात्यूँ जग सँ दूर रह्याँ।
तण मण म्हारौ जावाँ जास्याँ, म्हारो सीस लह्याँ।
मण म्हारो लाग्याँ गिरधारी, जगरा बोल सह्याँ।
मीरा रे प्रभु हरि अविनासी, थारी सरणा गह्याँ ॥ 30 ॥

नोट

शब्दार्थ—बरजी=रोकी हुई, मना करने पर। संगत=संगति। जग सूं=संसार से। दूर रखाँ=दूर रहती हूँ। जावाँ जास्यौं=जाता है, चला जाए। सीस=शीश, सिर। लह्यौं=ले लिया जावे, काट लिया जावे। जगरा=झगड़ा जग रा=संसार का। बोल=बोली, कड़वे वचन, व्यंग्य भरे शब्द। थारी=तुम्हारी। सरण=शरण। गह्यौं=पकड़ती हूँ।

व्याख्या—मुझे श्रीकृष्ण की उपासना करने से रोका गया। परन्तु रोकने पर भी मैं श्रीकृष्ण के बिना न रह सकती हूँ, न रह सकी। साधों-भगवान के भक्तों की संगति में रहकर अपने प्रिय श्याम को मिलने का सुख प्राप्त करती हूँ और संसार की मोह-ममता से दूर रहती हूँ। मेरा शरीर और मन तो जाने वाला है। विनाश को प्राप्त करने वाला है। इसलिए यदि शरीर और मन जाता है तो जाए। मेरा तो सिर भी श्याम के चरणों में समर्पित है। मेरा सिर ले लिया जावे तो भी मुझे कोई खेद नहीं है। मेरा मन श्रीकृष्ण के प्रेम में रम गया है, तल्लीन हो गया है। इस कारण मैं झगड़े और कटु वचन अथवा व्यंग्य भरे वचनों को भी सुन लूँगी। अथवा श्रीकृष्ण से प्रेम होने के कारण मैं संसार के लोगों द्वारा कहे जाने वाले व्यंग्य वचनों को भी सुन लूँगी। मीरा कहती है कि मेरे प्रभु तो अविनाशी, अमर हैं। इसलिए हे भगवन्! मैंने तुम्हारी शरण ग्रहण कर ली है। इसलिए शरण में आने के कारण अब मेरी रक्षा कीजिए।

विशिष्ट—इस पद की तीसरी पंक्ति में “जावाँ जास्यौं” पाठ है। जिसका अर्थ जाता है, जाने वाला है तो जाए। किया गया है। परन्तु यदि पाठ “आवाँ जास्यौं” माना जाए तो अर्थ में गम्भीरता आ जाती है। क्योंकि शरीर को “आने जाने वाला” होना लोक प्रसिद्ध है। शरीर नष्ट होता रहता है साथ ही मन भी नष्ट हो जाता है। इसलिए “आवाँ जास्यौं” पाठ अधिक संगत है यह पद “कामोद राग” में गाया गया है।

इस पद में मीरा के अन्तःकरण में संसार के प्रति उपेक्षा की भावना प्रबल रूप में दिखाई पड़ती है। वह अपने मन की दृढ़ता एवं भक्ति भावना की पावनता के कारण किसी भी बाह्य आक्षेप को सहन करने के लिए सर्वथा सशक्त रूप में प्रस्तुत है। इस पद में अपने भक्ति-प्रेमपूर्ण आन्तरिक जगत् में बाह्य जगत् की कटुता को सहज ही सहन करके वह अपने मार्ग पर अडिग रहने की चुनौती देती-सी लगती है।

आज म्हौरो साधु जननों संग रे, राणा म्हौरा भाग भल्याँ ॥टेक॥

साधु जननो संग जो करिये, चढ़े ते चौगणों रंग रे।

साकत जननो संग न करिये, पड़े भजन में भंग रे।

अठसठ तीरथ संतों ने चरणो कोटि कासी ने कोटि गंग रे।

निन्दा कर से नरज कुण्ड माँ, जासे थासे आंधला अपंग रे।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सन्तो नी रज म्हौरे अंग रे ॥ 31 ॥

शब्दार्थ—साधुजनो=साधुजनों के साथ। साधु लोगों का संग=संगति। चढ़ेते=चढ़ जाता है। चौगणो=चौगुणो। रंग=रंगत, प्रभाव। साकत=शाक्त लोग (हृदयहीन माने जाने वाले बलि पूजक लोग। अठसठ तीरथ=अड़सठ तीर्थ स्थान। संतों ने चरणो= सन्तों के चरणों में ही। कोटि= करोड़ों। सोय=वही। करसे=करेगा। नरककुंड मा=नरक के कुंड में। जासे=जायेगा। थासे=हो जायेगा। आँधला=अन्धा। अपंग=अंगों में विकार वाला। सन्तो नी=सन्तों की, सन्तों के चरणों की। रज=धूल। जंग=जंगों में, पर।

व्याख्या—हे राणा! आज मेरे भाग्य का शुभ समय है। भाग्य अच्छा है कि मुझे साधुजनों की संगति प्राप्त हुई है। जो भगवान् का भक्त साधुजनों की संगति करता है। उस पर भक्ति का चौगुणा रंग चढ़ जाता है शाक्त लोगों की संगति नहीं करनी चाहिए। क्योंकि वे हृदयहीन होते हैं, बलिपूजन में विश्वास करते हैं। इस कारण शाक्त लोगों की संगति करने से भगवान के नाम को भजने में (भक्ति करने में) विघ्न पड़ते हैं। रुकावटें आती हैं। सन्तों के चरणों की सेवा करने से अड़सठ तीर्थों की यात्रा करने के समान पुण्य प्राप्त होता है। करोड़ बार काशी जाने और गंगा में करोड़ों बार स्नान करने से जो पुण्य मिलता है, वही सन्तों की चरण सेवा से सहज में मिल जाता है। सन्तों की निन्दा करने वाला नरक के कुंड में जाएगा। वह अंधा और अंगहीन हो जाएगा। मीरा के स्वामी तो गिरधर नागर श्रीकृष्ण हैं। और सन्तों के चरणों की धूल मेरे (मीरा के) अंगों में लगी हुई है। सन्तों के चरणों की धूल की कृपा से मैं पवित्र हो गई हूँ।

विशिष्ट—इस पद में शाक्त जनों की संगति का विरोध प्रकट किया गया है। मीरा के इन वचनों से लगता है कि युद्ध-प्रिय वंश की महारानी होने के कारण वह राणा कुल में दुर्गापूजा तथा तत्सम्बन्धी शाक्त आचार-विचार देखती

नोट

रही होंगी। मीरा को बलि, मांस, मदिरादि का क्रम अपने जीवन के अनुकूल नहीं लगा था। इसलिए वैष्णव जनों का पक्ष लेते हुए उसने शाक्तों पर कटु व्यंग्य किया है। इस व्यंग्य में तत्कालीन भक्ति-क्षेत्र में शाक्तों की निंदनीय स्थिति का भी ज्ञान हो जाता है।

कबीर ने भी शाक्तों का विरोध किया था। उन्हें वैष्णव जन की झोंपड़ी प्रिय थी। वे शाक्तों के बड़गांव से भी दूर भागते थे। निम्नलिखित पद इसी भावना का परिचायक है।

चंदन की कुटकी भली ना बबूर की अबराउं।

वैश्यों की छपरी भली, ना साक्त का बड़गाँउ।

शाक्तों के आचार-विचार का विरोध वैष्णव भक्तों द्वारा सामाजिक स्तर पर परम्परागत था। इसीलिए भी मीरा ने वैष्णवजनों का पक्ष लिया है।

चौगणी रंग 'चढ़ना', 'भजन में भंग-पड़ना', 'अंग रज लो'— जैसे मुहावरों का प्रयोग भावाभिव्यक्ति को सफल बनाता है।

माई म्हा गोविन्द गुण गास्याँ ॥ टेक ॥

चरणाम्रित रो नेम सकारे नित उठ दरसण जास्याँ।

हरि मन्दिर माँ निरत करावाँ घूँघर्याँ धमकास्याँ।

स्याम गाम रो झाँझ चलास्याँ भो सागर तर जास्याँ।

यो संसार बीडरोँ काँटो गैल प्रीतम अटकास्याँ।

मीरा रे प्रभु गिरधर नागर गुन गावाँ सुख पास्याँ ॥३१॥

शब्दार्थ—गास्याँ=गाऊँगी। चरणाम्रित=भगवान के चरणों को धोने से प्राप्त जल (यह जल भक्त अमृततुल्य मानते हैं)। नेम=नियम। सकारे=सवरे। नित=नित्य, प्रतिदिन। जास्याँ=जाऊँगी। माँ=में। करावाँ=करवाती हूँ। घूँघरया=घुँघरू। धमकास्याँ=बजावेगी, बजाऊँगी। गाम=गाँव, स्थान। झाँझ=जहाज। भो सागर=संसार रूपी समुद्र। तर=तैरना, पार कर जाना। यो=यह। बीडरो=झरबेरी के कांटों का घेरा। गैल=पास, निकट। अटकास्याँ=अटकायेगा। गावाँ=गाती हूँ।

व्याख्या—हे सखि! मैं तो श्री कृष्ण (गोविंद) के गुणों को गाऊँगी। नियमपूर्वक प्रातः उनके चरणों का अमृतजल लेने तथा दर्शन करने के लिये जाऊँगी। भगवान् के मन्दिर में नृत्य (रासलीला, कीर्तन) आदि भी करवाती हूँ। उस नृत्य में अपने घुँघरुओं की मधुर ध्वनि भी करूँगी। घुँघरू भी जोर से बजाऊँगी। श्याम के गाँव में पहुंचने के लिए भक्ति का जहाज (वेड़ा) चलाऊँगी और संसाररूपी सागर से पार हो जाऊँगी। यह संसार झरबेरी के कांटों के समान है। यहाँ मनुष्य मोह माया, ममता में फँस जाता है। इस में मुझे मेरा प्रिय श्रीकृष्ण ही फँसा गया है। मीरा के प्रभु गिरधर नागर हैं। मीरा कहती हैं कि वह उनके गुण गाएँगी और अनन्त सुख पायेंगी।

विशिष्ट—इस पद में 'गोविंद' शब्द ध्यान देने योग्य हैं। गोविंद का अर्थ "गवां विन्दते" इति गोविंदः है। गो इन्द्रियाँ कहलाती हैं, इन्द्रियों को वश में करने वाला आत्मरूप होने से भगवान का नाम गोविंद भी है। गोचारक होने वाला अर्थ पृथक् है। मीरा ने इस पद में इन्द्रियवशकारी भगवान का गुणगान किया है।

(2) "स्याम गाम रो झाँझ चलास्याँ"— पाठ के स्थान पर किन्हीं प्रतियों में "स्याम नाम रो झाँझ चलास्याँ"— पाठ भी मिलता है। तब अर्थ होगा कि श्रीकृष्ण के नाम की झाँझ बजाकर मैं संसार रूपी समुद्र से पार उतर जाऊँगी। यहाँ लिपि के कारण होने वाले अन्तर से दोनों अर्थों में रमणीयता रहती है।

(3) भागवत में श्रवण-कीर्तन, स्मरण आदि भक्ति-विधियों की चर्चा है। उसी पद्धति से यहाँ आत्मनिवेदन, कीर्तन-दास्य आदि का अवलम्बन किया गया है। भागवत का यह श्लोक प्रसिद्ध है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोस्मरणं पाद सेवनम्।

अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।

(4) क्षेमेन्द्र के औचित्य सम्प्रदाय के अनुसार यह व्रतौचित्य का सुंदर उदाहरण माना जाना चाहिये। क्योंकि मीरा अपने जीवन-व्रत पर अटल रही।

नोट

(5) पद में अन्त्यानुप्रास की छटा है। रीति की दृष्टि से यह पद पांचाली का माना जाना चाहिये क्योंकि मीरा पाञ्चाल प्रदेश के अन्तर्गत ही निवास करती थी। पूरिया कल्याण राग का यह पद गेयता में बड़ा प्रभावशाली है।

नहिं भावै थारो देसलड़ो रंगरूड़ो ॥टेक॥
थारै देसाँ में राणा साध नहीं छै, लोग बसै सब कूड़ो।
गहणा गाँठी राणा हम सब त्यागा त्याग्यो कररो चूड़ो
काजल टीको हम सब त्याग त्याग्यो छै बांधन जूड़ो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर बर पायों छै पूरो॥ 33 ॥

शब्दार्थ—भावै=अच्छा लगता। थारो=तुम्हारा। देसलड़ो=देश। रंगरूड़ो=अच्छे रंग का, सुन्दर, विचित्रतापूर्ण। साध=साधु-सन्तजन। कूड़ो=कूड़ा, बेकार, निकम्मे। गहणा=गहना। गाँठी-गांठ=गहनों की गांठ, सब गहनों की पोटली। कर रो=हाथ का। चूड़ो=चूड़ा। हाथी दान्त का दना हुआ चूड़ा। छै=है। बांधन=बाँधना, अथवा जूड़े का बंधन बांधने वाला आभूषण।

व्याख्या—हे राणा! मुझे तुम्हारा यह सुन्दर अथवा विचित्र देश अच्छा नहीं लगता है। हे राणा! तुम्हारे इस देश में साधु (सन्त, भक्त) लोग नहीं रहते हैं। जो लोग तुम्हारे देश में बसते हैं। वे सब कूड़ा हैं। दुर्जन तथा बेकार हैं इन लोगों का भक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने गहनों की पोटली भी छोड़ दी हैं, गहने और वस्त्र सब छोड़ दिये हैं। हाथ में पहना हुआ हाथी दांत का बना चूड़ा भी त्याग दिया है। आँखों में लगने वाला काजल और माथे पर लगाने योग्य टीका (बिंदी) को भी मैंने त्याग दिया है जूड़ा बांधना भी छोड़ दिया है। जूड़े को बांधने वाला बंधन नामक गहना भी छोड़ दिया है। मीरा कहती है कि उस का प्रभु गिरधर नागर है, उसने श्रीकृष्ण को सर्वगुणपूर्ण वर के रूप में प्राप्त कर लिया है। अतः उसे आभूषण नहीं चाहिए।

विशिष्ट—इस पद में मीरा की सांसारिक सुख-भोग के सब पदार्थों को त्यागने की स्पष्टोक्ति है। राणा (देवरा) के दिये सभी आभूषण आदि सुख सामग्री की चिन्ता मीरा ने नहीं की। भक्तिहीन जन मीरा के मत में कूड़ा हैं। खिन्न एवं क्षुब्ध मीरा की वाणी कितनी स्पष्टभाषिणी बन गई है।

(1) भक्ति के अनुसार कोई व्यक्ति भक्त तभी बन सकता है, जबकि वह सांसारिक पदार्थों का मोह सर्वथा त्याग दे। यह तनुजा भक्ति कही जाती है। इस पद में मीरा का भक्ति-भाव तनुजा भक्ति का ही है।

राणा जी म्हाने या बदनामी लगे मीठी ॥टेक॥
कोई निन्दो कोई बिन्दो मैं। चलूँगी चाल अनूठी।
सन्त संगति मा ग्यान सुणै छीं दुरजन लोगें ने दीठी।
मीरा रो प्रभु गिरधर नागर दुरजन जलो जा अंगीठी ॥ 34 ॥

शब्दार्थ—मीठी=भली, अच्छी। निन्दो=निंदा करे। विन्दो=वंदना करे, प्रशंसा करे। चाल=गति। अनूठी=अनोखी (उल्टी-भिन्न मार्ग से)। मा=से, मैं।

व्याख्या—हे राणा जी! मुझे श्रीकृष्ण के प्रति अपने प्रेम के कारण होने वाली बदनामी अच्छी लगती है। वास्तव में यह बदनामी मुझे मधुर लगती एवं भाती है। इस प्रेम के कारण चाहे कोई व्यक्ति मेरी निन्दा करे चाहे कोई मेरी प्रशंसा करे, परन्तु मैं अपनी अनोखी चाल चलती रहूँगी। श्रीकृष्ण के प्रेम-भक्ति सम्बन्धी अनोखे मार्ग पर आरुढ़ रहूँगी। सन्तों की संगति में बैठने के कारण मैंने ज्ञान सुन लिया है। ज्ञान प्राप्त कर लिया है। इस ज्ञान की वार्ता को सुनते हुए दुर्जनों ने मुझे देख लिया और मेरे बारे में अनेक दुर्वचन कहे हैं। मीरा कहती है कि उसके रक्षक स्वामी गिरधर नागर हैं। इसलिए दुर्जन यदि शत्रुता की अंगीठी में जलते हैं, तो जलें। वे दुर्जन मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। मुझ पर उनके बुरे वचनों या व्यंग्यवाणों का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

विशिष्ट—इस पद में मीरा ने अपने जीवन में प्राप्त होने वाली बदनामी का स्पष्ट निर्देश किया है। श्रीकृष्ण की भक्ति के कारण सामाजिक रूप से राज परिवार में उसे बदनामी सहनी पड़ी, दुर्जनों के जो कड़वे वचन सुनने पड़े, उन सबका स्पष्ट उल्लेख यहाँ किया गया है। भगवद् भक्ति के कारण अपने संरक्षण का भाव भी व्यक्त किया गया है। ईश्वर स्वयं, भगवान् अथवा इष्ट देव जब संरक्षक हैं तब संसार के दुर्जन क्या बिगाड़ सकते हैं। इसी दृढ़ धारणा को यहाँ अभिव्यक्ति मिली है।

राणा जी थे क्यौंने राखों म्हाँसूँ बैर ॥टेक॥
 थे तो राणा जी म्हाँने इसड़ा लागो ज्यों बछन में कैर।
 महल अटारी हम सब त्यागा, त्याग्यो थौरो बसनो सहर।
 काजल टीकी राणा हम सब त्याग्या, भगवीं चादर पहर।
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर, इमरित कर दियो जहर ॥ 35 ॥

पाठान्तर—1. मारूँ घर मेवाड़ मेरतो त्याग दियो थौरो सहर।

2. थौरै रूस्यां राणा कुछ नहिं बिगड़ै, अब हरि कीन्ही मेहर।

3. मीरा के प्रभु गिरधर नागर दृढ़ करि पी गई जहर।

शब्दार्थ—क्यों ने=किस कारण से। म्हाँसूँ=मुझ से। बैर=शत्रुता, दुश्मनी। म्हाँने=मुझे। इसड़ा=ऐसा। लागो=लगता है। ज्यों=जैसे। ब्रछन=वृक्षों। कैर=करील। थौरों=तुम्हारा। बसनो=निवास योग्य। सहर=शहर। टीका=बिंदी। भगवीं चादर=भगवे कपड़े। इमरित=अमृत।

व्याख्या—हे राणा जी! तुमने (आपने) मुझ से क्यों शत्रुता ठान ली है। राणा! तुम तो मुझे ऐसे लगते हो, जैसे हरे-भरे वृक्षों में करील का बिना पत्तों वाला कंटीला वृक्ष होता है। तात्पर्य यह कि सन्त जनों, भगवद्जनों के मध्य तुम निष्प्रभाव तथा अखरने वाले लगते हो। सन्तों जैसी शीतलता तथा सरसता तुम में नहीं है। मैंने (मीरा ने) तुम्हारे महलों और अटारी को छोड़ दिया है और तुम्हारे शहर में निवास भी त्याग दिया है। मैंने भगवे वस्त्र (भक्तजनों के) पहन लिये हैं और सांसारिक सुख के प्रतीक आँखों में लगाने योग्य काजल तथा माथे पर लगाया जाने वाला टीका लगाना भी छोड़ दिया है। मेरे प्रभु गिरधर नागर हैं। उन्होंने मेरे लिए जहर को अमृत के रूप में परिवर्तित कर दिया है। इसलिए जहर का प्रभाव भी मुझ पर नहीं हुआ। वह तो अमृत बन गया है।

विशिष्ट—इस पद में मीरा ने राणा को फटकारने के साथ ही स्वयं भगवे वस्त्र धारण करने की बात कह दी है। इससे यह संकेत मिलता है कि मीरा संन्यासिनी हो गयी थी। वह राजसी वस्त्र त्याग कर संन्यासिनी बन गयी थी। इस पद में मन की अपराजेय मनोवृत्ति का परिचय दिया गया है तथा राज-प्रलोभनों को झटके से छोड़ देने का आत्मबल भी धर्णित है।

सीसोद्यो रूद्यो तो म्हाँरो काँई कर लेसी।
 म्हेँ तो गुण गोविन्द का गास्यौँ, हो माई ॥टेक॥
 राणा जी रूद्यो बाँरो देस रखासी।
 हरि रूद्यौँ कुम्हलास्यौँ, हो माई।
 लोक लाज की काण न मानूँ।
 निरभै निसाण घुरास्यौँ, हो माई।
 स्याम नाम का झाँझ चलास्यौँ।
 भवसागर तर जास्यौँ, हो माई।
 मीरा सरण सँबल, गिरधर की।
 चरण कँवल लपटास्यौँ, हो माई ॥36॥

शब्दार्थ—सीसोद्यो=सिसोदिया वंश के राणा। रूद्यो=रूठ गया, नाराज हो गया। काँई=क्या। करलेसी=कर लेगा। गास्यौँ=गाऊँगी। बाँरो=अपना, उनका। रखासी=रखेगा। कुम्हलास्यौँ=कुम्हला जाऊँगी। काण=मर्यादा। निरभै=निडर होकर। निसाण=निशान, नगाड़ा। की घुरास्यौँ=बजाऊँगी। चलास्यौँ=चलाऊँगी। भवसागर=संसार रूपी समुद्र। तर=पार, उद्धार पाना। सबल=शक्तिशाली में। लपटास्यौँ=लिपट जाऊँगी।

व्याख्या—हे सखि! सिसोदिया वंशीय राणा यदि मुझसे रूठ जाएगा तो मेरा क्या कर लेगा। मेरा क्या बिगाड़ लेगा? मैं तो श्रीकृष्ण के गुणों का गान करूँगी। सदा उनके गुणों का कीर्तन करूँगी। यदि राणा रूठ जाएँगे तो उनका देश उन्हें मुबारक! राणा रूठने पर अपना देश रखेगा और मैं उसके देश से निर्वासित कर दी जाऊँगी। परन्तु भगवान श्रीकृष्ण के नाराज होने पर मैं मुरझा जाऊँगी। मेरी जीवन-शक्ति ही समाप्त हो जाएगी। सांसारिक लाज की मर्यादा

नोट

को मैं नहीं मानती। इसलिए निडर होकर मैं अपनी भक्ति-भावना का नगाड़ा बजाऊँगी। तात्पर्य यह कि संसार में श्रीकृष्ण के प्रति अपने पावन प्रेम को सर्वत्र एवं सर्व ज्ञात कर दूँगी। श्रीकृष्ण के नाम का जहाज चलाऊँगी और उस नाम रूपी जहाज पर चढ़कर संसार रूपी समुद्र से पास जाऊँगी। अपना उद्धार कर लूँगी। मैंने तो शक्तिशाली सांवरे गिरिधर की शरण ले ली है और उनके चरणों से लिपटी रहूँगी। अतः मैं निःशंक हूँ। मुझे किसी प्रकार की असुरक्षा का भय नहीं है।

अलंकार—इस पद में अधिक अलंकार है। अधिक अलंकार में आधार और आधेय की लघुता और गुरुता का वर्णन रहता है परन्तु कभी आधार गुरु कभी लघु होता है। यहाँ भी सांसारिक बड़े-बड़े आधारों का त्याग कर भगवान के चरण कमल जैसे लघु आधार को ग्रहण किया गया है। इसलिए दूसरा अधिक अलंकार है परन्तु उन चरण कमलों को जब संसारव्यापी मान लिया जाए तब मीरा रूप में आधेय लघु हो जायेगा। ऐसी दशा में प्रथम अधिक अलंकार होगा। “चरण कमल” में रूपकालंकार भी है।

“सवल शब्द का एक पाठान्तर “साँवल” भी मिलता है। साँवल का अर्थ सांवरा है। सांवला अर्थ भी लिया जा सकता है।

मीरा ने इस पद के भावों को अन्य पदों में भी अभिव्यक्त किया है। “माई म्हां गोविन्द गुण गास्यां” नाम पद में भी इन्ही भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। वास्तव में मीरा के मन में अपने पारिवारिक सम्बन्धियों के प्रति विद्रोह भावना भरी थी। वही बार-बार व्यक्त हो जाती थी।

पग बाँध घुँ घर्खाँ नाच्याँ री॥
लोग कछाँ मीरा बावरी सासु कछाँ कुलनासी री।
विष रो प्यालो राणा भेज्याँ पीवाँ मीरा हाँसी री॥
तण मण वार्याँ हरि चरणा माँ दरसण अमरित प्यास्याँ री।
मीरा रे प्रभू गिरधर नागर थारी सरणाँ आस्याँ री ॥ ३७ ॥

पाठान्तर—दूसरी पंक्ति से पहले यह पंक्ति और मिलती है।

“मैं तो मेरे नारायण की, आपहि हो गई दासी री।”

शब्दार्थ—पग=पैरों में। घुँघर्याँ=घुँघरू। बावरी=पगली। सासु=सास। कुलनासी=कुल पर कलंक लगाने वाली, कुल नष्ट करने वाली। विष रो=विष का, जहर का। पीवाँ=पीती हुई। हाँसी=हँसी, खुश रही। तणमण=तन मन। वार्याँ=न्योछावर करने से। अमरित=अमृत। प्यास्याँ=पीऊँगी। थारी=तुम्हारी। आस्याँ=आ गई हूँ।

व्याख्या—मीरा कहती है कि मैं पांवों में घुँघरू बांध कर नाच करती हूँ। इस कारण लोग कहते हैं कि मीरा पगली हो गई है। सास कहती है कि उसके कुल को इस (मीरा) ने कलंकित कर दिया है। राणा ने मुझे मारने के लिए जहर का प्याला भेजा। उनका विचार था कि जहर का प्याला पीने से मेरी मृत्यु हो जाएगी परन्तु मैंने उस प्याले को हँसी में (हँसते-हँसते) पी लिया है। मैंने अपना शरीर तथा मन श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया है। इसलिए मैं दर्शन रूपी अमृत पियूँगी। अपने इष्टदेव के दर्शनों से मेरी प्यास बुझ जाएगी। मीरा कहती है कि हे मेरे गिरिधर नागर प्रभो! मैं तुम्हारी शरण में आ गई हूँ। अब मैं निश्चित हूँ। मुझे किसी प्रकार का बाह्य सांसारिक भय नहीं रहा।

विशिष्ट—इस पद में मीरा ने अपने ऊपर ढाये जाने वाले पारिवारिक अत्याचारों का स्पष्ट वर्णन किया है। नारी हृदय की कोमलता अत्याचारों की पीड़ा को सहती रही। हँसी से सहती रही। परन्तु अपने विश्वास एवं ध्येय से एक पग पीछे न हटी। यही पावन भाव इस पद में व्यक्त है।

साँवरियो रंग राचाँ राणा, साँवरियो रंग राचाँ॥टेक॥
ताल पखावज मिरदङ्ग बाजा, साधाँ धागे नाच्याँ।
बूझया मारणे मदण वावरी, स्याम प्रीतम्हाँ काचाँ।
विष रो प्यालो राणा भेज्याँ, आरोग्याँ णा जाँच्याँ
मीरा रे प्रभू गिरधर नागर, जनम जनम रो साचाँ॥३८॥

पाठान्तर—इस पद के कई पाठान्तर मिलते हैं। यहाँ एक ही दिया जा रहा है।

साँवरे रंग राची राणा जी हूँ तो।
बाँध घूँघरू प्रेम के, हूँ हरि आगे नाची।
एक निरखत है एक परखत है, एक करत मेरी हाँसी।
और लोग म्हारी काँई करसी, हूँ हरि जी की दासी॥
राणा विष को प्याला भेज्या, हूँ तो हिम्मत सांची।
मीरा स्याम चरण लाग रही है सांची॥

शब्दार्थ—रंग राचौ=रंग में रंग गई। प्रेम में डूब गई। ताल=ताली, ढोलक की ताल, ध्वनि। साधौ=साधुओं। नाच्यां=नाची। बूझ्या=समझा माणे=मुझे। मदन=कामदेव। काचौ=कच्चा। आरोग्यौ=खा लिया, पी लिया। णा जाँच्यौ=न जांचा, न जाँच की।

व्याख्या—मीरा कहती है कि हे राणा! मैं तो अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण के रंग में रंग गई हूँ। अतः तालियाँ बजा-बजाकर सन्तों के आगे भी नाचती रहती हूँ। मुझे इस विषय में किसी प्रकार की लज्जा नहीं है। मेरे बारे में परिवार के लोगों ने समझा कि कामातुर होकर पागल हो गई हूँ। श्री कृष्ण की प्रीति भी कच्ची है, स्थायी नहीं है। राणा ने इन्हीं कारणों से क्रोधित होकर जहर का प्याला भेजा। उस प्याले की जाँच न करके मैंने पी लिया। मेरे स्वामी गिरिधर नागर श्रीकृष्ण हैं। उनका और मेरा सम्बन्ध जन्म जन्मान्तर से है और वह सम्बन्ध सच्चा है। कच्चा नहीं है।

विशिष्ट—“इस पद की तीसरी पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जाता है कि मां ने मुझे बहुत समझाया और कहा कि तू (मीरा) श्रीकृष्ण के प्रेम में पागल हो गई है, श्रीकृष्ण की प्रीति कच्ची है। श्रीकृष्ण का प्रेम सच्चा नहीं है।” परन्तु यह अर्थ औचित्य का स्पर्श नहीं करता। अतः ठीक नहीं लगता।

ऐसी भावना मीरा ने अन्य पदों में भी व्यक्त की है जैसे—

1. मेरी उण की प्रीत पुराणी उण बिन पल न रहाऊँ।
2. पूर्व जन्म की प्रीत पुराणी सो क्यूँ छोड़ी जाय।
3. मीरा कूँ प्रभु दरसन दीज्यो जनम-जनम की चेली।
4. मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे पूरब जनम का साथी।

राणा जी थो' जहर दियो' म्हे जाणी ॥ टेक ॥
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत बारावाणी।
लोक लाज कुल काण जगत की, दइ बहाया जस पाणी॥
अपणे घर का परदा कर ले मैं अबला बौराणी।
तरकस तीर लग्यो मेरे हियरे, गरक गयो सणकाणी॥
सब संतन पर तन मन वारौं, चरण कंवल लपटाणी।
मीरा के प्रभु राखि लई है, दासी अपनी जाणी॥ 39॥

शब्दार्थ—थें=तुम ने। म्हे=मैंने। जाणी=जान लिया। दहत=तपाया जाता है। निकसत=निकलता है। वारावाणी=चमकीला। कुलकाणी=कुल की मर्यादा। जगत की=संसार की मर्यादा या लज्जा। दइ बहाय=बहा दी। जस=जैसे। पाणी=पानी। परदा=ओट। अबला=बलहीन, स्त्री। तरकस तीर=तरकश से निकलने वाला तीर, लोगों के शब्द रूपी बाण। हियरे=हृदय पर। गरक गयो=गर्क गया, डूब गया, चुभ गया। सणकाणी=सनक गई, सनकी हो गई। वारौ=न्योछावर कर दूँ। कंवल=कमल। लपटाणी=लिपट गई हूँ। जाणी=जानकर, समझकर।

व्याख्या—हे राणा! तुम ने मुझे प्याले में जहर भेजा था। मैं इस बात को जान गई थी, तब भी मैंने उस जहर को पी लिया और मेरी भावना इस प्रकार अधिक सत्य सिद्ध हो गई। मेरी भक्ति भावना वैसे ही चमक उठी, जैसे सोना। (धातु) आग में जलाये (गलाए) जाने पर चमकीला होकर निकलता है, कुन्दन बन जाता है। मैंने लोक-मर्यादा तथा कुल की मर्यादा को भी ऐसे ही बहा दिया है, जैसे पानी बहा दिया जाता है। लोक के उपहास तथा कुल के सम्बन्धियों की व्यंग्य भरी उक्तियों की चिन्ता नहीं की। हे राजन! आप अपने ही घर का परदा कर लें। अपने आप

नोट

को ही छिपा लें। मैं तो एक पागल स्त्री हो गयी हूँ। ऐसा श्रीकृष्ण के प्रेम में स्वाभाविक है। अतः अब आप (राजन!) स्वयं ही परे हट जाइए। अपने को छिपा लीजिए। छिपना भी परदे के पीछे छिपने के समान होना चाहिए। मेरे अन्तःकरण में अपने प्रिय श्याम की भक्ति एवं प्रेम के तरकश से निकला हुआ तीर लग गया है, वह तीर गहरा लगा है, अतः मैं सनकी हो गई हूँ, और कुलमर्यादा की चिन्ता नहीं करती मैं अपने तन मन को साधु-सन्तों पर न्यौछावर करने को प्रस्तुत हूँ। जीवन भर साधुओं महात्माओं की सेवा करूँगी। अपने इष्ट देव श्रीकृष्ण के चरणों से लिपट गयी हूँ, चरण कमल ही मेरा आश्रय स्थल हैं, मीरा के प्रभु उसे अपनी दासी (सेविका) समझ कर रक्षा करेंगे।

विशिष्ट—इस पद में दृढ़तापूर्वक आत्मविश्वास के भाव की अभिव्यक्ति है। सम्बन्धियों द्वारा दिया जाने वाला दारुण कष्ट भी मीरा को भक्ति मार्ग से विचलित नहीं कर सका। यही भाव यहां प्रस्तुत है।

जैसे कंचन दहत अग्नि में ...उदाहरण नामक अलंकार है। चरणकवल में स्वाभाविक ही रूपकालंकार की छटा है।

माई म्हाँ गोविन्द गुण गाणा ॥ टेक ॥
 राजा रूठ्याँ नगरी त्यागाँ, हरि रूठ्याँ कहँ जाणा।
 राणौ भेज्या विषरो प्याला चरणामृत पी जाणा।
 काला नाग पिटारयाँ भेज्या, सालगराम पिछाणा।
 मीरा तो अब प्रेम दिवाणी, साँवलिया वर पाणा ॥ 40 ॥

शब्दार्थ—म्हाँ=मैंने। गाणा=गाना है (गाऊंगी)। रूठ्याँ=नाराज होने पर। विषरो=जहर का। नाग=सर्प। सालागराम=शालिग्राम। पिछाणा=पहचाना, माना। दिवाणी=दीवानी, तल्लीन। वर=पति। पाणा=पाना है।

व्याख्या—हे सखि! मुझे तो अब जीवन भर गोविंद (श्रीकृष्ण) के गुणों को गाना है। यदि राजा मुझसे रूठ जाए तो मैं उसकी नगरी छोड़ सकती हूँ, परन्तु अपने इष्ट देव भगवान श्री कृष्ण के रूठ जाने (नाराज) हो जाने पर कहाँ जा सकती हूँ। राणा ने मेरी जीवनलीला समाप्त करने के लिए विष से भरा (जहर भरा) प्याला भेजा। मैंने उसे श्रीकृष्ण के चरणों का अमृत जल माना और पी गयी। काला सर्प पिटारी में बंद करके डसने के लिए भेजा गया। उस नाग को भी मैंने शालिग्राम के रूप में पहचाना। वह मीरा तो अब श्री कृष्ण के प्रेम में तल्लीन होने के कारण पगली लगती है। मुझे तो उसी श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करना है।

विशिष्ट—इस पद में सांसारिक सम्बन्धियों द्वारा दिये जाने वाले कष्टों के वर्णन के द्वारा मीरा ने अपनी अटल भक्ति का परिचय दिया है। मीरा ने विष का प्याला तथा कालेनाग के द्वारा होने वाले जीवन-नाश की चिन्ता नहीं की और अपने भक्तिभाव के कारण मृत्यु से बच गयी। भक्ति के असाधारण प्रभाव को इस पद में प्रकट किया गया है।

1. इस पद में दो स्थानों पर भ्रम (भ्रांतिमान्) अलंकार है। विष के प्याले को श्रीकृष्ण के चरणामृत के रूप में समझा। वह इसलिये क्योंकि श्री कृष्ण का रंग श्याम है। उनका चरणामृत भी इसी वर्ण का होगा। जहर का रंग भी इस भांति का होता है। इसलिए सन्देह न किया अपितु जहर को चरणामृत ही मान लिया। काले नाग को शालिग्राम मानना ही इसी अलंकार की छटा प्रकट करता है। भ्रमालंकार में एक पदार्थ को देखते हुए भी निश्चित रूप से दूसरा माना जाता है। अतस्मिन्तद् बुद्धि होती है। (जो जैसा नहीं है, उसे वैसा मान लिया जाता है) इसलिए दोनों स्थानों पर भ्रांतिमान् अलंकार की छटा है।

यो तो रंग धत्ताँ लग्यो ए माय ॥ टेक ॥
 पिया पियाला अमर रस का, चढ़ गई घूम घुमाय।
 यो तो अमल म्हाँरो कबहुँ न उतरे, कोट करो न उपाय।
 साँप पिटारो राणा जी भेज्यो, द्यो मेड़तणी गल डार।
 विष को प्यालो राणा जी मेल्यो, द्यो मेड़तणी ने पाय।
 कर चरणामृत पी गई रे, गुण गोविन्द रा गाय।
 पिया पियाला नाम का रे, ओर न रंग सोहाय।
 मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर, कांचो रंग उड़ जाय ॥ 41 ॥

शब्दार्थ—यो तो=यह तो। धत्ताँ= पक्का, खूब गहरा, बहुत अधिक। लग्यो=लग गया। अमररस=अमरता देने वाला भगवद् भक्ति का रस। घूम=नशा, मस्ती। घुमाय=चक्कर खा कर, चक्कर देकर, चकराकर। अमल=नशा। कोट=कोटि, करोड़ों। द्यो=दिया। मेड़तणी=मेड़ता की रहने वाली। डार=डालदो। नौसर हार=नौ लड़ियों वाला हार। मेल्यो=भेजा, दिया। गाय=गा कर। सोहाय=अच्छा लगता। कांचो=कच्चा।

व्याख्या—हे मां। (अथवा सखि)। मुझ पर भगवान श्रीकृष्ण के भक्ति भाव एवं प्रेम का रंग गहरा चढ़ गया है। मैंने अमर कर देने वाले प्रेम रस का प्याला पी लिया है और उस के नशे में मुझे चक्कर आ गया है। अब यह चक्कर देने वाला प्रेमामृत रस का नशा कभी उतरने वाला नहीं है। इसे उतारने के लिये चाहे करोड़ों उपाय भी क्यों न कर लिये जाएँ, तब भी यह नशा नहीं उतरेगा। राणा ने पिटारी में साँप रख कर मुझे मारने के लिये भेजा परन्तु मेड़तावासिनी (मैं) ने उसे गले में डाल लिया। उसे हंसते - हंसते गले से लगा लिया, उस सर्प को नौ लड़ियों वाले हार के समान समझ कर गले में पहना। राणा जी ने जहर का प्याला भेजा, उसे भी मेड़तावासिनी ने (मीरा ने) पी लिया। गोविंद के गुणों का गान करती रही और जहर को अपने इष्टदेव श्री कृष्ण का चरणामृत मानकर पी गयी। अब तो मैंने इष्टदेव के नाम का ही प्याला पी लिया है। अब और कोई रंग अच्छा नहीं लगता। मुझे उन के नाम के अतिरिक्त दूसरी बात नहीं सुहाती। मीरा के स्वामी तो श्रीकृष्ण हैं। उनके नाम का रंग पक्का है। यह रंग नहीं उतरेगा। कच्चा रंग तो उड़ जाता है, पक्का नहीं छूटता।

विशिष्ट—इस पद में भी दोनों घटनाओं का वर्णन है परन्तु पद में “मेड़तणी” शब्द ध्यान देने योग्य है। मीरा के अन्तःकरण का कुलक्रमागत राजसी गुण यहां प्रकट हैं, यहाँ रजोगुण की प्रधानता है। मेड़ता की वासिनी होने का उसे गौरव है। वह भीषण कष्टों से पार होने की क्षमता रखती है। इसी पद में गिरिधर शब्द भी है जो श्रीकृष्ण की लीलाओं की रजोगुण-प्रधानता का द्योतक है। “मेड़तणी” और ‘गिरिधर’ शब्द शक्ति एवं आत्मविश्वास को दर्शाने के लिए प्रयुक्त हैं। यहाँ मीरा का वंशज रजोगुण उभर आया है। मातृ कुल के गौरव से समन्वित हो कर अपनी कष्टपरायणता की सामर्थ्य का परिचय इस पद में दिया गया है।

अलंकारः— काले नाग पर नौ लड़ी वाले हार का आरोप रूपकालंकार की छटा दिखाता है।

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥टेक॥
साँप पिटारा राणा भेज्यो, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अँचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय।
साँझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।
मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे बिघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरिधर पै बलि जाय ॥४२॥

शब्दार्थ—मगन=मग्न, तल्लीन। दीन्ह=दिया। अंचाय=पी कर। सूल सेज=सूलों की सेज (शूलों की शय्या) सहाई=सहायक। विघन=विघ्न, बाधा। डोलती=घूमती। पै=पर। बलि जाय=बलिहारी जाती हूँ।

व्याख्या—अपने इष्टदेव भगवान श्रीकृष्ण के गुणों को गा-गा कर मीरा उन गीतों में ही तल्लीन हो गई है। उन गीतों में ही अपने आप को डुबोए हुए है। राणा ने पिटारे में साँप को बंद करके भेजा और वह साँप वाला पिटारा जाकर मीरा के हाथ में दे दिया गया। नहा धोकर जब मीरा उस पिटारे को देखने लगी तो साँप की अपेक्षा उसे शालिग्राम के रूप में पाया गया। राणा ने मीरा की जीवन-लीला समाप्त करने के लिये जहर से भरा हुआ प्याला भेजा, भगवान ने अपनी कृपाशक्ति से उसे अमृत बना दिया। नहा-धो कर (स्नानोपरांत) जब मीरा उस भरे प्याले को पीने लगी तो पी कर अमर हो गई। कांटों भरी शय्या भी राणा ने भेजी और मीरा को उस पर सुलाने के लिये कहा। संध्या हुई और जब मीरा उस कांटों भरी शय्या पर सोने लगी तो वह ऐसे लगी, मानो फूलों की शय्या हो। मीरा के प्रभु ही उस के सदा सहायक हैं, जिन्होंने उस की जीवन-यात्रा में आने वाले सभी विघ्नों को दूर कर दिया है। मीरा तो अपने इष्ट के लिए गाए जाने वाले भजनों (भक्ति गीतों) के भाव की मस्ती में ही रहती है। भाव दशा में ही लीन रहती है और वह अपने गिरिधर गोपाल पर अपने आप न्योछावर होती है।

नोट

विशिष्ट—इस पद में क्रमागत सर्प तथा जहर की घटना के साथ ही शूलों वाली शय्या का वर्णन भी दिया गया है। जो उनके जीवन की कष्ट गाथा की एक बड़ी कड़ी है।

अलंकार—इस पद में ‘साँझ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल बिछाय पद में उत्प्रेक्षालंकार है। मानो, (मनु, जनु) शब्दों से उत्प्रेक्षा अलंकार का बोध होता है। उत्प्रेक्षा में कल्पना मूलकता अवश्य रहती है। इसलिए “सूरसेज” में फूल सेज की कल्पना की गयी है।

हेली म्हाँसू हरि बिनि रह्यो न जाय ॥टेक॥
 सास लड़ै मेरी नन्द खिजावे, राणा रह्या रिसाय।
 पहरो भी राख्यौ चौकी बिठारयो, ताला दियो जड़ाय।
 पूर्व जनम की प्रीत पुराणी, सोक्युँ छोड़ी जाय।
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर, अवरु न आवे म्हाँरी दाय ॥४२॥

पाठान्तर—तीसरी और चौथी पंक्ति में एक पाठान्तर प्राप्त होता है

चौकी मेलौ भले ही सजनी, ताला द्यो न जड़ाइ।

पूर्व जन्म की प्रीत हमारी, सो कहां रहे लुकाइ॥

शब्दार्थ—हेली=अरी। म्हाँसूँ=हम से, मुझ से। बिनि=बिना। रह्यो=रहा। नन्द=ननद, पति की बहन। खिजावे=खिजाती है। तंग करती है। जड़ाय=जड़ दिया है, डलवा दिया है। प्रीत=प्रेम। पुराणी=पुरानी। अवरु=अन्य, और। म्हाँरो=हमारा। दाय=पसंद।

व्याख्या—हे सखि! भगवान के बिना मुझसे रहा नहीं जाता। इस भगवत्प्रेम के कारण मेरी सास मुझसे लड़ती है, और ननद भी तंग करती है। राणा तो क्रोधित ही रहता है। मुझे घर से बाहर न निकलने देने के लिए पहरा रखा गया और सिपाहियों की चौकी भी बिठाई गयी। ताले लगा कर मुझे कोठरी में बन्द भी रखा गया। श्रीकृष्ण से मेरा पूर्वजन्म का प्रेम है। वह अब कैसे छोड़ा जा सकता है। मीरा के स्वामी तो चतुर गिरधारी हैं। मुझे तो उनके अतिरिक्त अन्य कोई भी देवता पसन्द नहीं आता है।

विशिष्ट— पारिवारिक जनों (सास-ननद तथा राणा) द्वारा दिये जाने वाले दैनिक कष्टों का उल्लेख इस पद में है।

जाण्यौ णा प्रभु मिलण बिध क्यौ होय ॥टेक॥
 आया म्हारे आँगवाँ फिर गया मैं जाण्यो खोय।
 जोवताँ मग रैण बीताँ दिवस बीताँ जोय।
 हरि पधारौ आँगणाँ गयी मैं अभागण सोय।
 बिरह व्याकुल अनल अन्तर कलणाँ पड़ता होय।
 दासी मीरा लाल गिरधर मिल णा बिछड़्या कोय ॥४३॥

शब्दार्थ—जाण्यौ णा=जाना नहीं। बिध=विधि, क्यौ=कैसे। होय =होती है। आँगणाँ=आंगन में, जोवताँ=देखते। मग=रास्ता। रैण बीताँ= रात बीत गयी। अनल=आग। अन्तर=बीच में। कलणाँ=चैन नहीं। पड़ता होय=पड़ता है। मिल णा बिछड़्या कोय=मिल कर कोई न बिछुड़े।

व्याख्या—मीरा कहती है कि मैं यह नहीं जानती कि भगवान से मिलने की रीति क्या है। वह मेरे घर के आंगन में आया और लौट कर चला गया। मैंने उसे खो कर ही समझा। तात्पर्य यह कि जब वह मेरा इष्ट देव भगवान श्रीकृष्ण मेरे घर में आकर वापस चला गया, तब मैंने जाना कि वह मेरा ही प्रियतम था। उस के आने की प्रतीक्षा में रास्ता देखते-देखते राह बीत गई। और दिन भी उसके आने की राह देखते-देखते बीत गया। भगवान मेरे आंगन में आ कर चला भी गया, परन्तु मैं आभागिन सोती ही रही। वियोग की आग से मेरा हृदय जल रहा है। बहुत व्याकुलता बढ़ गयी है। इस व्याकुलता के कारण चैन नहीं पड़ता है गिरधर श्रीकृष्ण की दासी मीरा कहती है कि मिलकर किसी को भी बिछोड़ा नहीं हो। अर्थात् प्रिय से मिलन होने के अनन्तर किसी को भी अपने प्रिय का वियोग न सहना पड़े।

विशिष्ट—यह पद वियोग शृंगार का उदात्त उदाहरण है। यहाँ अंतःकरण के वियोग का आन्तरिक पक्ष सुन्दर रूप में चित्रित हुआ है।

अन्य कवियों से तुलना:—कबिरा देखत दिन गया, निस भी देखत जाइ।

बिरहणि पिव पावै नहीं जियरा तलफै माई॥

मीरा ने भी कबीर की भाँति अपने प्रिय के वियोग में मानसिक व्याकुलता की अभिव्यक्ति की है।



नोट्स

सामंती समाज व्यवस्था में किसी विवाहित स्त्री का पर-पुरुष से संबंध किसी भी रूप में स्वीकार्य नहीं था, चाहे वह भगवान से ही क्यों न हो। मीरा ने तो कृष्ण के प्रेम में अपना घर (ससुराल) ही त्याग दिया था।

जोगियाजी निसदिन जोऊँ बाट ॥ टेक ॥
पाँव न चालै पंथ दूलेहो, आइा औघट घाट।
नगर आइ जोगी रम गया रे, मो मन प्रीति न पाइ।
मैं भोली भोलापन कीन्हों, राख्यों नहिं बिलमाइ।
जोगिया कूँ जोवत बोही दिन बीता, अजहूँ आयो नाहिं।
बिरह बुझावण अन्तरि आवो, तपन लगी तन माहिं।
कै तो जोगी जग में नाहीं, कैर बिसारी मोइ।
काँइ करूँ कित जाऊँरी सजनी नैण गुमायो रोइ।
आरति तेरी अन्तरि मेरे, आवो अपनी जाणि।
मीरा व्याकुल बिरहिणी रे, तुम बिन तलफत प्राणी ॥ 44 ॥

शब्दार्थ—जोगिया=योगी, प्रिय। निस दिन=रात दिन। जोऊँ= देखती हूँ। बाट=रास्ता। चलै=चलते। पंथ=रास्ता। दुहेलो=कठिन, दुर्गम। आइा=मध्य-मध्य में, बीच-बीच में, रुकावटों भरा। औघट=अटपटा खराब, कठिनता से पार होने वाला। घाट=पार करने का स्थल। रम गया=लीन हो गया, लोगों में मिल गया। बिलगाई=बिलगाकर, उलझाकर। बो हो= बहुत से। अजहूँ=आज तक। बुझावण=बुझाने के लिए। बिरह की आग शान्त करने के लिये। अन्तरि=अन्तर में, हृदय में। आवो=आओ। तपन=अग्नि, ताप, ज्वाला। तन=शरीर। माँहि=में। कै तो= या तो। कैर=अथवा। बिसारी=भुला दिया। मोह=मुझे। काँइ करूँ=क्या करूँ। कित=कहाँ। नैण गुमायो=आँखें गँवा दीं, आँखें खो दीं। रोइ=रो कर। आरति=आर्त, लालसा, (आरती भी अर्थ हो सकता है)। अपनी जाणि=अपना जान कर। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार। तलफत=तड़पते हैं। प्राणि=प्राण।

व्याख्या—मीरा कहती है कि हे प्रियतम! मैं तेरे आने की प्रतीक्षा में रात-दिन रास्ता देखती रहती हूँ। प्रेम की आकुलता के कारण मेरे पाँव नहीं चलते। रास्ता भी बड़ा वीहड़ है। कठिन है। इस पर चलना कठिन है। इसका घाट भी विघ्नों (रुकावटों) से भरा हुआ है। बड़ा ही अटपटा घाट है। मैं पार नहीं पहुँच सकती। नगर में आ कर योगी वहाँ की शोभा में तल्लीन हो गया। मेरे मन की प्रीति को वह नहीं पहचान सका। मैं तो सरल स्वभाव की थी। इसी भोलेपन में ही रही। उसे अपने प्रेम में उलझाये नहीं रखा। प्रियतम का मार्ग देखते-देखते बहुत दिन बीत गये परन्तु वह आज दिन तक भी नहीं आया। हे प्रियतम! मेरे हृदय में लगी विरह की आग को बुझाने के लिये आ जाओ। मेरे शरीर में वियोग की आग की तपन लगी हुई है। सारा शरीर जल रहा है। इसलिये मेरे हृदय में आकर इस अग्नि को शान्त करो। वह योगी अब तक मेरे घर वापस नहीं आया। इससे प्रतीत होता है कि या तो वह योगी इस संसार में नहीं रहा, अथवा उसने मुझे ही भुला दिया है। हे सखि! अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मैं तो उसके वियोग में रो रो कर आँखें भी खो बैठी हूँ। हे प्रियतम! तुम्हारी आरती तो मेरे अन्तःकरण में है। अर्थात् तुम्हारी आकृति मेरे हृदय में है। (अथवा मैं अपने प्रेम भाव के कारण अन्तःकरण में आर्त भक्त की भाँति हो गयी हूँ, (द्रोपदी भी तो आर्त भक्त थी, भगवान उसके उद्धार के लिये आये थे। तब भाई के नाते आए थे। अब प्रियतम के नाते ही उद्धार करने के लिए आ जाओ) एक अर्थ यह भी किया जाता है कि मेरा अन्तःकरण तुम से मिलने की लालसा में जल रहा है। इसलिये

नोट

मेरे अन्तःकरण को शान्त करने के लिए आओ (परशुराम चतुर्वेदी ने यही अर्थ लिया है) हे प्रियतम! मीरा वियोग में व्याकुल है। तुम्हारे बिना मेरे प्राण तड़पते हैं और कष्ट पाते हैं।

विशिष्ट—मीरा ने वियोगदशा का वर्णन इस पद में किया है। वर्णन में नारी सुलभ स्वाभाविकता है। सरलता है। शारीरिक विरह के माध्यम से शारीरिक पावनीकरण का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया है।

डिम्भादि के वर्णन का बंधन न माना जाए तो इस पद में स्वभावोक्ति अलंकार मानने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं हो सकती। क्योंकि सरल प्रियतमा अपने प्रियतम के वियोग में इसी भाव को व्यक्त करती है।

विद्यापति, कबीर, जायसी तथा मंझन जैसे कवियों ने भी इसी प्रकार के भाव वियोगदशा में व्यक्त किये हैं।

विद्यापति—सखि मोर पिया अबहु न आमोल कुलिस-हिया।

नरवर खोआ लोलूँ दिवस लिखि-लिखि, नयन अँधाओलूँ पिया पथ देखि ॥

कबीर—अँखड़िया झॉई पड़ी पंथ निहारि निहारि।

जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि॥

अखयाँ तरशाँ दरसण प्यासी।

मग जोवाँ दिण बीताँ सजणी, जैण पड़्या दुखरासी।

डारा बैठ्या कोयल बोल्या, बोल सुण्या री गासी।

कड़वा बोल लोक जग बोल्या कारस्याँ म्हारी हाँसी।

मीरा हरि के हाथ विकानी, जणम जणम री दासी ॥ 45 ॥

शब्दार्थ—अखयाँ=आँखें। तरशाँ=तरसती हैं। जोवाँ=ढूँढ़ती हैं। खोजती हैं। बीताँ=बीतते हैं। डारा=डाली। बैठ्या=बैठ कर। गासी=दुःख से भरा हुआ। विकानी=बिकी हुई

व्याख्या—हे सखी! मेरी आँखें अपने प्रिय इष्टदेव के दर्शन के लिये तरसती हैं। प्रिय के दर्शन के लिये प्यासी आँखें तरसती हैं। बिना दर्शन किये प्यास नहीं बुझेगी। प्रिय का रास्ता देखते-देखते ही दिन बीत जाता है। आँखें दुःख से भर गई हैं। आँखों को प्रिय के वियोग के कारण बहुत कष्ट है। यदि “जैण” की अपेक्षा “रैण” शब्द रख लें तो अर्थ अधिक उपयुक्त होगा। दिन बीत जाने के पश्चात् रात आ जाती है तब वियोग का दुःख बढ़ जाता है। वृक्ष की डाली पर बैठी हुई कोयल का स्वर जब सुना तो वह दुःख से भरा हुआ ही सुनाई पड़ा। जग के लोगो ने भी कड़वी बोली ही बोली। इन लोगो ने भी मीठे वचन नहीं कहे, अपितु इन बोलियों (वचनों) में भी मेरी हँसी ही उड़ाई गई। मीरा कहती है कि वास्तविकता तो यह है कि वह अपने भगवान् के हाथों बिक चुकी है। आत्मसमर्पण कर चुकी है। परन्तु एक जन्म से ही दासी नहीं है, आदि जन्म-जन्मान्तर से वह अपने भगवान की सेविका है।

पाठशोध—इस पद में “जैण” पद की अपेक्षा “रैण” पाठ होना चाहिये। तभी पद के पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त किया गया “दिन” शब्द सार्थक होता है। “जैण” शब्द से अर्थ औचित्य में दोष आता है।

सूरदास ने भी दर्शन बिना प्यासे नेत्रों का वर्णन किया है। मीरा तथा सूरदास की भावना में साम्य है और वैषम्य भी। सूरदास ने लोक को कुछ नहीं कहा। मीरा ने जगत् को उलाहना दिया है। यह अन्तर अवश्य द्रष्टव्य है—

सूरदास— अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी ॥

देख्यां चाहति कमल नैन कौं, निसिदिन रहति उदासी।

आए ऊधौ फिरि गए आँगन, डारि गये उर फाँसी।

केसरि तिलक मोतिनि की माला, वृन्दावन के बासी।

काहु के मन की कोउ जानत, लोगनि के मन हाँसी।

सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, करबत लैहों कासी ॥

—सूरसागर—पृ. 151

कृष्णदास, चतुर्भुजदास, तुलसीदास आदि कवियों के काव्य में भी दर्शनार्थ व्याकुल होने की चर्चा है। भक्त का अपने इष्टदेव के पावन दर्शन से नेत्रों की प्यास बुझाने का वर्णन करना सामान्य रीति रही है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

1. ब्रज में मीरा राधा-कृष्ण के संग रास लीला रचाती थी।
2. मीरा ने भगवान श्रीकृष्ण को अपना इष्ट मानकर समस्त सांसारिक सुखों को तिलांजलि दे दी।
3. मीरा की काव्य-भाषा राजस्थानी, ब्रज और गुजराती का मिला-जुला रूप है।
4. श्रीकृष्ण प्रेम के कारण कंस ने मीरा को तरह-तरह से प्रताड़ित किया।
5. मीरा ने भगवान श्रीकृष्ण को पति के रूप में माना है।

जोगी मत जा मत जा मत जा, पाइ परूँ मैं तेरी चेरी हौं॥ टेक॥

प्रेम भगति को पैड़ों ही न्यारों हमको गैल बात जा।

अगर चँदण की चिता वणाउँ, अपने हाथ जला जा।

जल बल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा।

मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर जोत में जोत मिला जा ॥46॥

शब्दार्थ—पाँऊ परूँ=पाँव पड़ती हूँ, विनय करती हूँ। चेरी=दासी, सेविका। पैड़ो=रास्ता। गैल=गली, साथ, मार्ग। अगर=एक सुगन्धित पदार्थ। वणाऊँ=बना देती हूँ। जला जा=प्रज्वलित करते जाओ। ढेरी=ढेर, राशि, समूह। जोत=ज्योति।

व्याख्या—हे योगी! तुम मत जाओ। मैं तुम्हारे पाँवों पड़ती हूँ, प्रार्थना करती हूँ, मैं तुम्हारी सेविका हूँ। प्रेम से भरी भक्ति-भावना का रास्ता ही अनोखा है। वह साधारण रास्ता नहीं है। मुझे भी उस रास्ते पर चलने की विधि बताते जाओ। अथवा मुझे (हमें अपने लिये बहुवचन का प्रयोग) भी अपने साथ संगति में रख कर उस प्रेम भक्ति के मार्ग को बताते जाओ। मैं अगर और चन्दन की लकड़ियों से चिता बना लेती हूँ। तुम अपने हाथों से इस चिता में आग लगा जाओ। इस चिता में जल जाने पर मैं केवल राख का समूह हो जाऊँगी। तब तुम उस भस्म को अपने अंगों में लगाते जाओ। मीरा कहती हैं कि हे प्रभु! गिरधर नागर! इस प्रकार मेरे शरीर के भस्म होने पर ज्योति ज्योति में लीन हो जाएगी। शरीर की भस्म तो शरीर में लिपट जाएगी और जीवात्मा तुम्हारे आत्मांश में समा जाएगी।

विशिष्ट—कबीर, जायसी, गुरु नानक आदि सन्तों के वचनों में भी यह भावना विद्यमान है। इस भावना का व्यापक रूप भक्ति-काव्य में सर्वत्र प्राप्त हैं जैसे—

यह तन जारौं मसि करूँ, क्यूँ धुँवा जाई सरगि।

मति वै राम दया करै, बरसि बुझावे अगि ॥

—कबीर

भारतीय वेदान्तवाद के अनुसार इस पद में अद्वैत होने की भावना को प्रस्तुत किया गया है। भक्ति-क्षेत्र में सगुण के माध्यम से इस भावना को व्यक्त किया गया है।

धें जीम्या गिरधरलाल।

मीरा दासी अरज कर्यौं छै, म्हारों लाल दयाल।

छप्पण भोग छत्तीशौं बिंजण, पावाँ जन प्रतिपाल।

राजभोग आरोग्यौं गिरधर, सणमुख राखौं थाल।

मीरा दासी सरणा ज्याशीं, कीज्यौं वेग निहाल ॥47॥

शब्दार्थ—जीम्या=भोजन करना है। अरज=प्रार्थना। दयाल=दयालु। बिंजण=व्यंजन, सब्जियाँ। प्रतिपाल=रक्षक। आरोग्यां=खाने पर। सम्मुख सामने, ज्याशी=जाती हूँ। वेग=शीघ्र। निहाल=कृपा से कृतार्थ।

व्याख्या—हे श्री कृष्ण! गिरधरलाल! आपको भोजन करना है। तो आप भोजन कीजिये। मीरा प्रार्थना करती है। मेरे गिरधर गोपाल अत्यन्त कृपालु हैं। मैं अपने भक्तों की रक्षा करने वाले भगवान के सामने छप्पण प्रकार के भोज्य-पदार्थों तथा छत्तीस प्रकार की सब्जियों से भरे हुए थाल को रखती हूँ। वे इसे खायेंगे। दासी मीरा अपने इष्टदेव की शरणागत है। इसलिए भगवान शीघ्र अपनी कृपा से मुझे (मीरा को) कृतार्थ कीजिये।

विशिष्ट—मीरा के युग में वृन्दावन में भगवान को भोग लगाने की जो परम्परा विद्यमान थी। मीरा ने उसी का वर्णन किया है। यह परम्परा आज तक भी विद्यमान है।

नोट

छोड़ मत जाज्यो जी महाराज ॥टेक॥
 म्हा अबला बल म्हारो गिरधर, थें म्हारों सरताज।
 ग्हा गुणहीन गुणागर नागर, म्हा हिवड़ो रो साज।
 जग तारण भो भीत निवारण, थें राख्यौ गजराज।
 हार्यौ जीवन सरण रावलाँ, कठे जावाँ बजराज।
 मीरा रे प्रभु और णा काँई, राखा अब री लाज ॥ 48 ॥

शब्दार्थ—अबला=निर्बल, स्त्री। सरताज=सिर का ताज, स्वामी। गुणागर=गुणों का घर, गुणी। हिवड़ो=हृदय। रावलाँ=तुम्हारी। कठे=कहाँ।

व्याख्या—हे महाराज! श्रीकृष्ण! मुझे छोड़कर मत जावें। मैं अत्यन्त निर्बल स्त्री हूँ। मेरे बल तो गिरधर श्री कृष्ण ही हैं। इसलिये हे श्रीकृष्ण! तुम ही मेरे सिर के ताज हो। मेरे स्वामी हो। मैं तो सर्वथा गुण-रहित हूँ और आप नटनागर कृष्ण हैं इसीलिये सभी गुणों के एकमात्र स्थान हैं। आप ही मेरे हृदय का शृंगार हैं। संसार से पार उतारने वाले भी आप ही हैं। संसार में आने वाले कष्टों का निवारण करने वाले भी आप ही हैं। तुम्हीं ने (आप ने) गजराज की रक्षा की थी। जीवन में हार जाने पर केवल तुम्हारी शरण प्राप्त होती हैं। इसलिये और कहाँ जायें। मीरा को अपने इष्टदेव के अतिरिक्त और कोई आश्रय-स्थल नहीं है। इसलिये मीरा की लोक-मर्यादा की रक्षा कीजिये।

विशिष्ट—इस पद में गजराज की कथा दी गई है। शापवश गज-ग्राह दोनों ही पास-पास रहते थे। गजराज अपनी हथिनियों समेत जल पीने गया। वहाँ उसे ग्राह ने पकड़ लिया। कई युगों तक संघर्ष चलता रहा। अन्त में भगवान् ने स्वयं आकर गज को मुक्त किया। गज ने अपनी मुक्ति के लिये सरोवर के एक पुष्प को सूँड़ में उठा कर आकाश की ओर देखा था तभी भगवान् को उसके उद्धार की स्मृति आई और गजेन्द्र मोक्ष मिल गया।

इस पद में तुल्य अलंकार है, जिसका लक्षण 'अलंकार रत्नाकर' में शोभाकर मिश्र ने दिया है—निवृत्तावन्योदयस्तुल्यम्।

ऐसी लगन लगाइ कहाँ तू जासी ॥ टेक ॥
 तुम देखे बिन कलि न परति है, तलफि तलफि जिव जासी।
 तेरे खातिर जोगण हूँगी, करवत लूँगी कासी।
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल की दासी ॥ 49 ॥

शब्दार्थ—लगन लगाइ=लगन लगा कर, प्रेम जगा कर। जासी=जायेगा। कलि=कल, चैन। तलफि तलफि=तड़प तड़प कर। जिव=जीव, जीवात्मा। करवत लूँगी कासी=काशी नगरी में करवट लूँगी, आरे से अपना शरीर चिरवा दूँगी।

व्याख्या—मीरा कहती है कि हे इष्टदेव! तुमने ऐसी प्रेम की लगन लगाई है। अतः अब कहाँ जाओगे। तुम्हारे दर्शन किये बिना मुझे चैन नहीं पड़ता है। तुम्हारे बिना तो यह जीवात्मा तड़प-तड़प कर ही रह जायेगी। जीवात्मा का तो विनाश नहीं होता। शरीर ही नष्ट होता है। मैं तेरे लिये योगिन बन जाऊँगी। अपने इन्द्रिय समूह पर नियंत्रण कर लूँगी और काशी करवट भी ले लूँगी। वहाँ जाकर असह्य कष्ट भी सहने को तैयार रहूँगी। मीरा के प्रभु तो श्रीकृष्ण गिरिधारी हैं। वे चतुर हैं। मीरा तो उनके चरणकमलों की सेविका है। किसी अन्य इष्टदेव की पूजा नहीं करना चाहती।

विशिष्ट—(1) करवत लूँगी कासी—काशी में धर्मान्ध लोगों ने ऐसा कुँआ बनवा दिया था, जहाँ धर्म-ईश्वर विश्वासी व्यक्तियों को धोखे से ले आते और उसका सब कुछ लेकर उसे नीचे देखने के लिये कहते। व्यक्ति जैसे ही नीचे देखता, वह गिर जाता और भूमिगत आरे से चिर जाता और मृत्युलोक पहुँच जाता है। यह है करवट काशी की निर्मम कथा।

(2) चरणकँवल में रूपकालंकार है। चरणों पर कमल का आरोप किया गया है।

पिया म्हरि नैणा आगाँ रहज्यो जी ॥ टेक ॥
 नैणाँ आगाँ रहज्यो, म्हाँणे भूल णो जाज्यो जी।
 भौ सागर म्हाँ बूझ्या चाहौ, स्याम वेग सुध लीज्यो जी।

राणा भेज्या विष रो प्यालो, थें इमरत बर दीज्यो जी।

मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीज्यो जी ॥ 50 ॥

शब्दार्थ—आगाँ=आगे। रहज्यो जी=रहिये जी। जाज्यो जी=जाइए जी। वेग=शीघ्र। सुध=खबर।

व्याख्या—हे प्रिय! आप सदा ही मेरी आँखों के सामने रहिए। इसलिये कि मेरे मन में किसी प्रकार का विकार न आने पाएगा। मेरी आँखों के सामने रहिए और मुझे भूल मत जाइए। मैं तो संसार रूपी समुद्र में (मोहादि के कारण) डूबना चाहती हूँ इसलिये मेरी खबर शीघ्र ही लीजिए। ताकि मैं कोई ऐसा कर्म मोहवश न कर दूँ, जिससे बाद में पछताना पड़े। राजा ने नाराज होने के कारण जहर का प्याला भेजा परन्तु आपने उसे अमृत में बदल दिया। (अथवा उसे अमृत के रूप में परिवर्तित कर दिया) मीरा कहती है कि मेरे गिरधर नागर प्रभु! मिल जाने के पश्चात् बिछुड़ जाने की रीति को मत चलाइए। इससे मुझे बेहद कष्ट होगा।

विशिष्ट—(1) भौ सागर पद में रूपकालंकार है। क्योंकि भव पर सागर का आरोप किया गया है।

(2) इस पद में संसार के मायाजाल से छुटकारा पाने के लिये भगवान के प्रति भक्ति-भावना व्यक्त की गई है और मीरा इष्टदेव से भक्त के संरक्षण के लिए तल्लीनतापूर्वक निवेदन करती है।

थाणें काँई काँई बोल सुणावा म्हारा साँवरौ गिरधारी ॥ टेक ॥

पूरब जणम री प्रीत पुराणी, जावा णां गिरधारी।

सुन्दर बदन जोवतां साजण, थारी छबि बलिहारी।

म्हारें आँगण स्याम पधारो, मंगल गावाँ नारी।

मोती चौक पुरावाँ णेणां, तण मण डाराँ वारी।

चरण सरण री दासी मीरा, जणम जणम री क्वाँरी ॥ 51 ॥

शब्दार्थ—थाणें=तुम्हें। काँई-काँई=क्या-क्या। कैसे। जोवतां=देखती हूँ। डाराँवारी=न्यौछावर कर देती हूँ। क्वाँरी=कुमारी, अविवाहित।

व्याख्या—तुम्हें क्या-क्या वचन सुनाऊँ। क्या कुछ कहूँ। हे सांवले श्रीकृष्ण! तुम ही मेरे प्रिय हो। मेरी प्रीति पूर्व जन्म से चली आ रही है। इसे किसी प्रकार भी मत तोड़ देना। हे प्रिय! मैं तुम्हारे सुन्दर मुख को देखती हूँ और तुम्हारी मुख-शोभा पर न्यौछावर जाती हूँ। हे स्वामी! तुम मेरे आँगन में आओ! नारियाँ (भक्त स्त्रियाँ) तुम्हारे आने पर मंगलमय गान गाएंगी। मैं नयनों के मोतियों (आँखों के आँसुओं से) चौक पूरती हूँ। चौक सजाती हूँ और अपने शरीर और मन को तुझ पर न्यौछावर करती हूँ। हे भगवन् ! मीरा तो तुम्हारे चरणों की दासी है। वह तो जन्म जन्मान्तर से अविवाहित है। मीरा ने तो अपने इष्टदेव को छोड़कर किसी सांसारिक पुरुष को अपना पति नहीं माना है।

विशिष्ट—“मोती चौक पुरावाँ णेणां”— पद्यांश में निरंग रूपक है। इसमें आँखों के आँसुओं में मोतियों का आरोप किया गया है।

देखाँ माई हरि मण काठ कियाँ ॥ टेक ॥

आवण कह गयाँ अजाँ ण आया, कर म्हारें कौल गयाँ।

खान पान सुध बुध सब बिसर्यां, काइ म्हारो प्राण जियां।

थारो कोल विरुद्ध जग थारो, थे काँई बिसर गयां।

मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, थे विण फटा हियाँ ॥ 52 ॥

शब्दार्थ—काठ=कठोर, लकड़ी जैसा सूखा। अजाँ=आज तक। कौल=वायदा। जियाँ=जिएगा। बिसर=भुला देना। फटा हियाँ=हृदय फट गया है, दुःख की चरम स्थिति।

व्याख्या—हे सखी! देखो; भगवान ने अपना मन कितना कठोर कर लिया है अथवा लकड़ी की भाँति सूखा-सूखा बना लिया है। आने के लिये (दर्शन देने के लिए) कह गये परन्तु आज तक (अभी तक) नहीं आए, यद्यपि आने के लिए मुझको वचन दे गए थे। उसके न आने के कारण मुझे खान-पान की चिन्ता भी भूल गयी है। मुझे अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए खाने पीने का भी होश नहीं है। ऐसा होने से मेरे प्राण किस प्रकार जीवित रहेंगे।

नोट

हे इष्टदेव! तुम्हारा वचन ही विरोधात्मक हो गया है इसलिए तुम्हारे वचन के अनुसार सारा संसार ही मेरे विरोध में हो गया है। अतः स्पष्ट बताओ कि तुम मुझे क्यों भूल गये हो। मीरा कहती है कि हे मेरे गिरिधर, चतुर स्वामी श्रीकृष्ण! तुम्हारे बिना मेरा हृदय फट गया है, विदीर्ण हो गया है। वियोग से अत्यन्त पीड़ित हो गया है।

विशिष्ट—“मण काठ” में सांग रूपकालंकार है। मण पर काठ का आरोप है। इसके अतिरिक्त मन के काठ करने का तात्पर्य रूखा-सूखा अथवा शुष्क, हृदयहीन होने से है। कठोर तो अभिधात्मक स्थिति का बोधक है परन्तु मन के काठ करने का तात्पर्य है कि वियोगिनी मीरा की किसी भी प्रार्थना को न सुनने के लिए हृदय को अपने में ही केन्द्रित कर लेना है ताकि किसी अन्य की विनती का प्रभाव ही न पड़े। प्रादेशिक बोलियों के कारण इस पाठ में कई पाठान्तर हो गये हैं। “आवण” शब्द के स्थान पर ‘आवन’ तथा “अजां” के स्थान पर “अजहुं” के प्रयोग से पाठान्तर बन गए हैं।

जोगिया के प्रीत कियौं दुःख होइ ॥टेक॥
 प्रीत कियौं सुख ना मोरी सजनी, जोगी मित न कोइ।
 रात दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियाँ बिनि मोइ।
 ऐसी सूरत या जग माँही फेरि न देखी सोइ।
 मीरा रे प्रभु कबरे मिलोगे, मिलियाँ आणँद होइ ॥ 53 ॥

शब्दार्थ—प्रीत=प्रीति। मित=मित्र। कल=चैन। फेरि=पुनः। कब रे=कब। आणँद=आनन्द।

व्याख्या—हे सखी! योगी से प्रीति (प्रेम) करने पर दुःख होगा ही। सजनी! प्रीति करने पर सुख नहीं हो सकता क्योंकि योगी किसी का मित्र नहीं होता और हे योगी! तुम से बिना मिले मुझे रात दिन आराम नहीं पड़ता है। चैन नहीं आता है। ऐसी आकृति (शक्ल) इस संसार में फिर देखने को नहीं प्राप्त हो सकती। मीरा कहती है कि हे मेरे इष्टदेव प्रभु! अब तुम कब मिलोगे। तुम्हारे मिलने पर ही आनन्द होता है। तुम्हारे वियोग में तो दशा दुःखमयी रहती है।

विशिष्ट—(1) इस पद में जोगी शब्द ले बहुधा सिद्ध और नाथपंथी योगियों की चर्चा की गई है परन्तु संभावना के अतिरिक्त यह अधिक औचित्यपूर्ण लगता है कि मीरा ने श्रीकृष्ण का “योगी” रूप ही यहाँ माना है। क्योंकि श्रीकृष्ण योगेश्वर और योगीराज, योगीश्वर भी है। गोपी भावना से विरहात्मक स्थिति में मीरा ने इस पद को कहा है। अतः योगीराज का प्रयोग सिद्ध और नाथ सम्प्रदाय की परम्परा में स्वीकार न किया जाए, अपितु विशुद्ध भक्ति भाव क्षेत्र में ही उसे लिया जाए।

(2) प्रीति करने से सुख न होने की चर्चा मीरा ने की है। लौकिक स्तर पर प्रेम करने वालों को भी अन्य लोगों के वाग् बाण सहन करने पड़ते हैं। यही स्थिति प्रारम्भ में उन भक्तों को भी सहन करनी पड़ती है जो संसार त्यागकर भक्त बनते हैं। जनता उन भक्तों पर लांछन लगाती है, उन पर व्यंग्य बाण छोड़ती है और मीरा के नारी होने के कारण उस पर तो अनेक प्रकार के लांछन लगाए गए। अतः दुःख स्वाभाविक है परन्तु भक्ति में रम जाने पर जनता श्रद्धा करने लगती है और तब भक्तजनों को भक्ति काल के समय में इन श्रद्धालु जनों से विघ्न पड़ने से कष्ट होता है। समर्पण के मार्ग पर भी सभी प्रकार के दुःखों को सहन करना पड़ता है। वास्तव में मीरा ने मनोवैज्ञानिक स्तर पर भक्ति-मार्ग की यथार्थता को व्यक्त किया है।

जोगिया री प्रीतड़ी है दुखड़ा रो मूल ॥ टेक ॥
 हिल मिल बात बणावत मीठी, पीछे जावत भूल ॥
 तोड़त जेज करत नहिं सजनी, जैसे चमेली के फूल।
 मीरा कहै प्रभु तुमरे दरस बिन, लगत हिवड़ा में सूल ॥ 54 ॥

शब्दार्थ—प्रीतड़ी=प्रीत, प्रेम। दुखड़ा=दुःख। मूल=कारण। बणावत=बनाता है। पीछे=बाद में। जेज=देर। दरस=दर्शन। हिवड़ा=हृदय। सूल=शूल, काँटा, वेदना।

व्याख्या—हे सखी! योगी से प्रीति लगाना दुःख का कारण हो जाता है। पहले तो हिलमिल कर अत्यन्त प्रेम से बातें बनाता है और बाद में भूल जाता है। हे सखी! यह अपनी प्रीति को तोड़ते हुए ऐसे ही देर नहीं लगाता जैसे कि चमेली के फूल को तोड़ने में देर नहीं लगती। मीरा कहती है कि हे प्रभु प्रियतम! तुम्हारे दर्शन के बिना हमारे हृदय में कांटे चुभते हैं और वेदना की अनुभूति होती है।

नोट

विशिष्ट—इस पद में दृष्टान्तालंकार का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। “तोड़त जेज करत नहीं सजनी जैसे चमेली के फूल”—इस पद्यांश में कई विद्वान् पद से उपमालंकार कह सकते हैं, परन्तु इसमें दृष्टान्तालंकार है क्योंकि प्रीति का टूटना उपमेय वाक्य के लिए चमेली का फूल उपमान वाक्य बनकर प्रयुक्त है। पुनः चमेली गन्ध-सूक्ष्मता तथा प्रीति की भावसूक्ष्मता का व्यापार भी उपमान उपमेय वाक्य बना कर रखे गये हैं। अतः दृष्टान्तालंकार ही औचित्यपूर्ण है। उदाहरणालंकार मानना भी उपयुक्त नहीं है।

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत ॥ टेक ॥

आसण माड़ अडिग होय बैठा, याही भजन की रीत।

मैं तो जाणूँ संग चलेगा, छाँड़ि गया अधबीच।

आत न दीसे जात न दीसे, जोगी किसका मीत।

मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर चरणन आवे चीत ॥ 55 ॥

शब्दार्थ—कोई दिन=कभी-कभी, किसी न किसी दिन। रमता=रमण-शील, एक स्थान पर न टिकने वाला। अतीत=निर्लेप, मुक्त, तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तप) से परे। आसन माड़=आसन लगाकर। आसन जमाकर। अडिग=न डिगने वाला, स्थिर। चीत=चित्त, सुध, याद।

व्याख्या—हे निर्लिप्त, हे त्रिगुणातीत इष्टदेव! मुझे कभी न कभी अथवा किसी न किसी दिन तो याद कीजिये। आप सब प्राणियों में रमणशील हैं तथा राम होने के कारण आप में सब योगी लोग रमण करते हैं, तल्लीन रहते हैं। (राम=रमन्ते योगिनोऽस्मिन् इति रामः) आसन लगाकर, ध्यानावस्थित होकर निश्चल भाव से बैठ गये हैं। क्या यही भजन की रीति है एक अर्थ यह भी हो सकता है कि मैं मीरा आसन लगा कर निश्चल होकर बैठ जाऊँ। क्या यही भक्ति करने की रीति है। मैं (मीरा) तो जानती थी कि प्रीति के अनन्तर जीवन भर साथ चलेगा, परन्तु मुझे तो आप आधे मार्ग में ही छोड़ गये हैं। आप ऐसे योगी हैं जो आते-जाते दिखाई नहीं देते, वास्तव में योगी किसका मित्र होता है। किसी का नहीं। मीरा कहती है कि मेरे प्रभु गिरधर नागर! मेरा मन आपके चरणों में ही लगा हुआ है।

विशिष्ट—इद पद पर बहुधा आलोचकों ने नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव माना है परन्तु लगता नहीं क्योंकि श्रीकृष्ण योगीश्वर भी हैं और रामावतार भी। राम का अर्थ है जिसमें योगी लोग रमण करते हैं, उसे हम राम कहते हैं। भगवान् त्रिगुणातीत भी माने जाते हैं। तमोगुण एवं सत्त्वगुण से भगवान् अतीत होते हैं। अतः योगी, राम एवं अतीत शब्द से नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव नहीं माना जाना चाहिए।

यह पद थोड़े परिवर्तन के साथ चन्द्रसखी के नाम से भी कहा जाता है।

जाणा रे मोहणा, जाणां थारी प्रीत ॥ टेक ॥

प्रेम भगति रो पैड़ा म्हारो, अवरु ण जाणाँ रीत।

इमरत पाइ विषाँ क्यूँ दीज्याँ कूँण गांव री रीत।

मीरा रे प्रभु हरि अविणासी, अपणो जणारो भीत ॥ 56 ॥

पाठान्तर—जाओ निरमोइए रे, झीनी थॉरी प्रीत॥टेक॥

लगन लगी जब और प्रीत छी अब अछु आँवलो रीत।

अमृत पाय विष क्यूँ दीजै कोण गाँव री रीत।

मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, आप गरज के मीत।

शब्दार्थ—थारी=तुम्हारी। पैड़ा=रास्ता। रीत-रीति=ढंग। पाइ=पीकर। अविनाशी=अमर।

व्याख्या— हे मन मोहन! मैंने तुम्हारी प्रीति को भली-भांति समझ लिया है। मेरे जीवन का मार्ग प्रेम और भक्ति-भाव से भरा हुआ है। मैं इस मार्ग के अतिरिक्त किसी ओर को नहीं जाती हूँ। मैंने तो दर्शन रूपी अमृत पिया है। अब वियोग का विष क्यों देते हो। यह कौन से स्थान की रीति-विधि है। प्रेम में तो ऐसा नहीं होता। मीरा कहती है कि हे अविनाशी इष्टदेव। तुम मुझे अब अपना मित्र समझकर अपना लो।

जावादे जावादे जोगी किसका मीत ॥ टेक ॥

सदा उदासी रहै मोरि सजनी, निपट अटपटी रीत।

नोट

बोलत बचन मधुर से मानूँ, जोरत नाहीं प्रीत।
मैं जानूँ या पार निभैगी, छांड़ि चले अधबीच।
मीरा रे प्रभु स्याम मनोहर प्रेम पियारा मीत ॥ 57 ॥

शब्दार्थ—जावा दे=जाने दे। मीत=मित्र। उदासि=उदासीन, निरपेक्ष। मोरी=मेरी। निपट=बिल्कुल। अटपटी=बेढंगी। जोरत=जोड़ता। पार निभैगी=जीवन के पार तक निभेगी, मृत्यु तक निभती रहेगी।

व्याख्या—हे सखी! जाने दे। जाने दे! योगी किसका मित्र होता है। इसकी रीति सर्वथा बेढंगी है कि यह अपने प्रीति करने वाले के प्रति भी उदासीन ही रहता है। मैं यह मानती हूँ कि यह सदा मीठे-मीठे वचन बोलता है, परन्तु इसकी विशेषता यह है कि प्रीति किसी से नहीं जोड़ता है। अपितु प्रीति के बारे में सदा उदासीन रहता है। मैं समझती थी कि मेरी प्रीति मृत्यु पर्यन्त चलेगी परन्तु यह योगी तो आधे मार्ग में ही छोड़ चला है। पूरे जीवन की तो बात ही दूर की है। मीरा कहती है कि हे मेरे प्रभु श्याम मनोहर! तुम ही वास्तव में मेरे प्रिय मित्र हो, इसलिए मेरा त्याग मत करो। सदा अपनी शरण में रखो।

विशिष्ट—इस पद की अंतिम पंक्ति में श्री कृष्ण के प्रति अपनी निष्ठा स्पष्ट करने से यह बात संदेह उपजाती है कि “योगी” कोई अन्य व्यक्ति है, जिसके प्रति मीरा अपने भावों को स्पष्ट करती है कि वह योगी तो उदासीन रहता है। परन्तु “योगी” शब्द को नाथ पंथियों से सम्बद्ध नहीं मानना चाहिए।

(2) पार निभना मुहावरा है, इसका प्रयोग लौकिक प्रेम के क्षेत्र में किया जाता है। मीरा ने उसे भक्ति-क्षेत्र में भी इसी लाक्षणिकता से प्रयुक्त किया है।

धूतारां जोगी एकरसूँ हँसि बोलि ॥ टेक ॥
जगत बदीत करी मनमोहन, कहा बजावत ढोल।
अंग भभूति गले मृतछाला, तू जन गुड़िया खोल।
सदन सरोज बदन की सोभा, अभी जोऊँ कपोल।
सेली नाद बभूत न बटवो, अजुँ मुनी मुख खोल।
चढ़ती बैस नैण अनियाले, तू धरि धरि कत डोल।
मीरा रे प्रभु हरि अविनासी, चेरी भई बिन मोल ॥ 58 ॥

पाठान्तर—

धूतारा एक बेरिया मुख खोल रे।
कान कुन्डल गल बीच सैली अब तेरी मुनी मुख खोल रे।
रास रच्यो वंशी वट यमुना, तादिन कीनी कोल रे॥
पूर्व जन्म की मैं हूँ गोपिया अधविच पड गयो झोल रे।
जगत बंदी ते तुम करी मोहन अब क्यों बजावे ढोल रे।
तेरे कारण सब जग त्याग्यो—अब मोहै कर सों लोल रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चेरी भई बिन मोल रे।

शब्दार्थ—धूतारा=धूर्त, छली, धोखेबाज। एकरसूँ=एक बार तो। वदीत=प्रसिद्ध। वदीत=हठ कर के। करी=की। गुड़िया खोल=रहस्य बता दे, भेद का पर्दा खोल दे। सदन=नवीन, नया, ताजा। सरोज=कमल। अभी=खड़ी-खड़ी। कपोल=गाल, मुख-मंडल। सैली=योगियों की माला अथवा चादर। नाद=योगियों के बजाने का बाजा, सींग। बभूत=विभूति, भस्म, धूनी की राख। बटवो=योगियों का बटुआ या थैला। अजुँ=अब भी। मुनी=मौनी, चुप रहने वाला। चढ़ती बैस=जबानी। अनियाले=अनियारे, तीखे। चेरी=चेली, शिष्या, दासी, सेविका।

व्याख्या—हे कपटी योगी! मुझसे एक बार तो बात कर ले। एक दूसरा अर्थ यह है कि हे धूतारा! (वाद्य यन्त्र विशेष) लिए रहने वाले योगी। मुझसे एक रस होकर (सर्वथा स्पष्ट एवं निष्कपट होकर) हँसकर बोल ले। हे मन को मोह लेने वाले मोहन! तुमने संसार में मेरे साथ बढ़-चढ़कर व्यवहार कर दिया है। अथवा मेरे प्रेम को संसार में विदित कर दिया है। अब ढोल बजाने से क्या होता है। एक दूसरा अर्थ यह भी किया जाता है कि मेरी तुम्हारी (मनमोहन श्रीकृष्ण तथा मीरा की) प्रीति जगत् में प्रसिद्ध हो गई है अतः मीरा कहती हैं कि मैंने भी इस प्रीति को सारे संसार

नोट

में ज्ञात कर दिया है, छिपा नहीं रखा है। अपने शरीर के अंगों पर भस्म, गले में मृगछाला पहन ली हैं अतः तू संसार के सामने प्रेम के रहस्य की बात को बता दे। छिपा कर मत रख। कमल के समान तुम्हारा शरीर एवं मुख की शोभा को मैं खड़ी-खड़ी देखती हूँ। दूसरा अर्थ यह भी किया गया है कि नवीन सद्यविकसित कमल के समान सुन्दर तुम्हारे मुख की शोभा को मैं प्रतीक्षा में खड़ी-खड़ी देखती हूँ। तुम्हारे कपोलों को भी मैं खड़ी-खड़ी देखती हूँ। मेरे पास योगियों जैसी चादर, बाघ-सींग, भस्म तथा शैला भी नहीं है। हे मौनी! तू अब भी मुख खोल कर वार्तालाप कर। तुम्हारी जवानी चढ़ रही है। आँखें तीक्ष्ण हैं। अतः तू घर-घर मत जा। मीरा कहती है कि मेरे स्वामी तो अविनाशी भगवान हैं। मैं तो उनकी बिना मोल की सेविका, शिष्या एवं दासी हूँ।

विशिष्ट—इस पद में “योगी” का जो रूप चित्रण है। उससे लगता है कि उस काल में जवान योगी जनता को जल देने के लिए घूमते थे। मीरा ने उन्हें देखा था इसलिये ऐसे योगियों को घर-घर घूमने से मना करती है। और सामाजिक स्थिति का संरक्षण करती है। इसके साथ ही अपनी भक्ति-भावना की श्री कृष्ण के प्रति दृढ़ता का भी ज्ञापन कर देती है। इस तरह मीरा ने तत्कालीन जंत्र पंथियों के बाह्य आडम्बरमय रूप का विरोध किया है और अपने निर्विकारात्मक योगीश्वर का समर्थन किया है। कृष्ण भक्त होने के कारण मीरा ने “अविनाशी” शब्द का प्रयोग किया है। “हरि शब्द” भगवान विष्णु का अवतार होने के कारण श्रीकृष्ण के लिए प्रयुक्त किया गया है। इस पद में “बिन मोल चेरी होना” मुहावरा भावना बोधक ढंग से प्रयुक्त है।

रमईया मेरे तोही सूँ लागी नेह।
लगी प्रीति जिन तोडै रे बाला, अधिकौ कीजै नेह ॥ टेक ॥
जै हूँ ऐसी जानती रे बालाँ, प्रीति कीयाँ दुष होय।
नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय ॥
षीर न षाजे आरी रे, मूरण न कीजै मित ॥
षिण ताता षिण सीतला रे, षिण बैरी षिण मित ॥
प्रीत करै ते बावरा रे, करि तोडै ते कूर।
प्रीत निभावण दल के षंभण, ते कोई बिरला सूर।
तुम गजगीरी कोँ चूँतरी रे, हम बालू की भीत।
अब तो भ्यां कैसे वणै रे, पूरब जनम की प्रीत।
एकै थाणो रोपिया रे, इक आँवो इक बूल।
वाकौ रस नीको लगै रे, वाकी भागै सूल ॥
ज्यूँ डूगर का वाहला रे, यूँ ओछा तणा सनेह।
बहता वहै जी उतावला रे, वे तो लटक बतावे छेह ॥
आयो साँवण भादवा रे, बो'लण सगा मोर।
मीरा कूँ हरिजन मिल्या रे, ले गया पवन झकोर ॥ 59 ॥

शब्दार्थ—रमईया=राम, पति। नेह=प्रेम, प्रीति। बाला=प्रियतम। षीर=क्षीर, दूध भात। अकरी (आरी)=अत्युष्ण, बहुत गर्म, षिण=क्षण। बावरा=पागल। कूर=क्रूर, बुरा, नीच। षंभण=धामना। सूर=सूरमा। गजगीरी=विशेष नाम, गच किया हुआ चबूतरा, सुदृढ़ चबूतरा। बालू=रेत। भीत=दीवार। थाणे=स्थान, जगह में आँवो=आम। बूल=बबूल का पेड़। भागे=भाग्य में। सूल=काँटा। वाहला=झोत, बहने वाला झरना। ओछा तणा=ओछे व्यक्ति, नीच मनुष्य। तण=का। उतावला=उमड़कर। छेह=तोड़ देता है, नष्ट कर देता है, मनुष्य विनाश कर लेता है।

व्याख्या—हे रमैया! हे मेरे इष्टदेव! हे रमणीय श्याम! मेरी तो तुझ से ही प्रीति लगी हुई। हे प्रियतम! अब इस लगी हुई प्रीति को मत तोड़िये अपितु मुझ से और अधिक प्रेम कीजिए। हे प्रिय! यदि मैं यह तथ्य जानती कि प्रीति ‘तुमसे’ भगवान से भी, करने पर दुःख होता है तो मैं नगर भर में ढिंढोरा फेर देती कि कोई भी किसी से प्रीति मत करना। तात्पर्य यह कि सब स्थानों पर यह प्रसिद्धि हो जाती कि प्रीति (भगवत्! प्रीति) भी दुःखदायक है। हे प्रियतम! दूध बहुत गर्म हो, तब भी नहीं पीना चाहिए। न ही मूर्ख व्यक्ति से मित्रता करनी चाहिए। जैसे दूध क्षण भर में गर्म

नोट

हो जाता है और क्षण भर में शीतल हो जाता है। इसी भाँति मूर्ख व्यक्ति भी क्षण भर में क्रोधवश शत्रु बन जाता है और क्रोध उतरते ही मित्र बन जाता है। प्रीति करने वाले को लोक में पागल कहते हैं। (लौकिक और अलौकिक दोनों स्तर पर यही स्थिति है) और जो प्रीति करने के पश्चात् उसे तोड़ देता है। उस प्रीति को नहीं निभाता है। उसे संसार में लोग नीच, कृतघ्न अथवा विश्वासघाती कहते हैं। प्रीति करने के पश्चात् उसको निभाने वाला, विघ्नों को नष्ट कर के चलने वाला। ('दिल के पंभण' पाठ माना जाए तो अर्थ होगा कि दिल को थाम कर चलने वाला, धैर्यशाली व्यक्ति) कोई अनोखा ही शूर होता है। (भक्ति-क्षेत्र का सूरमा, जो संसार के लोगों के व्यंग्य-बाणों को सहन कर लेवे) हे प्रियतम! तुम तो पक्का बना हुआ चबूतरा हो। अथवा गजगिरि स्थान (पर्वत विशेष के पत्थरों से) के शिलाखण्डों से बने चबूतरे की भाँति हो और मैं रेत की दीवार की भाँति हूँ। जो स्थायी नहीं, गिर पड़ने वाली है। तब भी मेरी ओर तुम्हारी प्रीति (पूर्वजन्म जन्मान्तर की है) पूर्व जन्म से चली आ रही है। अब इसे कैसे भी बना रहना चाहिए। टूटना नहीं चाहिए। इसे न टूटने देने का श्रेय एक मात्र तुम्हें ही प्राप्त हो सकता है। संसार में एक ही स्थान पर आम का पौधा और कीकर का पेड़ लगाया जाए तो विधि का विधान यह होता है कि आम का रस अच्छा 'मधुर' लगता है। सब को भाता है। प्रिय लगता है और उस कीकर के भाग्य के काँटे आते हैं। जो सब को चुभते हैं। इसी प्रकार संसार के प्राणियों में कुछ को भगवद् भक्ति का मधुर रस प्राप्त होता है और कुछ को मोह, मद-क्रोधादि के कारण कांटों के चुभने के समान पीड़ा ही उपलब्ध होती है। नीच मनुष्यों की प्रीति छोटी-छोटी पहाड़ियों से गिरने वाले पानी के स्रोत की भाँति स्थिर नहीं होती, वह पानी का स्रोत बड़ी तीव्रता से बहता है परन्तु शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। इसी भाँति ओछे व्यक्ति का प्रेम भी बड़े उत्साह से आरम्भ होता है और शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। सावन और भादों मास का समय आ गया है और वर्षा हो रही है। मोर कूकने लगे हैं। मीरा को सावन ऋतु की भाँति शीतलता देने वाले भगवद् भक्त मिले हैं। भक्तजनों के मिलने से शीतलता मिली है। परन्तु यह शीतलता हवा के झोंके के समान हैं जैसे झोंका आता और चला जाता है। उसी भाँति सत्संगति भी स्थायी नहीं रहती। स्थायी शीतलता तो अपनी भगवत्प्रीति से ही प्राप्त हो सकती है।

विशिष्ट—(1) इस पद में मीरा ने भगवत् प्रेम के मार्ग की कठिनाइयों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। अपने प्रियतम के कठोर, दयामय, लहरी-स्थिर, रसिक। शुष्क होने का अपना मनोगत चित्र-चित्रित किया है। साथ ही अपने अटूट प्रेम का परिचय भी दिया है।

(2) पीर न पाजे आकरी रे.....पद में प्रतिवस्तूपमा का उदाहरण सुन्दर बना है। कुछ विद्वान् इसमें निदर्शनालंकार की छटा देखते हैं। उसके अनुसार दूध और मूर्ख की क्रियाएँ परिणाम भिन्न होने पर भी मूलतः दोनों में हानि रूप समान धर्म हैं अतः निदर्शनालंकार है।

(3) दृष्टांत अलंकार की छटा दर्शनीय है। गजगिरी को चूँतरो रे। बालू की भीत, ज्यों डूगर का बाहला रे यूँ ओछा तणा सनेह बतावे छेह आदि पदों में दृष्टांतालंकार सुन्दर बन पड़ा है।

गिरधर रीसाणा कौन गुणाँ ॥टेक॥

कछुक आँगुण हम पै काढ़ो, मै भी कान सुणाँ ॥

मैं तो दासी थारी जनम जनम की, थे साहब सुगुणा।

मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, थारोई नाम भणा ॥60॥

शब्दार्थ—रीसाणा=अप्रसन्न हुआ, नाराज हुआ। कौन गुणाँ=किस कारण से। कान सुणाँ=कानों से सुनूँ, जानूँ। साहब=स्वामी। सुगुणा=गुण शाली। थारोई=तुम्हारा ही। भणा=कहती हूँ, लेती हूँ, जपती हूँ।

व्याख्या—हे गिरधर! हे श्रीकृष्ण तुम किस कारण से मुझसे नाराज हो। कुछ दोष हममें भी बताओ, निकालो अथवा सिद्ध करो। उन दोषों को मैं भी अपने कानों से सुनूँ। मैं तो तुम्हारी जन्म जन्मान्तर से सेविका हूँ। और मेरे स्वामी तुम तो बहुत गुणी और श्रेष्ठ हो। मीरा कहती है कि हे चतुर गिरधर! मैं तो केवल तुम्हारा ही नाम लेती हूँ। तुम्हारे अतिरिक्त किसी अन्य देव का ध्यान नहीं करती।

विशिष्ट—इस पद में मीरा की भक्ति-भावना की दृढ़ता के साक्षात् दर्शन होते हैं। आत्म दृढ़ता के कारण मीरा कहती है कि वह अपने दोषों को कानों से सुनने के लिए प्रस्तुत है ताकि दोषों को सुन कर उन्हें दूर कर सके। परन्तु भीतरी भाव यह है कि दोष आएँगे कहाँ से। मीरा तो जन्म जन्मान्तर से भगवन्नाम लेती आ रही है, अतः दोषों के लिए अवकाश कहाँ। इस दृष्टि से मीरा की भक्तिभावना की सुदृढ़ता यहाँ प्रकट है।

म्हारे डेरे आज्यो जी महाराज ।

चुणि चुणि कलियाँ सेज बिछायी नख सिख पहस्यो साज ॥

जनम जनम की दासी तेरी तुम मेरे सिरताज ।

मीरा के प्रभु हरि विनासी दरसन दीज्यौ आज ॥ 61 ॥

शब्दार्थ—म्हारे=हमारे । डेरे=स्थान पर, निवास स्थान पर । चुणि-चुणि=चुन-चुनकर । सेज=शय्या । नख-सिख=पांव के नाखूनों से लेकर सिर की शिखा (चोटी) तक, सारे शरीर पर । सिरताज=सिर के ताज, सिर की शोभा ।

व्याख्या—हे महाराज (राजाओं के राजा) श्री कृष्ण! आप मेरे डेरे पर आइए । मेरे निवास स्थान पर आ कर मुझे दर्शन दीजिए । आप के विराजने के लिए कलियों को चुन-चुन कर शय्या बनाई है और आप को रिझाने के लिए आप के अनुकूल ही मैंने सारे शरीर में शृंगार किया है । गोपी भाव से प्रिय के अनुकूल अपने आप को सजाया है । (तुम) आप मेरे सिरताज हैं । मैं तुम्हारी जन्म जन्मान्तर की दासी हूँ । हे प्रभु । आप तो सब पीड़ा हरने वाले अविनाशी हैं । इस लिये मुझे दर्शन दीजिए ।

विशिष्ट—इस पद में मीरा का विनय भाव प्रस्तुत है । वह अपने इस देव को महाराज और सिरताज से कम समझने वाली नहीं है । उसके अन्तः करण में भगवन् की सर्वोत्तम आकृति अपना स्थान बनाए हुए है ।

हरि धें हर्या जण की भीर॥टेक॥

द्रोपता री लाज राख्यौ थे बढ़ायौ चीर॥

भगत कारण रूप नरहरि, धर्यौ आप सरीर ।

बूढ़ता गजराज राख्यौ, कटवाँ कुँजर भीर ।

दासि मीरा लाल गिरधर, हराँ कटवाँ म्हारी भीर ॥ 62 ॥

पाठान्तर—

हरि तुम हरो जन की भीर ॥ टेक ।

द्रोपदी की लाज राखी तुम बढ़ायो चीर ।

भक्त कारन रूप नरहरि धर्यौ आप शरीर ॥

हिरन कश्यप मारि लीन्हौ, धर्यौ नाहिं धीर ॥

बूढ़त गजराज राख्यौ, कियों बाहर नीर ॥

दासी मीरा लाल गिरधर, चरण कँवल पे सीरा ॥

शब्दार्थ—हर्या=दूर की । जण की=जन की, अपने भक्त की । भीर=पीड़ा, कष्ट, दुःख । लाज=लज्जा । चीर=वस्त्र, नरहरि=मनुष्य और सिंह का रूप, नृसिंह रूप । बूढ़ता=डूबता हुआ । कुँजर=गजराज । हराँ=दूर कीजिए ।

व्याख्या—हे भगवन् ! तुमने अपने भक्तों की पीड़ा को सदा दूर किया है । तुमने चीरों को बढ़ा कर द्रोपदी की लज्जा को बचाया है और प्रह्लाद के कष्ट दूर करने के लिये नृसिंह का अवतार (शरीर धारण) धारण किया है । प्रह्लाद को बचा लिया तथा हिरण्यकश्यप (प्रह्लाद के पिता) को नष्ट किया । गजराज को डूबते हुए देख कर तुमने ही उसका उद्धार किया, उसे बचाया । हाथी की पीड़ा को नष्ट किया और उसे बचा लिया । मीरा कहती है कि हे गिरिधर श्रीकृष्ण! मेरी पीड़ा को भी दूर कीजिए । मेरे कष्ट का निवारण भी कीजिए । मैं तुम्हारी दासी हूँ । अतः कष्टों को दूर कीजिए ।

विशिष्ट—इस पद में मीरा ने इतिहास को देखा है और भारतीय इतिहास में द्रोपदी और प्रह्लाद की चर्चा है । इन दोनों भक्तों की रक्षा भगवान ने की है । यह इतिहास प्रसिद्ध है । गजराज की रक्षा की कथा भी ज्ञात है । इन भक्तों के उदाहरणों से मीरा ने अपनी रक्षा के लिए भी प्रार्थना की है ।

अब तो निभायाँ, बाहँ गह्याँ री लाज ॥ टेक ॥

असरण सरण कह्यौ गिरधारी, पतित उधारत पाज ।

भोसागर मझधार अधाराँ धें विण घणो अकाज ।

जुग-जुग भीर हराँ भगताँरी, दीश्याँ मोच्छ नेवाज ॥

मीरा सरण गहाँ चरणौ री, लाज रखाँ महाराज ॥ 63 ॥

पाठान्तर— अब तो निभाया सरेगी। बाँह गहे की लाज।
 समरथ सरन तुम्हारी सइयाँ, सरब सुधारण काज ॥
 भवसागर संसार अपरबल, जामें तुम हो जहाज।
 निरधारों आधार जगत गुरु, तुम बिन होय अकाज ॥
 जुग-जुग भीर हरि भक्त की, दीनी मोक्ष समाज।
 मीरा सरण गही चरणन की, लाज रखो महाराज ॥

नोट

शब्दार्थ—निभायाँ=निभा दीजिए, अपना वचन पूरा कर दीजिए। गहयाँ=पकड़ने की। पाज=प्रतिज्ञा।
 अधारां=निराधार, बिना आधार के। अकाज=हानि। दीश्यां=दीजिए। नेवाज=कृपालु।

व्याख्या—हे भगवान! अब तो आप मेरी बाँह पकड़ने की लाज निभा लीजिए। मुझे अपना लेने की मर्यादा का पालन कीजिए। हे गिरिधारी! तुम अशरणों, निराश्रितों को शरण देने वाले हो और पापियों, पतितों का उद्धार करना तुम्हारी प्रतिज्ञा है मैं संसार रूपी सागर के बीच में निराधार निराश्रित पड़ी हुई हूँ। तुम्हारे द्वारा उद्धार किए बिना बहुत हानि होगी। हे भगवन् तुमने युग-युग में अपने भक्तों के कष्टों को दूर किया है। इस लिए कृपालु होने के कारण मुझे मोक्ष दीजिए। हे महाराज। मीरा ने आपके चरणों की शरण ग्रहण की है इसलिए इस बात की (मर्यादा) रखिए कि आपकी शरण में आने वाले भक्त की रक्षा हो। उसे कष्ट न पहुँचे।

विशिष्ट—(1) इस पद में मीरा की विनय सहित शरणागत-प्रपत्ति भक्ति का परिचय मिलता है। वह निराधार होने के कारण भगवान के चरणों में आ गई है। अतः अब भगवान उसके रक्षक हैं।

(2) भो सागर में (भव रूपी सागर) में रूपक अलंकार की व्यापक छटा है। सागर में अनन्त जीव एवं पदार्थ है संसार में भी ऐसी ही स्थिति है।

हरि बिन कुण गति मेरी ॥टेक॥
 तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, मैं रावरी चेरी।
 आदि अन्त निज नाँव तेरो, हीया में फेरी।
 बेरि बेरि पुकारि कहूँ, प्रभु आरति है तेरी।
 यौ संसार विकार सागर, बीच में घेरी।
 नाव फाटी प्रभु पाल बाँधो, बूझत है बेरी।
 बिरहणि पिव की बाट जोवै, राखिल्यौ नेरी।
 दासि मीरा राम रटत है, सरण हूँ तेरी ॥64॥

शब्दार्थ—कूण गति=कौन सी दशा। प्रतिपाल=रक्षक। रावरी=तुम्हारी। चेरी=सेविका, चेली। आदि-अन्त=आरम्भ से लेकर अन्त तक। नाव=नाम। हीया में फेरी=हृदय में नाम फेरती रहती हूँ। हृदय में नाम लेती रहती हूँ। बेरि-बेरि=बार-बार, जल्दी-जल्दी। आरति=आरती उतारना, उत्कट चाह अथवा आर्त भक्त की पुकार। विकार=दोष। घेरी=घिर गई हूँ। पाल बाँधो=पाल तानो, पाल चढ़ाओ। बेरी=बेड़ी, नौका। पिव की=प्रिय की। बाट जोवै=रास्ता देखती है। नेरी=निकट।

व्याख्या—हे भगवन् तुम्हारे बिना मेरी गति कहाँ है? तुम ही मेरे रक्षक हो। मैं तुम्हारी सेविका हूँ। शिष्या हूँ। मैं आदि से अन्त तक—जन्म से मृत्यु तक तुम्हारा ही अपना नाम रह जाता है। इसलिये मैं अपने हृदय में तुम्हारे ही नाम को जपती रहती हूँ बार-बार पुकार कर कहती हूँ कि भगवन्। मैं तुम्हारी आरती करती हूँ। अथवा आर्त (दुःखी) भक्त की भाँति बार-बार प्रार्थना करती हूँ। यह संसार दोषों से भरा हुआ समुद्र है मैं इसके बीच में घिर गई हूँ। मेरी जीवन नौका टूट-फूट गई है। इसलिये तुम मेरे उद्धार के लिये पाल को बाँध दो। सहारा दे दो। मेरी जीवन-नौका डूब रही है। मैं तो वियोगिनी हूँ। इसलिये प्रिय का (तुम्हारा) मार्ग देखती रहती हूँ। इस लिए तुम मुझे अपने निकट रख लो। हे भगवन्! मीरा तुम्हारी दासी है। मैं तुम्हारा नाम लेती रहती हूँ। मैं (मीरा) तुम्हारी शरणागत हूँ।

विशिष्ट—शरणागत भक्त का निवेदन इस पद में है। भक्ति भाव के आर्त भेद का रूप भी इस पद में दृष्टिगत होता है।

नोट

(1) यौ संसार विकार सागर – में रूपकालंकार की छटा है।

प्रभु जी थे कहाँ गया नेहड़ा लगाय ॥टेक॥
छोड़या म्हां विस्वास संगती, प्रेमी बाती जलाय।
बिरह समंद में छोड़ गया छो, नेह री नाव चलाय।
मीरा रे प्रभु कबरे मिलोगे थे विण रखाँ णा जाय ॥65॥

पाठान्तर—

प्रभु जी थे कहाँ गयो नेहड़ा लगाय । टेक।
छोड़ गया अब कौन बिसासी, प्रेम की बाती जलाय॥
बिरह समन्द में छोड़ गया छो, नेह की नाव चलाय।
मीरा के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम बिन रखाँ न जाय॥

शब्दार्थ—नेहड़ा=नेह, प्रेम। संगती=साथी। बाती जलाय=बत्ती को जला कर। समंद=समुद्र। रखाँ=रहा।

व्याख्या—हे भगवन्! तुम प्रीति लगाने के बाद कहाँ चले गये। तुम मेरे विश्वास के साथी थे, तुमने मुझे क्यों छोड़ दिया। प्रेम की बत्ती जला कर तुम कहाँ चले गये। अथवा (संगती) शब्द के स्थान पर 'संधाती' शब्द रख लिया जाए। तब यह अर्थ होगा कि मेरे अन्तःकरण में प्रेम की आभा जला कर तुम विश्वासघात करके मुझे छोड़ गये। प्रेम की नौका चला कर तत्पश्चात् मुझे वियोग के समुद्र में छोड़ गये हो। मीरा कहती है कि मेरे प्रभु तुम मुझे कब मिलोगे। तुम्हारे बिना मुझ से रहा नहीं जाता।

विशिष्ट—(1) इस पद में आत्मनिवेदनात्मक भक्ति का उज्ज्वल रूप है। मीरा अपने प्रेम और तज्जनित विरह के सम्बन्ध में अपना हृदयगत भाव स्पष्टतः कहती है।

(2) 'विरह समंद' में रूपकालंकार की शोभा है। विरह सागर की भाँति अथाह एवं गम्भीर होता है। 'प्रेम री बाती' एवं 'नेह री नाव' पद्यांशों में रूपकालंकार नहीं मानना चाहिये। 'प्रेमबाती' तथा 'नेहनाव' प्रयोग होता तो रूपकालंकार बनता। 'री' शब्द से का, के, की (सम्बन्ध कारक) का बोध हो जाता है। अतः रूपकालंकार नहीं बन सकता।

डारि गयो मनमोहन पासी ॥ टेक ॥

आँबाँ की डालि कोइल इक बोलै, मेरो मरण अरु जग केरी हाँसी।

बिरह की मारी मैं बन-बन डोलूँ, प्राण तजूँ करवत लूँ कासी।

मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ॥ 66 ॥

शब्दार्थ—डारि गयो=डाल गया। पासी=फाँसी, फन्दा। आँबा=आम। जग केरी=संसार की। हाँसी=हँसी। करवत लूँ कासी=करवट लूँगी काशी में, आरे से चिरना। अविनासी=जिसका विनाश न हो।

व्याख्या—मीरा कहती है कि मन को मोहने वाला श्रीकृष्ण मेरे गले में प्रेम की फाँसी डाल गया है। आम की डाल पर बैठी हुई एक कोयल बोलती है। उसकी मधुर ध्वनि सुन कर मैं तो वियोग में मरी जाती हूँ और संसार के लिये यह हँसी का विषय बन गया है। प्रेम के वियोग में पीड़ित मैं तो वन-वन में घूमती फिरती हूँ। प्राण छोड़ने को तत्पर हूँ। काशी करवट लेने को भी तैयार हूँ। मीरा कहती है कि मेरे प्रभु भगवान, अविनाशी हैं इसलिये हे प्रभु! तुम मेरे ठाकुर (स्वामी) हो और मैं तुम्हारी सेविका हूँ। इसलिये अपनी शरण में मुझे ले लो।

विशिष्ट—(1) कोयल की मधुर ध्वनि के कारण मीरा के अन्तःकरण का भगवत् प्रेम के कारण पीड़ित होना विरह का अलौकिकीकरण है। लौकिक उपकरणों के द्वारा अलौकिक प्रेम के विरह का रूप यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

(2) इस पद में असंगति अलंकार है। क्योंकि आम की डाली पर कोयल बोलती है और मरण का प्रभाव मीरा पर होता है। कारण कोयल डाली पर है और कार्य मीरा का हृदय अन्य स्थान पर। कारण-कार्य के भिन्न देश में होने से असंगति अलंकार की संगति यहाँ है।

समानान्तर भाव—सूरदास— नेह लगाय त्यागि गये तून सम,

डारि गये गल फाँसी।

माई म्हाँरी हरिहू न बूझयाँ बात ॥टेक॥

पंड माँसूँ प्राण पापी, निकसि क्यूँ णा जात।

नोट

पटा णा खोल्या मुखां णा बोल्यौं, साँझ भयाँ परभात
अबोलणाँ जुग बीतण लागो कायाँरी कुसलात।
सावण आवण हरि आवण री, सुण्या म्हाणे बात।
घोर रैणाँ बीजु चमकाँ बार गिणतां प्रभात।
मीरा दासी स्याम राती, ललक जीवणां जात॥67॥

पाठान्तर—

माई म्हारी हरिजी न बूझी बात।
पिण्ड माँ सँ प्राण पापी निकस क्यूँ नहीं जात।
पट न खोल्या मुखाँ न बोल्या, साँझ भई परभात।
अबोलणा जुग बीतण लागो, तो काहे की कुसलात।
सुपन में हरि दरस दीन्हों णैण जाप्युँ हरि जात।
नैण म्हारा उघड़ आया रही मन पछतात।
रैण अंधेरी विरह घेरी, तारा गिणति निस जात।
ले कटारी कंठ चीरूँ करूँगी अपघात।
आवण आवण होय रह्यो रे नहिं आवण की बात।
मीरा व्याकुल विरहणी रे बाल ज्यूँ बिललात॥

शब्दार्थ—बूझ्याँ बात=बात न बूझी, पूछा या समझा। पंड=पिण्ड, शरीर। माँ सँ=में से। निकसि=निकल। पटा=कपड़ा, परदा, घूँघट। साँझ=सन्ध्या। भया=हो गया। प्रभात=सवेरा। अबोलणाँ=बिना बोले। जुग=युग, लम्बा समय। कायाँ री=कैसी। कुसलात=कुशलता। आवण=आना। रैण=रात। बीजु=बिजली। बार गिनताँ=दिन गिनते-गिनते। समय गिनते-गिनते। राती=अनुरक्त हुई। ललक=ललकते हुए, चाह में। जात=जा रहा है।

व्याख्या—हे सखी! हरि ने हमारी बात भी नहीं पूछी। हमसे किसी प्रकार की बातचीत नहीं की। मेरे इस शरीर से यह पापी प्राण क्यों नहीं निकल जाते। मैंने अपना पर्दा भी नहीं उठाया और मुख से भी कुछ नहीं बोला। संध्या से लेकर समय बीतते प्रातःकाल हो गया। बिना बोले ही युग (लम्बा समय) बीतने लगा। कुशलता कैसी? कुशलता किस प्रकार हो सकती है। हरि ने सावन मास में आने के लिये कहा था। हमने यह बात सुनी थी। रात्रि भयंकर अन्धकार से भी हुई है बिजली चमकती है। समय गिनते-गिनते दिन चढ़ता है। मीरा कहती है कि मैं तो श्रीकृष्ण की दासी हूँ। मेरा जीवन ललकते-ललकते ही बीता जा रहा है। दर्शन की चाह में ही बीत रहा है।

विशिष्ट—विरह की दशा का चित्र इस पद में दिया गया है। प्रकृति का उद्दीपन रूप भी इस पद में विद्यमान है।

परम सनेही राम की नीति ओलूँरी आवै॥ टेक॥
राम हमारे हम हैं राम के, हरि बिन कछू न सुहावै।
आवण कह गये अजहूँ न आए जिवड़ो अति उकलावै।
तुम दरसण की आम रमैया, कब हरि दरस दिखावै।
चरणकँवल की लगनि लगी नित, बिन दरसणु दुख पावै।
मीरा कूँ प्रभु दरसण दीज्यो, आणँद बरण्युं न जावै॥ 68॥

शब्दार्थ—परम सनेही=बहुत प्रेमी। ओलूँ=स्मृति। जिवड़ो=जीव, जीवात्मा। उकलावै=अकुलाता है। बैचैन होता है। आस=आशा। लगनि=लगन।

व्याख्या—सर्वत्र रमणशील, सर्वव्यापक परम प्रेमी की नीति सदा स्मरण होती रहती है। उसके व्यवहार की याद आती रहती है। राम हमारे हैं और हम राम के हैं। भगवान के बिना मुझे कुछ भी नहीं भाता। प्रियतम मुझ से आने के लिये कह गये थे परन्तु आज तक नहीं आये। इस कारण जीवात्मा बहुत व्याकुल हो गई है। हे प्रियतम! तुम्हारे दर्शन की आशा लगी हुई है। अब भगवान आप कब दर्शन देंगे। मुझे तो चरण कमलों की लगन ही सदा लगी रहती है।

नोट

बिना दर्शनों के दुःख ही प्राप्त होता है। मीरा कहती है कि मेरे स्वामिन्! दर्शन दीजिये। दर्शन करने से प्राप्त होने वाले आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

विशिष्ट—स्मृति भाव की पुष्टि इस पद में उत्कट रूप से है। नवधा भक्ति के स्मरण भेद, का यह पद सुन्दर उदाहरण है। मीरा अपने प्रियतम के स्मरण में दिन व्यतीत कर रही है। साथ ही दर्शनार्थ प्रार्थना भी करती है। क्योंकि स्मरण से दर्शन अधिक आनन्ददायक होता है।

साँवलिया म्हारो छाय रह्या परदेस ॥टेक॥

म्हारा बिछड़ या फेर न मिलया भेज्या ना एक सन्नेस।

रतण आभरण भूखण छाड़्यौ, खोर कियौ सिर केस।

भगवाँ भेख धरयाँ थे कारण, ढूँढया चारयाँ देस।

मीरा रे प्रभु स्याम मिलण विणा जीवनि जनम अनेस ॥ 69 ॥

शब्दार्थ—छाय रह्याँ=टिका रहा। परदेस=परदेश। फेर=फिर, पुनः सन्नेस=सन्देश। रतन=रत्न। भूखण=भूषण। खोर कियौ=क्षौर करवा दी, हजामत करवा दी। भेस=वेष। चारयाँ देस=चारों दिशाओं में। अनेस=बिना स्वामी के, विधवा की भाँति।

व्याख्या—मीरा कहती है, कि हमारा प्रियतम श्याम परदेश में बस गया है। हम से बिछड़ने के बाद पुनः नहीं मिला और अपने ना मिलने के सम्बन्ध में एक भी संदेश नहीं भेजा। मैंने अपने प्रियतम के निकट न रहने के कारण रत्न और गहने पहनना छोड़ दिया है और सिर के बाल भी कटवा दिये हैं। तुम्हारे कारण से मैंने भगवा वेष्ट धारण कर लिया है और संन्यासिनी बन कर तुम्हें चारों दिशाओं में ढूँढा है। मीरा कहती है कि अपने स्वामी श्रीकृष्ण से मिले बिना तो इस जन्म का जीवन विधवा की भाँति बीत जाएगा।

विशिष्ट—इस पद के 'रतण' शब्द का अर्थ रत्न भी किया जाता है जो सर्वथा अशुद्ध है। शुद्ध रतन (रत्न) है। अनेस शब्द का अनेक या अप्रिय अर्थ किया है। जो सर्वथा भ्रान्त अर्थ है। अन (+) ईश=बिना स्वामी के। मीरा तो अपने आप को सर्वदा, सर्वथा साधक मानती है। अतः वह दृढ़तापूर्वक कहती है कि बिना मिलन के तो यह जीवन विधवा-सा बीत जाएगा। इसलिये सधवा रहने के लिये दर्शन देने के हेतु वह अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से प्रार्थना करती है।

स्याम विणा सखि रह्या ण जावाँ ॥टेक॥

तण मण जीवण प्रीतम वारया, थारे रूप लुभावौ।

खाण पाण म्हाणे फीकाँ सो लागां णैण रहां मुरझावाँ।

निस दिन जोवां बाट मुरारी, कबरो दरसण पावाँ।

बार बार थारी अरजाँ करसूँ रैण गवां दिन जावाँ।

मीरा रे हरि थे मिलियाँ विण तरस तरस जीया जावाँ ॥ 70 ॥

शब्दार्थ—वारया=निछावर किया। खाण पाण=खाना-पीना। फीकाँ=नीरस। नैणा रहौं मुरझावौ=आँखें मुरझा गयी हैं। बाट=रास्ता। अरजाँ=अरज, प्रार्थना। रैण=रात।

व्याख्या—मीरा कहती है, हे सखि! श्रीकृष्ण के बिन मुझसे रहा नहीं जाता। मैं अपने प्रियतम पर शरीर, मन और जीवन को न्यौछावर किये हुए हूँ। मैं तुम्हारे (प्रिय) रूप पर मुग्ध हूँ मुझे तुम्हारे बिना खाना-पीना भी नीरस लगता है। आँखें भी मुरझा गयी हैं। उदास हो गयी हैं। हे मुरारि! मैं रात-दिन तुम्हारा रास्ता देखती हूँ, कब मुझे दर्शन प्राप्त होंगे? मैं तुम्हारे आगे बार-बार प्रार्थना करती हूँ कि इसी प्रकार जीवन के रात-दिन बीतते जा रहे हैं। मीरा कहती है कि भगवन्! तुमसे मिले और दर्शन किये बिना मेरी जीवात्मा तरस-तरस कर रह जाती है। मुझे बहुत व्याकुलता है जीवात्मा तड़पती रहती है।

विशिष्ट—(1) विरह की दशा का वर्णन इस पद में किया गया है। लौकिक संगति के साधनों का त्याग भी इस पद में वर्णित है जोकि प्रेमरूपा भक्ति के लिए आवश्यक माना जाता है।

णैण मुरझाना (नयन मुरझाना) मुहावरे का प्रयोग रमणीय ढंग से किया गया है।

9.2 सारांश (Summary)

नोट

मीरा का काव्य सहज जीवन का उद्गार है। उनकी विरह वेदना ही काव्य बनकर उभरी है। कृष्ण के प्रेम में दीवानी मीरा ने राजकुल का वैभव सुख-साज सब कुछ त्याग दिया। अपने इष्ट के सामने उन्हें सांसारिक सुख तुच्छ प्रतीत हुए। मीरा ने पति का घर त्याग दिया। वह कृष्ण की पुजारिन बनकर संतों की संगत में रहने लगीं। उनके इस व्यवहार को उनके ससुराल वालों ने अपना अपमान माना और मीरा को दण्डित करने हेतु तरह-तरह की यातनाएँ दीं। लेकिन मीरा अपनी भक्ति से रंच-मात्र भी विमुख न हुई। उनके प्रेम का रंग और भी गाढ़ा होता गया। उनका काव्य उनके हृदय का उद्गार है, प्रेम की अभिव्यक्ति है।

9.3 शब्दकोश (Keywords)

1. छप्पन भोग: 56 तरह के पकवान, खाद्य-पदार्थ।
2. पचरंग: पांच रंगों का, यहां तात्पर्य है पांच तत्वों से (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश)।

9.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मीरा एवं कबीर के भक्ति रूपों की तुलना कीजिए।
2. 'मीरा का काव्य उनकी सहज अनुभूतियों का उद्गार है।' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर-स्वमूल्यांकन (Answer-Self Assessment)

1. असत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य

9.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



- पुस्तकें
1. मीरा मुक्तावली—मीराबाई कृत।
 2. मीरा पदावली—प्रभात प्रकाशन।
 3. मीरा का काव्य—त्रिपाठी विश्वनाथ, वाणी प्रकाशन (पटना) बिहार।

नोट

इकाई 10

मीरा की भक्ति भावना

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

10.1 मीरा की भक्ति भावना

10.2 सारांश (Summary)

10.3 शब्दकोश (Keywords)

10.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

10.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- मीरा के भक्ति भावना को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भक्तकवियों की रचनाओं से उनके सिद्धांत और जीवन का तालमेल बिठाने में थोड़ी-बहुत सुविधा इसलिए होती है कि वे अपनी आस्था को कविता से बड़ा मानते थे। वे कथ्य को वाणी से अधिक महत्त्व देते थे। जहां अवसर मिलता था अपने विषय में भी दो टूक बातें करते थे। उन्होंने कविता में अपने विचारों को, जीवन-जगत् संबंधी अपनी प्रतिक्रिया को सीधे तौर पर अभिव्यक्त किया है।

मीरा ने प्रभूत मात्रा में रचना नहीं की, लेकिन फिर भी उन्होंने अपने विषय में पर्याप्त लिखा है। उनकी रचनाओं से उनके बाह्यांतर संघर्ष का पता चलता है। उनके विषय में बाह्य साक्ष्य प्रामाणिक-अर्धप्रामाणिक किंवदंतियां, वार्ताएं मिलती हैं। उनसे उनकी रचना सुसंबद्ध मालूम पड़ती है।

10.1 मीरा की भक्ति भावना

मीरा की कविता में लोकलाज, कुल की मर्यादा को तोड़ने या लांघने की बात बार-बार कही गई है। यह अकारण नहीं। इसके सामाजिक कारण हैं। मीरा अपने इष्ट को समर्पित तो होती हैं लेकिन इस समर्पित होने की प्रक्रिया में जो विघ्न-बाधा आती है उसका संकेत भी वह दे देती हैं। यह भी देखने की चीज है कि तुलसी के समान मीरा की कविता में भी 'दुर्जन', 'खल' आते हैं। विषमता का बोध मीरा के यहां प्रकट है। कबीर, तुलसी ने अपने समकालीन किसी 'खल' का नाम लेकर उल्लेख नहीं किया। जबकि मीरा ने 'राणा' का नाम लिया है।



क्या आप जानते हैं?

मीरा ने प्रचुर मात्रा में रचना नहीं की, लेकिन फिर भी उन्होंने अपने विषय में पर्याप्त लिखा है।

नोट

मीरा को श्याम के बिना जग खारा लगता है। जग की बात कच्ची लगती है। इस कच्ची यानी झूठी बात का विरोध श्याम के प्रति प्रीति से है जो जग की सच्ची बात है। जिस जग की और बातें कच्ची लगती हैं उसी में श्याम की प्रीति है जो सच्ची है। श्याम के बिना जग खारा लगता है तो उनकी भक्ति रसीली है। श्याम के बिना खारेपन के विरुद्ध भक्ति का रसीलापन मौजूद है। यथार्थ में कुमति है तो साधु-संगति भी है। कालव्याल है तो उससे बचने का तरीका हरि का गुणगान भी है। जगत् में खारापन और रसीलापन, कच्चापन और सच्चाई दोनों हैं। यथार्थ, विषमता पर परस्पर विरोधिता से युक्त है। मीरा को यथार्थ के जिस पक्ष से लड़ने के लिए लोकलाज तजनी पड़ती है वह शक्तिशाली है, मीरा उसके विरुद्ध उसी पर आधारित भावपक्ष को प्रस्तुत करती हैं जो उनके हृदय में स्थित है।



नोट्स

मीरा का अपना कोई नहीं, केवल गिरधर गोपाल हैं। मीरा ने भाई-बंधु, सगे-साथी सब छोड़ दिया। साधुओं के साथ बैठ-बैठकर लोक-लाज भी खो दी।

मीरा का प्रियतम

मीरा द्वारा स्मृत, चित्रित और संबोधित 'जोगी' परम प्रियतम कृष्ण है—यही मान्य लगता है। 'जोगी' उनकी साधना पर नाथपंथी प्रभाव प्रकट करता है। लेकिन इस 'जोगी' को लेकर मीरा ने जो कुछ कहा है वह कुछ और भी संकेत कर सकता है। जिसके विरह में मीरा दुखी हैं और जिसे लेकर मीरा ने ऐसी अचूक अभिव्यक्ति की है, उसका लौकिक आधार नहीं होगा—यह मानना संभव नहीं लगता। जिसके विषय में मीरा ने यह सीधी पंक्ति लिखी: **'था देखा बिण कल ना पड़ता जाणे म्हारी छाती।'** वह मीरा के अज्ञात प्रियतम का ज्ञात आधार न होगा?

मीरा ने जोगी के वियोग में जो कुछ कहा है वह विरहवर्णन की परंपरा में होते हुए भी किंचित् असामान्य है। जोगी की राह देखते हुए बहुत दिन बीत गए, वह आज तक आया नहीं। या तो जोगी जग में नहीं (मर गया है) या उसने मुझे भुला दिया:

कै तो जोगि जग में नाहिं कैर बिसारी मोइ (पद 44)



टास्क

मीरा की कृष्ण भक्ति के पीछे क्या भावना थी? इसका पता लगाइए।

मीरा का गिरधर नागर

मीरा के 'गिरधर नागर' का जो रूप निर्मित हुआ है उस पर मूर्ति की निर्मात्री का बहुत गहरा प्रभाव है। 'गिरधर नागर' स्थित भावजगत् में है लेकिन जिन उपकरणों से उनका निर्माण हुआ है वे इसी जगत् के हैं। वे मीरा के जीवनसंघर्ष से उपजे हैं। उस मूर्ति में मीरा की पीड़ा शमित होकर रूपांतरित हो जाती है। अभाव ही समाप्त नहीं होते। विष बुझता ही नहीं, अमृत में बदल जाता है।

मीरा का अपना कोई नहीं, केवल गिरधर गोपाल हैं। मीरा ने भाई-बंधु सगे-साथी सब छोड़ा। साधुओं के साथ बैठ-बैठकर लोकलाज खो दी। भक्तों को देखकर वे प्रसन्न होतीं, जगत् को देखकर रोतीं। आंसुओं से सींच-सींचकर उन्होंने प्रेमवेल बोई। राणा ने विष का प्याला भेजा। मीरा ने मगन होकर पी लिया। मीरा को लगन लग गई अब जो होना है, हो:

म्यारां री गिरधर गोपाल दूसरा नां कूयां।

दूसरा नां कूयां साधां सकल लोक जूयां ॥ टेक ॥

भाया छांड्यां बन्धा छांड्यां छांड्यां सगा सूयां।

साधां ढिग बैठ-बैठ, लोकलाज खूयां।

भगत देखां राजी हुयां जगत देखां रूयां।

असवां जल सींच-सींच प्रेम बेल बूयां ।
 दध मय घृत काढ़ लयां डार दया छूयां ।
 राणा विषरो प्यालो भेज्यां पीय मगर हूयां ।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. मीरा की कविता में लोकलाज, कुल की मर्यादा को तोड़ने व लांघने की बात बार-बार कही गई है।
2. मीरा को श्याम के बिना जग लगता है।
3. मीरा को यथार्थ से लड़ने के लिए तजनी पड़ती है।
4. की राह देखते हुए बहुत दिन गीत गए, वह आज तक आया नहीं।

10.2 सारांश (Summary)

मीरा की कविता में लोकलाज, कुल की मर्यादा को तोड़ने या लांघने की बात बार-बार कहीं गई है। यह अकारण नहीं। इसके सामाजिक कारण हैं। मीरा अपने इष्ट को समर्पित तो होती हैं लेकिन इस समर्पित होने की प्रक्रिया में जो विघ्न-बाधा आती है उसका संकेत भी वह दे देती हैं।

मीरा को श्याम के बिना जग खारा लगता है। जग की बात कच्ची लगती है। इस कच्ची यानी झूठी बात का विरोध श्याम के प्रति प्रीति से है जो जग की सच्ची बात है।

मीरा के 'गिरधर नागर' का जो रूप निर्मित हुआ है उस पर मूर्ति की निर्मात्री का बहुत गहरा प्रभाव है। 'गिरधर नागर' स्थित भावजगत में है लेकिन जिन उपकरणों से उनका निर्माण हुआ है वे इसी जगत् के हैं।

10.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **लोकलाज:** सामाजिक परम्पराएं, मर्यादा, नियम आदि।
2. **विरह:** बिछड़ना, किसी से अलग होने का भाव।

10.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मीराबाई किस भावना से कृष्ण भक्ति करती हैं? वर्णन करो।
2. मीरा के गिरधर नागर का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. मीरा को श्याम के बिना जग खारा क्यों लगता है?

उत्तर-स्व-मूल्यांकन (Answer-Self Assessment)

1. मर्यादा
2. खारा
3. लोकलाज
4. जोगी

10.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. मीरा मुक्तावली—मीराबाई कृत।
2. मीरा पदावली—प्रभात प्रकाशन।
3. मीरा का काव्य—त्रिपाठी विश्वनाथ, वाणी प्रकाशन (पटना) बिहार।

इकाई 11

नोट

मीरा मुक्तावली का शिल्प विधान**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

11.1 शिल्पगत विशेषताएं

11.2 भाषागत विशेषताएं

11.2 सारांश (Summary)

11.3 शब्दकोश (Keywords)

11.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

11.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- मीरा की शिल्पगत विशेषताएं जानने में।
- मीरा की भाषागत विशेषताएं समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मीरा की कविता की सबसे महत्वपूर्ण शिल्पगत विशेषता निरलंकृति है, जिसे आज की आलोचनात्मक शब्दावली में 'सपाटबयानी' कहते हैं। अलंकारों का प्रयोग मीरा के काव्य में भी मिलता है किन्तु नाममात्र को। अलंकारों का प्रयोग मीराकाव्य की विशेषता नहीं। स्त्रीसुलभ असहायता, प्रेमी की दृढ़ता, अनन्यता एवं पुरुषप्रधान समाज में अनेक अबलात्व—इन सबने मिलकर उनकी अभिव्यक्ति को बहुत सीधा और सपाट बना दिया है। उनके सीधे कथन में बेचारगी और निरीहता की हृदयवेधक सरलता है—**‘अंसुवन जल सींच-सींच प्रेमबेलि बोई।’** यह उनकी विशिष्ट अभिव्यक्ति की प्रतिनिधि पंक्ति है। मीरा सीधी-सपाट पंक्तियों में विह्वलता की अभिव्यक्ति करती हैं। जिन पदों में विरह-व्याकुलता वर्णित-चित्रित की गई है, उनकी प्रथम पंक्ति या टेक ऐसी है कि मानों वह हृदय में रह नहीं पाई, मीरा ने उसे दबाने, छिपाने की बहुत कोशिश की है, लेकिन वह विवश चीत्कार मनोस्थिति को प्रकट करती हुई बरबस बाहर निकल ही पड़ी है, जैसे उसे रोक पाना मीरा के वश में नहीं था। निरलंकृति और संक्षिप्तता इन टेक पंक्तियों का प्राण है। कोई नारी अबला क्लेश सहते-सहते, घुटते-घुटते न रह पाई हो और पुकार उठी हो। प्रिय को संबोधित करते हुए अपनी असह्य पीड़ा चीत्कार कर उठी हो—इस विवश स्थिति में अलंकारप्रियता, वाग्चातुर्य का कोई अवकाश नहीं। यहां टूटना ही काव्यसृजन को व्यवस्था देने का काम करता है:

हो जी! हरि कित गए णेह लगाया!

जो जानेवाला है उससे न जाने की अबलासुलभ कातर याचना है:

छोड़ मत जाज्यो जी महाराज। (पद 48)

ऐसी लगन लगाइ कहां तू जासी। (पद 49)

नोट

ये सीधी-सादी पंक्तियां इतनी अनुभूति-स्पंदित क्यों हैं? इनमें कोई काव्यकौशल नहीं। फिर भी ये सहृदय को इतना प्रभावित क्यों करती हैं? इसका कारण भारतीय पाठक और श्रोतावर्ग का भारतीय नारी की असहाय स्थिति से भरपूर परिचय है। कविता के प्रभाव के विषय में इस तथ्य की ओर समीक्षकों का ध्यान कम गया है कि कथन की मार्मिकता या प्रभावशीलता का बहुत बड़ा निर्णायक तत्त्व कहनेवाले की विश्वसनीयता भी है।

11.1 शिल्पगत विशेषताएं

यह सुनिश्चित है कि मीरा की कविता का प्रयोजन किसी भी प्रकार की शिल्प-गत चतुराइयों के लिए नहीं था—न यश के लिए, न अर्थ के लिए, न व्यवहारविद् बनने के लिए। वे किसी भी तरह उन कवियों की श्रेणी में नहीं थीं जिन्हें कविताई का शास्त्रीय ज्ञान हो। मीरा की कविता आत्म-निवेदन की सहज स्फूर्त अभिव्यंजना है। जो बात तुलसीदास जी ने अपने लिए विनयवश कही थी वह कवयित्री मीरा के लिए वास्तविकता है। उन्होंने लिखा—

कवित विवेक एक नहीं मोरे। सत्य कहूँ लिखि कागद कोरे ॥

कवि न होऊँ नहिं चतुर कहाऊँ। मति अनुसार राम गुन गाऊँ ॥

मीरा की कविता 'कृष्ण गुणगान' की है। रस, छन्द, अलंकार की दृष्टि से उनकी कविता का विश्लेषण करना उनके काव्य-प्रयोजन को निरादृत करना है, तब भी अनायास उनकी रचनाओं में बिना कठिनाई के अनेक गुण दृष्टिगत होते हैं।



क्या आप जानते हैं

मीरा की कविताओं का सौन्दर्य विशिष्ट ध्वनियोजना में भी है। उनकी काव्य पंक्तियाँ राजस्थानी ध्वनि प्रवृत्तियों के अनुकूल हैं, इसलिए उनमें सहज प्रवाह है।

रस

रसों की दृष्टि से मीरा की कविता में शृंगार और शान्त रस का ही आधिक्य है लेकिन उनका शृंगार बिहारी, देव, मतिराम की तरह उद्दीपन-विभाव के लिए नहीं है। यहाँ कृष्ण अभिसार के लिए कहीं से आते नहीं हैं और न लौटते हैं। वे मीरा के हृदय में निवास करते हैं। मीरा ने अपने एक पद में लिखा है—

औरन के परदेस बसत पिय लिख-लिख भेजत पाती।

मोरे पिया मोरे हृदय वसत है, ना कहूँ आती-जाती।

रस की स्थिति का सार-संक्षेप देते हुए यह कहा जा सकता है कि उन्होंने रस को नहीं देखा, वे सदा रसिक या रसेश को देखती रहीं।

छन्द

मीरा के पास अनेक छन्दों की सम्पदा नहीं है। वे तुलसी, केशव की तरह विभिन्न छन्दों का अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए प्रयोग नहीं करतीं। वे पद-रचना करती हैं। गीतिकाव्य के लिए पद ही सबसे श्रेष्ठ माध्यम और छन्द है। कृष्ण का रूप-सौन्दर्य, कृष्ण से प्रणय, कृष्ण की प्रतीक्षा यही तीन विषय मीरा की कविता की वर्ण्य-वस्तु हैं। तीव्र अनुभूति के इन विषयों को मीरा ने पदबद्ध किए हैं जो सरस शब्द और सराग स्वर में 'मणि-कांचन' की तरह गुंथ गए हैं। "अपने युग के अन्य महान् भक्तों की तरह उन्होंने भी अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिए 'गेय-पद' को चुना जो साहित्य और संगीत की मिलन भूमि पर जन्मा काव्य-रूप है और जिसमें भावधर्मी शब्द-साधना संगीत के स्वर-विधान में आकार ग्रहण करती है।" (डॉ. सी.एल. प्रभात)। यह कहना कठिन है कि इन पदों को स्वयं कवयित्री ने राग-निबद्ध किया था या अन्य संगीतकारों ने, जो मीरा के प्रशंसक रहे हों या स्वतन्त्र संगीतज्ञों ने। मीरा की संगीत

नोट

शिक्षा कब और कहाँ हुई इसकी भी जानकारी नहीं मिलती। तब भी यह गणना की गई है कि उनके पद 27 रागों में गाए जा सकते हैं। 'मीरा की मल्हार' तो सुप्रसिद्ध है ही 'कल्याण' और 'मारू' राग में उनके उत्तम पद हैं।

नरोत्तम स्वामी के अनुसार भावावेश, संगीतात्मकता और प्रसाद-माधुर्य-गुण सम्पन्न भाषा के कारण वे पद गीति-काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हो गए हैं। गीति-तत्त्व 'लिरिसिज्म' के बारे में डॉ. प्रभात ने लिखा है 'पश्चिमी काव्य-शास्त्र द्वारा निर्धारित लिरिक' के लक्षण मीरा में अनायास ही आ गए हैं। संवेदना, वैयक्तिकता, अन्विति और गेयता चारों इनके पदों में हैं।



टास्क

मीराबाई कृष्ण भक्तिधारा की कवियित्री हैं। कृष्ण भक्तिधारा के अन्य कवियों का परिचय दीजिए।

अलंकार

मीरा अनुभूति की कवियित्री हैं इसलिए उनमें अलंकरण और कविता के बाह्य-उपादानों को ढूँढ़ना व्यर्थ है। अंग्रेजी कवि **कीट्स** ने लिखा है कि कविता मेरे मन में उतनी सहजता से, स्वाभाविक रूप से आए जैसे वृक्षों में पत्ते, अगर इस तरह नहीं तो बेहतर है कि फिर नहीं। मीरा के पास कविता इस सहजता से ही आई थी इसीलिए उन्हें कविता के बाहरी उपादानों की विशेषता, अलंकारों की आवश्यकता नहीं हुई। किन्तु स्वाभाविक रूप से जहाँ अलंकार आए हैं वे उनकी कविता को आभामय बना देते हैं। उत्प्रेक्षा के ये दो उदाहरण देखें—

(क) अंग खीण, व्याकुल भया मुख पिव पिव वाणी हो।

ज्यूँ चातक घन कूँ रटे, मछरी ज्यूँ पाणी हो ॥

(ख) कुण्ड झलकाँ कपोल अलकाँ लहराई।

मीनाँ तज सरवर ज्यों मकर मिलण धाई।

रूपक — तन मन बारूया हरि चरणाँ में दरसण-अमृत पास्याँ री।

काव्यलिंग — भज मन चरण कमल अनिवासी।

जेताई दीखे धरणि गगन बिच लेता सब उठ जासी।

अनुप्रास — कुटिल, भृकुटि, तिलक भाल, चितवन में टोना।

खंजन अरू मधुप मीना, भूले मृग-छोना।

11.2 भाषागत विशेषताएं

निष्ठा शब्दजाल नहीं बुनती। वह अत्यंत अनिवार्य कथनता में ही रमती है। शब्दजाल से बचने की प्रवृत्ति का दूसरा परिणाम सरल भाषा या परिचित शब्दों का उपयोग भी हो सकता है लेकिन यह बात बहुत बलपूर्वक नहीं कही जा सकती। ऐसा लगता है कि रचनाकार के शब्द या छंद चयन पर समकालीन रचना प्रवृत्तियों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है और उसकी संवेदना का सांचा समकालीन रचनात्मक प्रवृत्तियाँ निर्मित करती हैं, अवश्य ही इसमें उसकी व्यक्तिगत विशेषताएं सक्रिय भूमिका निभाती हैं।

मीरा की शब्दावली सरल और परिचित है। इस सरलता का उनकी निरीहता से बहुत गहरा संबंध जान पड़ता है। निरीहता की अभिव्यक्ति अलंकृत नहीं होती। उनकी पंक्तियों का सांचा जनबोली का है। पंक्तियाँ गद्यात्मक हैं। उनका गठन ठेठ गद्य का है। आज की हिंदी कविता में जो खंडित और आहत वाक्यगठन दिखलाई पड़ता है, छायावादी कविता में जिसकी बहुलता है, वह मीरा की कविताओं में नहीं। प्रायः प्रत्येक पंक्ति गद्य का एक सुगठित वाक्य है। यह कहना बहुत कठिन है कि यह मीरा के काव्यकौशल का परिणाम है। मीरा ने काव्यकला का बहुत अधिक रियाज

नोट

नहीं किया होगा। यह मंजाव और कसाव उन्हें अन्य भक्तकवियों की रचनाएं पढ़कर और सुनकर मिला होगा। वस्तुतः जब हम किसी अच्छी कविता को पढ़कर-सुनकर प्रभावित हो रहे होते हैं तो क्या उसकी रचनाधर्मिता में भी शामिल नहीं हो रहे होते। रचना प्रक्रिया चाहे जितने खामोश या अघोषित रूप में खुले, वह सहृदय के चित्त में जरूर खिलती है। इसी से काव्य का संस्कार बनता है। अनुमानतः मीरा की कविताओं में कौशल का आधार उनके निरंतर काव्यास्वाद का सघन संस्कार है।



नोट्स

मीरा ने काव्यकला का बहुत अधिक रियाज नहीं किया होगा, उनकी रचना में कसाव और मंजाव अन्य भक्त कवियों की रचनाएं पढ़कर और सुनकर आया होगा।

मीरा की कविताओं का सौंदर्य विशिष्ट ध्वनियोजना में भी है। उनकी पंक्तियां राजस्थानी ध्वनिप्रवृत्तियों के अनुकूल हैं, इसीलिए उनमें प्रवाह है। इस प्रवाह में विशिष्ट ध्वनियों का चमत्कार और झनकार है। प्रवाह के कारण उन पंक्तियों की स्मरणीयता बढ़ती है। स्मरणीयता तब आती है जब पंक्तियों की ध्वनियोजना ऐसी हो कि एक ध्वनि से अगली ध्वनि तक जाने में यानी उच्चारण करने में उच्चारण अवयवों को असुविधा न हो। यही नहीं, वे उच्चारण में सहज प्रवृत्त हो जाएं। ऐसा तभी होता है जब रचनाकार अपनी बोली की अंतरंगता में पैठा होता है, वह बोली की अपनी ध्वनियोजना और वाक्यप्रवाह की ध्वनिगत प्रवृत्ति (इंटोनेशन) में खुद रचा-बसा हो। प्रत्येक बोली का अपना वाक्यप्रवाह और अपनी प्रिय ध्वनियां होती हैं। कविता की पदावली और उसके छंदविधान का निश्चय इन्हीं ध्वनियों और इसी प्रवाह से होता है।

जिन पदों में मीरा का आत्मनिवेदन या प्रिय की मनोहारी छवि का अंकन हुआ है या भावविह्वलता व्यक्त हुई है, उनमें ध्वनियों के आवर्त बारंबार उठते हैं, उनमें विशिष्ट ध्वनियों की आवृत्ति होती है—व्यंजन और स्वर दोनों की र, ल, सू ध्वनियां प्रायः सभी मध्यकालीन भक्तकवियों को प्रिय हैं:

मण थे परस हरि रे चरण।

सुभग सीतल कंवल कोमल, जगत ज्वाला हरण।

इण चरण प्रह्लाद परस्यां, इन्द्र पदवी धरण।

इण चरण ध्रुव अटल करस्यां, सरण असरण सरण।

इण चरण ब्रह्माण्ड भेद्यों नखरिखां गिरि भरण।

अनुप्रास केवल अंत्य नहीं, पंक्ति के बीच में भी अनुप्रास दो-दो या तीन शब्दों में। राजस्थानी भाषा की ध्वनिप्रवृत्ति के कारण 'ण' का प्रयोग बहुत ज्यादा मिलता है। ट, ण ध्वनियां तो कठोर मानी जाती हैं, फिर भी मीरा की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति ये ध्वनियां कैसे कर लेती हैं।

व्यंजनों के अनुप्रास के साथ-साथ मीरा के यहां स्वरों की आवृत्ति भी कम नहीं होती। ह्रस्व स्वरों के प्रयोग भी मीरा के यहां प्रवाह उत्पन्न करते हैं जैसे 'मण थे परस हरि के चरण' वाले पद में लेकिन मीरा में दीर्घ स्वरों का अनुप्रास अधिक मिलेगा। दीर्घ स्वरों का और सानुनासिक दीर्घ स्वरों का।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

- मीरा की कविता का प्रयोजन किसी भी प्रकार की चतुराईयों के लिए नहीं था।
- रसों की दृष्टि से मीरा की कविता में और रस का आधिक्य है।
- मीरा की कविता की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता निरलंकृति है।
- मीरा के कथन में बेचारगी और की हृदयवेधक सरलता है।

11.3 सारांश (Summary)

मीरा की कविता 'कृष्ण गुणगान' की है। रस, छन्द, अलंकार की दृष्टि से उनकी कविता का विश्लेषण करना उनके काव्य-प्रयोजन को निरादृत करना है। रसों की दृष्टि से मीरा की कविता में शृंगार और शान्त रस का ही आधिक्य है। मीरा अनुभूति की कवयित्री हैं इसलिए उनमें अलंकरण और कविता के बाह्य-उपादानों को ढूँढ़ना व्यर्थ है। मीरा की शब्दावली सरल और परिचित है। इस सरलता का उनकी निरीहता से बहुत गहरा संबंध जान पड़ता है। निरीहता की अभिव्यक्ति अलंकृत नहीं होती। उनकी पंक्तियों का सांचा जनबोली का है। पंक्तियाँ गद्यात्मक हैं। उनका गठन ठेठ गद्य का है। मीरा की कविताओं का सौंदर्य विशिष्ट ध्वनियोजना में भी है। उनकी पंक्तियाँ राजस्थानी ध्वनिप्रवृत्तियों के अनुकूल हैं, इसीलिए उनमें प्रवाह है। इस प्रवाह में विशिष्ट ध्वनियों का चमत्कार और झनकार है।

11.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **स्त्रीसुलभ:** स्त्रियों में पाई वाली सहज प्रवृत्ति।
2. **भावाभिव्यक्ति:** मन में उठने वाले विचारों और भावों को अभिव्यक्त करना, जाहिर करना, मन की बात कहना।

11.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'मीरा का काव्य भावों की सहज अभिव्यक्ति है।'।
2. 'मीरा की कविता राजस्थानी ध्वनिप्रवृत्तियों के अनुकूल है' उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
3. मीरा के काव्य की शिल्पगत विशेषताओं का वर्णन करें।
4. मीरा की भाषागत विशेषताएं बताइए।

उत्तर-स्वमूल्यांकन (Answer-Self Assessment)

1. शिल्पगत
2. शृंगार, शान्त
3. शिल्पगत
4. निरीहता

11.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. मीरा मुक्तावली—मीराबाई कृत।
2. मीरा पदावली—प्रभात प्रकाशन।
3. मीरा का काव्य—त्रिपाठी विश्वनाथ, वाणी प्रकाशन (पटना) बिहार।

नोट

इकाई 12

मीरा मुक्तावली: भाव पक्ष एवं कला पक्ष**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

12.1 मीरा के काव्य का भाव-पक्ष

12.1.1 मीरा के काव्य का कला-पक्ष

12.2 सारांश (Summary)

12.3 शब्दकोश (Keywords)

12.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- मीरा मुक्तावली के काव्य पक्ष एवं कला पक्ष को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आत्मलीन कवि के उद्देलित मनोवेग उसके हृदय की हलचल का प्रकाशन करते हैं, किन्तु हृदय मूक है। अतः भावदशा की चरमावस्था में प्रायः अति संवेदनशील प्राण मूक हो जाते हैं। वाणी का वहाँ प्रवेश नहीं होता, अतः भाव-योग, अनुभूति की मौन साधना है, किन्तु कवि मौन नहीं रह सकता। उसका भावयोग शब्द-योग की भी साधना करता है। यह ‘शब्द-योग’ विशेष महत्त्वपूर्ण है। वस्तु स्थिति इस प्रकार होती है कि कवि की घनीभूत अनुभूति, उद्देलित मनोवेग और तीव्रतम भाव संवेदन का क्षण कवि को आत्मलीन कर देता है और वह उस दशा को अपने सम्पूर्ण काव्यगत उपादानों के साथ व्यक्त करने के लिए विकल और विवश हो जाता है। तब भाव शब्दों की खोज करते हैं, भाव-पक्ष बुद्धि-पक्ष से समरसता स्थापित करने की चेष्टा करता है और भाव-दशा का क्रमिक रूप, क्रमिक शब्द-विन्यास द्वारा भावों से निबद्धित होने लगता है। यही काव्य-सृष्टि की मानसिक प्रक्रिया है। मीरा के काव्य में भाव-पक्ष प्रधान है, अतः उसमें पांडित्य का अभाव पाया जाता है। मीरा का समस्त काव्य हार्दिक भावों का सहज प्रकाशन है।

12.1 मीरा के काव्य का भाव-पक्ष

1. आत्मानुभूति—कवि के जीवन में किसी विशिष्ट क्षण में, किसी विशिष्ट वातावरण और परिस्थिति से उसी अनुभूति की चेतना जागृत होती है। यह अनुभूति कवि के सहज संवेदनशील हृदय का विशिष्ट गुण है। आत्मानुभूति के उस क्षण, उस परिस्थिति से, शांत जल में फेंके हुए पत्थर से उत्पन्न होने वाली लहरों की तरह कवि-मानस की भावनाएँ तरंगित होती हैं। यह आत्मानुभूति भी काव्य का सूक्ष्म प्राण है, जो कवि की व्यक्तिकता को आत्मसात् किये रहते हैं। यही अनुभूति कालांतर में भाव-जागृति का मूल कारण बनती है।

2. भावजागृति—आत्मानुभूति से कवि के प्राणों में जो स्पन्दन होता है, उससे भावोर्मियाँ तरंगित हो, सचेतन बन उद्देलित हो उठती हैं। इससे कवि की भावुकता को बल मिलता है। अनुभूति की तीव्रता से कवि भाव-लोक में विचरण करने लगता है। कल्पनाशक्ति उस भावुकता को और भी बल देती है और मनोद्वेगों से वह संचालित होने लगता है।

नोट

3. मनोवेगों का उद्वेलन—भाव-जागृति के साथ ही कवि के मन में संवेगों का ज्वार उठता है। मनोवेगों का यह ज्वार कवि की अनुभूति को तीव्रता और भावों को शक्ति प्रदान करता है, फलतः कवि अनुभूति से भाव-दशा में पहुँच जाता है। उसकी अन्तर्वृत्तियाँ भावनिष्ठ होकर मूल भावानुभूति पर केन्द्रित हो जाती हैं, और कवि उसे केन्द्रित भावानुभूति के रस में निमग्न हो जाता है। धीरे-धीरे कवि अपने मनोवेगों को व्यक्त करने के लिए विकल होने लगता है।

4. भावदशा की चरम परिणति—मनोवेगों के उद्वेलन से जागृत भाव कवि की आत्मानुभूति को तीव्रतम रूप से उसे भाव दशा में रसलीन कर देते हैं, और कवि भावविभोर हो आत्मलीन हो जाता है।

5. भानानुरूप शब्दों की योजना—भाव-जगत की पूर्ववर्ती प्रक्रियाएँ सूक्ष्म अन्तर्मन के विभिन्न स्तरों और क्रियाकलापों का प्रकाशन करती हैं, किन्तु भाव-योग से शब्द योग का समन्वय होते ही काव्य की अमूर्त भावना, शब्दों के मूर्त रूपों में आवद्ध होकर अप्रत्यक्ष से प्रत्यक्ष और सूक्ष्म से स्थूल रूप में व्यक्त होने लगती है। काव्य का स्वयं प्रसूत लेखन और गायन यहीं से प्रारंभ होता है। इस दशा में शब्द भावों का अनुसरण करते हैं और गीत मनःस्थिति और भावोद्वेगों को शब्दों में बाँध यथाविधि मुखर करते हैं तथा गीति काव्य में संगीतात्मक स्वर, ताल, लय आदि गुण अपने आप आ जाते हैं। संक्षेप में हम इस प्रक्रिया के बारे में यह कह सकते हैं कि कवि की अनुभूति, भावना और कल्पना मनोवेगों के साहचर्य से कवि के जीवन में जिस भाव-जगत की सृष्टि करती है, वही भावों का उद्वेलन अपने स्वरूपों के अनुसार शब्दों का चयन कर गीति विधान का कारण बन जाता है और अनुभूति, भाव एवं मनोवेग अपने द्योतक सार्थक शब्दों में व्यक्त होते हैं।

6. भाव-दशा का उतार-चढ़ाव—काव्य में भाव-प्रवाह सदैव समतल नहीं होता। वह एक सूक्ष्म केन्द्र से उठकर कवि की सम्पूर्ण चेतना पर छा जाता है। निस्तब्ध जल में पत्थर गिरने से उठने वाली लहरों की तरह-मानस की भावोर्मियाँ मनोवेगों को उठाती, चढ़ाती और आगे बढ़ाती है।

7. अनुभूति की संतुलित पूर्णाभिव्यक्ति पर गीत का अंत—अनुभूति की भाव-दशा में परिणति शब्दयोग द्वारा काव्य-सृष्टि करती है। कवि भावदशा में जब तक रहता है, तभी तक यह भावों के उतार-चढ़ाव को शब्दों की कड़ियों और छन्दों की लड़ियों में बाँधता है, गीत गाया या लिखा जाता है। भाव जब शब्द, अर्थ छन्द, स्वर, ताल, लय, गति और रसानुभूति को पूर्णतः क्रम से अभिव्यक्त कर देते हैं, तब गीत का अंत हो जाता है।

मीरा के प्रत्येक पद में गीति-सृष्टि की ये सभी प्रक्रियाएँ सर्वत्र पाई जाती हैं, अतः मीरा का कोई-सा भी पद इन कसौटियों पर कसा जा सकता है



क्या आप जानते हैं काव्य में भाव प्रवाह सदैव समतल नहीं होता। वह एक सूक्ष्म केन्द्र से उठकर कवि की सम्पूर्ण चेतना पर छा जाता है।

मीरा के काव्य का मूलभूत भाव-तत्व और उसका विश्लेषण

मीरा के अद्यावधि उपलब्ध मूलपदों में जो वस्तुगत अंतरंग तत्व है, उसका प्रमाणिक संकेत केवल मूल स्रोत की तरह मीरा की काव्य धारा में विद्यमान है। मीरा की एकमात्र मान्यता है कि—

“प्रेम भगति रो पैँडा म्हारो, और न जाणां रीत।”

इसके स्पष्ट हो जाता है कि मीरा प्रेमभक्ति की उपासिका थीं। उसके जीवन और काव्य में प्रेम और भक्ति के तत्व सर्वोपरि थे, अतः मीरा के काव्य को मूलभूत भाव तत्व की दृष्टि से दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है। यथा—(1) प्रेम-प्रधान गीतिकाव्य (2) भक्ति-परक गीति काव्य।

मीरा का प्रेम-प्रधान गीति-काव्य

गीति काव्य में प्रेम प्रधान गीति-काव्य सुन्दर सृष्टि के प्रमाण माने जाते हैं, क्योंकि प्रेम-तत्त्व जीवन की सबसे प्रबल, मादक, सुन्दर और सरस उपलब्धि है। संसार के सम्पूर्ण गीतिकाव्य में तुलना और अनुपात की दृष्टि से प्रेम-प्रधान गीति-काव्य सबसे अधिक व्यापक और विस्तीर्ण पैमाने पर पाया जाता है और विश्व की किसी भी भाषा का कोई-सा भी इतर काव्य रूप उसी भाषा के प्रेम-काव्य से आगे नहीं बढ़ पाता, क्योंकि प्रेम का दायरा भी वैयक्तिकता से लेकर, जाति प्रेम, देशप्रेम, मानव प्रेम और ईश्वर प्रेम तक क्रमशः ससीम से असीम तक फैला है, अतः प्रेम तत्व की व्यापकता ने प्रेम-प्रधान काव्य को लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम के सोपानों पर चढ़ाते हुए कवि की अनुभूतियों को ऊर्ध्वागामी गति दी। मीरा के प्रेम प्रधान गीति काव्य में मीरा का वैयक्तिक प्रेम लौकिकता से ऊपर उठ अलौकिक कृष्ण प्रेम तक व्याप्त है।

मीरा के प्रेम-काव्य में संयोग और वियोग-पक्ष

प्रेम-भाव के दो पक्ष हैं, एक शुक्लपक्ष या संयोग पक्ष और दूसरा कृष्णपक्ष या वियोग पक्ष। इसी प्रेमप्रधान गीतिकाव्य में संयोग के सुखद, उज्ज्वल आल्हादकारी, आनन्दमय, अलौकिक, प्रेमालोक की शान्त, स्निग्ध फेनोज्ज्वल किरणें पाई जाती हैं, तो वियोग की अमावस्या में प्रेमी की व्याकुलता, प्रिय की निष्ठुरता, प्रेमी की अपेक्षा, प्रिय की उपेक्षा, विरह-वेदना की तीव्रता और निराशा आदि का बड़ा सजीव चित्रण पाया जाता है।

मीरा के काव्य में प्रेम-तत्त्व के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का अभिव्यंजन पाया जाता है और उसमें भी मीरा का विरह-पक्ष अधिक प्रबल है। अस्तु, मीरा के सम्पूर्ण पदों में प्रेम और संयोग-वियोग की दशाओं के वर्णन पाए जाते हैं।

12.1.1 मीरा के काव्य का कला पक्ष

मीरा के काव्य में प्रेम और भक्ति का तादात्म्य पाया जाता है। सामान्यतः भक्ति ईश्वरीय प्रेम के रागात्मक सम्बन्ध और आध्यात्मिक अनुभूतियों के आवेग से परिपूर्ण होती है। ईश्वरीय सत्ता की सर्वशक्तिमत्ता, और भक्त द्वारा उसकी स्वीकृति तथा उसका गुणगान भक्ति-साहित्य में स्तुतिपरक गीतों का जन्म के कारण है। मीरा के पदों में भी 'गिरधरनागर' की स्तुति और अपने उद्धार के लिए प्रार्थनायें पाई जाती हैं। यथा—

भज मण चरण कंवल अबणासी।

अरज करां अबला कर जोड़या स्याम तुम्हारी दासी।

मीरा से प्रभु गिरधर नागर, काट्यां म्हारी गांसी।”

भक्त आत्मा का यह आत्मनिवेदन स्वतः प्रेरित-प्रकाशन है, जो कवि की पवित्र भावनाओं को वाणी देता है और उसकी आत्मा के उद्धार के लिए ईश्वरीय करुणा और कृष्ण का आह्वान करता है। भक्त का दैन्य, प्रभु-शरणागति और उद्धार के लिए प्रार्थनाएं इन्हीं भक्तिपरक गीतों में पाई जाती हैं। भक्त जब कभी अपने और भगवान के सम्बन्ध और स्वरूपों का अभिव्यंजन करता है, तब उसके द्वारा उसके धर्म-दर्शन और भक्ति-साधना-पद्धति का ज्ञापन होता है।

मीरा के पद उन्हें सगुणोपासिका कृष्ण-भक्तिन सिद्ध करते हैं, जो कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव से प्रेरित होकर नवधा रूपों में अपनी भक्ति को आचार शास्त्र में परिणत कर चुकी थीं।

मीरा पदावली में **रसात्मकता** का सागर लहराता है। भक्तिभाव तो तरंगित है ही। शुद्ध शृंगार के पद भी इस काव्य में उपलब्ध होते हैं। एक पद देखिये—

आली सांवरो की दृष्टि, मानूँ प्रेम की कटारी है ॥

लगत बेहाल भाई तन की सुधि बुद्धि गई ॥

तनह मैं व्यापी पीर, मणमतवारी है ॥

सखियाँ मिलि दोय चारी, बाहरी भाई हैं सारी।

नोट

हैं तो बाकी नीको जाणो कुंज को बिहारी है॥
 चंद को चकोर चाहे, दीपक पतंग दाहे।
 जल बिना मरे मीन ऐसी प्रीत प्यारी है॥
 बिन देष्याँ कैसे जीवे कल न परत हिये।
 जाय वाकूँ ऐसे कहियौ मीत तो तिहारी है॥

वियोग शृंगार की अभिलाषा, जड़ता, व्याधि आदि दस दशाओं को मीरा के काव्य में देखना सहज है। अद्भुत रस के उदाहरणों को भी मीरा-काव्य में सहजता से देखा जा सकता है। अपने इष्ट देव गिरिधारी श्रीकृष्ण का अद्भुत रूप चित्रण मीरा ने अपने पदों में आत्मतल्लीनता से किया है—

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

- मीरा के काव्य-पदों में गीति-सृष्टि की प्रमुख प्रक्रियाओं का सर्वथा अभाव है।
- प्रेम-भाव के दो पक्ष होते हैं—एक संयोग पक्ष और दूसरा वियोग पक्ष।
- मीराबाई का काव्य मुख्यतः लक्षणा और व्यंजनाप्रधान है।
- मीरा सगुणोपासिका कृष्ण-भक्तिन हैं और कृष्ण को पतिरूप में माना है।

निपट वंकट छब अँटके।
 म्हारे णैणा निपट वंकट छब अँटके॥
 देख्याँ रूप मदनमोहन की पियत पियूखन मटके।
 वारिज भवाँ अलक मतवारी णैण रूप रस अँटके।
 टेढ़ याँ कर टेढ़े करि मुरली, टेढ़्याँ पाग लर लटके।
 मीरा प्रभु के रूप लुभाणी गिरिधर नागर नट के॥

रसों के अन्य भेदों में मीराबाई की रुचि नहीं लगती। खींच-तान की बात पृथक् है परन्तु शृंगार और अद्भुत रस के ही उदाहरण इनके पदों में मिलते हैं। भावोदय, भावशान्ति, भावशवलता आदि भेदों के उदाहरण भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं।

अलंकारों में मीराबाई ने उपमा और रूपकालंकार का बहुत प्रयोग किया है। उपमानों में पाना (पान) का प्रयोग बहुधा किया है। उत्प्रेक्षा की छटा भी यत्रतत्र दृष्टिगत होती है। कहीं-कहीं असंगति एवं विरोधाभास जैसे अलंकार भी प्रयुक्त किए हैं। असंगति का उदाहरण पठनीय है—

डारि गयो मनमोहन पासी।

आँव्याँ की डालि कोइल इक बोले, मेरो मरण अरु जग केरी हाँसी।

विरोधाभास की छटा इस पद में दर्शनीय है—

प्रभु जी कहाँ गया नेहड़ा लगाया।
 छोड़ या महा विस्वास संघाती प्रेम री बाती जलाय।
 विरह समंद मे छोड़ गया छो, नेह री नाव चलाय।
 मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे थे विण रखाँ न जाय॥

प्रधानतः मीरा का काव्य अभिधाप्रधान है। लक्षणा और व्यंजना तो कदाचित् ही दृष्टि में आये। वस्तुतः अभिधात्मक काव्य भी उत्तम हो सकता है क्योंकि मीरा के पद इस तथ्य के साक्षात् प्रमाण हैं। लक्षणा और व्यंजना की आवश्यकता मीरा के जीवन में कहाँ थी? तब काव्य में ही कहाँ आ सकती थी।



नोट्स मीराबाई का काव्य मुख्यतः अभिधाप्रधान है। लक्षणा और व्यंजना उनके काव्य में नजर नहीं आते।

मीरा की भाषा-शैली: इन पदों में भाषा-सौष्ठव भी अपने ढंग का निराला है। राजस्थानी तथा ब्रजभाषा के अतिरिक्त गुजराती, बांग्ला, पंजाबी, एवं फारसी आदि भाषाओं के शब्द भी इन पदों में प्राप्त हैं। ये कालान्तर में मीरा के पदों में अन्य गायकों द्वारा प्रवेशित भी हो सकते हैं। परन्तु पदों की मूल भाषा में राजस्थानी की उच्चारण क्षमता और व्यावहारिकता तथा ब्रजभाषा का गेयात्मक माधुर्य है। इसी लिए गीतिकाव्य के पदलालित्य, संगीतात्मकता आदि गुण इन पदों में सहजता से आ गये हैं।

12.2 सारांश (Summary)

मीरा प्रेमभक्ति की उपासिका थीं। उसके जीवन और काव्य में प्रेम और भक्ति के तत्व सर्वोपरि थे, अतः मीरा के काव्य को मूलभूत भाव तत्व की दृष्टि से दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है। यथा—(1) प्रेम-प्रधान गीतिकाव्य (2) भक्ति-परक गीति काव्य। मीरा के काव्य में प्रेम-तत्व के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का अभिव्यंजन पाया जाता है और उसमें भी मीरा का विरह-पक्ष अधिक प्रबल है। अस्तु, मीरा के सम्पूर्ण पदों में प्रेम और संयोग-वियोग की दशाओं के वर्णन पाए जाते हैं। मीरा के पद उन्हें सगुणोपासिका कृष्ण-भक्तिन सिद्ध करते हैं, जो कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव से प्रेरित होकर नवधा रूपों में अपनी भक्ति को आचार शास्त्र में परिणत कर चुकीं थीं। अलंकारों में मीराबाई ने उपमा और रूपकालंकार का बहुत प्रयोग किया है। उपमानों में पाना (पान) का प्रयोग बहुधा किया है। उत्प्रेक्षा की छटा भी यत्रतत्र दृष्टिगत होती है।

12.3 शब्दकोश (Keywords)

- आत्मानुभूति:** अन्तःकरण में महसूस करना, आत्म साक्षात्कार।
- सगुणोपासक:** जिसको प्रत्यक्ष मान कर उसके गुणों की उपासना की जाए।
- भावशबलता:** अनेक भावों का एक साथ वर्णन करना।

12.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

- ‘मीरा ने अपने काव्य में अपमा और रूपक अलंकार का बहुधा प्रयोग किया है।’ उदाहरण सहित स्पष्ट करें।
- मीरा का काव्य प्रेम-प्रधान गीति-काव्य है। विवेचन करें।
- मीरा के काव्य में राजस्थानी तथा ब्रज भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं के शब्दों को चुनकर लिखें।

उत्तर-स्वमूल्यांकन (Answer-Self Assessment)

- असत्य
- सत्य
- असत्य
- सत्य

12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



- पुस्तकें**
- मीरा मुक्तावली—मीराबाई कृत।
 - मीरा पदावली—प्रभात प्रकाशन।
 - मीरा का काव्य—त्रिपाठी विश्वनाथ, वाणी प्रकाशन (पटना) बिहार।

इकाई 13

नोट

मीरा मुक्तावली: भाषा-शैली**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

13.1 मीरा के काव्य में अलंकार योजना

13.2 मीरा की काव्य भाषा का स्वरूप

13.3 सारांश (Summary)

13.4 शब्दकोश (Keywords)

13.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

13.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- मीरा के काव्य की भाषा-शैली के स्वरूप को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मीरा का काव्य तीव्र अनुभूति का काव्य है। भावानुभूति व्यक्त करना ही मीरा का उद्देश्य था। न भाषा को अलंकृत करने या सजाने-संवारने का उसे ध्यान था, न किसी प्रकार के चमत्कार-प्रदर्शन का ही उसे अवकाश था। फिर भी मीरा की भावमयी अभिव्यक्ति स्वतः ही सशक्त और प्रभावी बन गई है। कहीं-कहीं स्वाभाविक अलंकार-विधान भी स्वतः प्रकट हुआ है। सादृश्यमूलक अलंकारों में रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा का ही कुछ प्रयोग दिखाई देता है। मीरा ने साधना-परम्परा से प्राप्त उपमानों और प्रतीकों को ही अपनाया है।

13.1 मीरा के काव्य में अलंकार योजना

व्यास्त रूपक से अलंकृत निम्न पंक्तियाँ देखिए: मूर्त-अमूर्त-योजना बहुत सुन्दर है:

‘दीपक जोऊँ ग्यान का चढ़ूँ अगम अटारी हो,’

‘सील संतोष की केसर घोली प्रेम-प्रीत पिचकारी रे।’

‘प्रेम भटी को मैं मद पीयो छकी फिरूँ दिनराती।’

रूपक :

‘दरसन-इमरत पास्यांरी।’

‘विरह-समुंद में छोड़ गया, नेह री नाव चढ़ाव।’

सांगरूपक :

या तन को दियना करौं मनसा करौं बाती हो।

तेल भरावों प्रेम का बारों दिन राती हो।

नोट

रूप-साम्य और प्रभाव-साम्य पर आधारित अप्रस्तुत-योजना कहीं-कहीं बिम्बात्मक बन गई है। उत्प्रेक्षा का रूप-साम्य का ऐसा प्रयोग देखिए:

‘कुंडल झलकां कपोल अलकाँ लहराई।
मीन तज सरवर ज्यों मकर मिलण आई॥’

उपमा अलंकार के भी छुट-पुट प्रयोग मिलते हैं:

उपमा :

‘अंग खीन व्याकुल भया मुख पिव पिव वाणी हो।
ज्यों चातक घन कौर रटै, मछरी बिन पानी हो’॥
‘हरि बिन मथुरा ऐसी लागै शशि बिनु रैन अँधेरी।’

अतिशयोक्ति—मीरा ने ऊहात्मक प्रयोग नहीं किये। कहीं-कहीं विरह-वर्णन में ही परम्परागत अतिशयोक्ति का प्रयोग हुआ है—

‘गिणतां गिणतां घिस गई म्हारी आंगलियां री रेख’
‘छप्पन कोटि जणा पधार्याँ दूल्हो श्री ब्रजनाथ’

विरोधमूलक अलंकार—विरोधों का चमत्कार भी मीरा ने नहीं दिखाया। कथ्य में स्वाभाविक विरोधाभास कहीं आ गया हो तो दूसरी बात है। निम्न पंक्तियाँ ऐसी ही हैं—

बिन करताल पखावज बाजै अनहद की झनकार रे।
बिन सुर राग छतीसों गावै रोम रोम रंग सार रे।



टास्क मीरा की काव्य भाषा पर किन-किन क्षेत्रीय भाषाओं का प्रभाव है?

मीरा ने वर्ण-सौन्दर्य या शब्द वैचित्र्य का भी कोई सचेतन प्रयास नहीं किया। अतः अन्य ब्रज कवियों-जैसी अनुप्रास तथा नाद-सौन्दर्य की छटा भी उनकी भाषा में नहीं है। भाव-प्रवाह में स्वतः ही कहीं-कहीं पदावली सानुप्रासिक हो गई है। एक-दो उदाहरण देखिए:

‘बरसे बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन मैं उमग्यो मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।’
‘नैनन बनज बसाऊँ री जो मैं साहिब पाऊँ’

श्लेष, यमक, वक्रोक्ति आदि शब्द-चमत्कार-प्रधान अलंकारों का भी मीरा ने प्रयोग नहीं किया। मीरा की अनलंकृत वाणी में निश्छल भावमयी अभिव्यक्ति की ही विशेषता है।

लाक्षणिक प्रयोग और मुहावरे—मीरा की स्वाभाविक अभिधा-प्रधान वाणी में लाक्षणिक प्रयोग और मुहावरों का स्वतः ही खूब समावेश हो गया है। कुछ उदाहरण देखिए—‘बाट जोवां’, ‘हाथ बिकाणी’, ‘रंग राँचा’, ‘करेजो खाय’, ‘लागी मोहिं राम खुमारी हो’, ‘हरिसू सैन लगाती’, ‘भजन बिना नगर फीको’,

नैन बिछास्याँ हिबड़ो डास्यां सर पर राख्यू बिराज।’
‘उणबिन सब जग खारो लागत और बात सब कांची’
‘अब तो निभायौ सरैगी, बांह गहे की लाज’

लोकोक्तियों का प्रयोग भी मीरा की भाषा में अपेक्षाकृत कम है।



नोट्स

मीरा के काव्य में भाषा के परिष्कृत रूप के स्थान पर सहज-सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

नोट

नाथ-सन्त-परम्परा में प्रयुक्त कुछ प्रतीक भीरे मीरा की रहस्य-साधनापरक पंक्तियों में पाये जाते हैं, जैसे 'चलो अगम के देस, वहाँ भरा प्रेम-हौज, हंस केल्यां करै।' 'पंच रंग चोला पहर सखी में झिरमिट खेलन जाती', 'त्रिकुटी महल में बना है झरोखा तहाँ तै झांखी लगाऊँरी'। 'सुन्न महल में सुरत जगाऊँ सुख की सेज बिछाऊँरी।'।

13.2 मीरा की काव्य भाषा का स्वरूप

मीरा की भाषा राजस्थानी-मिश्रित ब्रज भाषा है। उन्होंने साहित्यिक ब्रज भाषा के साथ अपनी मातृभाषा पश्चिमी राजस्थानी के शब्द-रूपों का मिश्रित प्रयोग किया है। मीरा की भाषा तद्भव शब्द-बहुला है। तत्सम शब्दों का उन्होंने बहुत ही कम प्रयोग किया है। रूप-वर्णन या स्तुतिपरक पदों में ही कुछ अधिक तत्सम शब्द दिखाई देते हैं।



क्या आप जानते हैं

मीरा के पदों में तीन-चौथाई शब्द तद्भव हैं, शेष तत्सम, देशज और विदेशी शब्द हैं।

विदेशी शब्दों का प्रयोग भी मीरा की भाषा में कबीर, सूर आदि कवियों को अपेक्षा कम हुआ है। साथ ही मीरा ने विदेशी शब्दों को हिन्दी की ध्वनियाँ प्रदान करके ही अपनाया है, तत्सम रूप में नहीं—'अरजी', 'कीमत', 'जौहरी' आदि अरबी शब्द तथा दरद, नेवाज, हौज आदि फारसी शब्द ऐसे ही हैं। मीरा की भाषा में कुछ प्राचीन शब्द-प्रयोगों के सिवाय सर्वत्र सरलता, स्पष्टता पाई जाती है। माधुर्य और प्रसाद गुण उनकी भाषा-शैली की विशेषता है। सूर, नन्ददास आदि अन्य कृष्ण कवियों-जैसा माधुर्य उनकी भाषा में नहीं है। सच तो यह है कि मीरा की पदावली में अभिव्यक्ति की अपेक्षा अनुभूति का ही उत्कर्ष पाया जाता है। भाव-रसमयता के कारण उनके पदों में स्वतः ही माधुर्य छा गया है। काश! अनुभूति की इस प्रगाढ़ता के साथ मीरा के पास सूर, नन्ददास-जैसी कलात्मक अभिव्यक्ति भी होती तो सोने पर सुहागे की बात रहती और तब मीरा की पदावली सूर, नन्ददास आदि सभी कृष्ण कवियों से श्रेष्ठ मानी जाती। मीरा के पदों में आत्माभिव्यक्ति, भावप्रवणता, भावान्विति और संक्षिप्तता का गुण तो विद्यापति, सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास, हितहरिवंश आदि सभी कृष्ण कवियों से खूब बढ़ा-चढ़ा है, पर कोमल-कांत-पदावली, भाषा का माधुर्य, संगीतात्मकता, भाषा की कलात्मकता में वे प्रायः सबसे पिछड़ी प्रतीत होती हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएं—

1. मीरा ने साधना-परंपरा से प्राप्त प्रतीकों, उपमानों का ही प्रयोग किया है।
2. मीरा की काव्य-भाषा चमत्कारिक एवं रीतिकालीन परंपरा से प्रभावित है।
3. मीरा ने कई लक्षण ग्रंथों की रचना की।
4. मीरा की भाषा राजस्थानी-मिश्रित ब्रज भाषा है।

13.3 सारांश (Summary)

मीरा का काव्य तीव्र अनुभूति का काव्य है। भावानुभूति व्यक्त करना ही मीरा का उद्देश्य था। न भाषा को अलंकृत करने या सजाने-संवारने का उसे ध्यान था, न किसी प्रकार के चमत्कार-प्रदर्शन का ही उसे अवकाश था। फिर भी मीरा की भावमयी अभिव्यक्ति स्वतः ही सशक्त और प्रभावी बन गई है। कहीं-कहीं स्वाभाविक अलंकार-विधान भी

नोट

स्वतः प्रकट हुआ है। सादृश्यमूलक अलंकारों में रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा का ही कुछ प्रयोग दिखाई देता है। मीरा ने साधना-परम्परा से प्राप्त उपमानों और प्रतीकों को ही अपनाया है। विरोधों का चमत्कार भी मीरा ने नहीं दिखाया। कथ्य में स्वाभाविक विरोधाभास कहीं आ गया तो दूसरी बात है। श्लेष, यमक, वक्रोक्ति आदि शब्द-चमत्कार-प्रधान अलंकारों का भी मीरा ने प्रयोग नहीं किया। मीरा की अनलंकृत वाणी में निश्छल भावमयी अभिव्यक्ति की ही विशेषता है। मीरा की भाषा राजस्थानी-मिश्रित ब्रज भाषा है। उन्होंने साहित्यिक ब्रज भाषा के साथ अपनी मातृभाषा पश्चिमी राजस्थानी के शब्द-रूपों का मिश्रित प्रयोग किया है।

13.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **अहात्मक** : विचारात्मक, काल्पनिक
2. **देशज शब्द**: देश में उत्पन्न, बोल-चाल की भाषा से स्वतः उत्पन्न हुआ शब्द।

13.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मीरा की काव्य-भाषा पर प्रकाश डालिए।
2. मीरा की काव्य भाषा पर कई क्षेत्रीय भाषाओं का प्रभाव है। उदाहरण सहित समझाइए।

उत्तर-स्वमूल्यांकन (Answer-Self Assessment)

1. सत्य
2. असत्य
3. असत्य
4. सत्य

13.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



- पुस्तकें
1. मीरा मुक्तावली—मीराबाई कृत।
 2. मीरा पदावली—प्रभात प्रकाशन।
 3. मीरा का काव्य—त्रिपाठी विश्वनाथ, वाणी प्रकाशन (पटना) बिहार।